"वन्दे जिन वरम्"
अहिंसा परमो धर्मः यतो धर्मस्ततो जय

नरसेनारायण

रचयिता
परम पूज्य श्री १०८ विद्यालङ्कार बालब्रह्मचारी
आचार्य देशभूषणजी महाराज

प्रकाशक
जैन मित्र मंडल, धर्मपुरा, देहली

प्रथम बार २५००
[जैन मित्र मंडल ट्रैक्ट नं० १३१]
मूल्य एक रुपया।

आभार प्रदर्शन

इस पुस्तक की उपयोगता से प्रभावित होकर निम्न महानुभावों ने पुस्तक के प्रकाशन का व्यय भार सहर्ष ग्रहण किया है।

१.	जैन युवक मंडल, पहाड़ी धीरज	५०१ प्रतिया
२.	ला० महावीर प्रशाद एण्ड सन्ज़ देहली	२०१ प्रतियां
३.	ला० शान्ति प्रशाद जी, दरयागंज देहली	१०१ प्रतियां
४.	दिगबर जैन पंचायत, देवनगर देहली	१०१ प्रतियां
५.	ला० पारसदास श्रीपाल मोटर वाले, देहली	१०१ प्रतियां
६.	हुक्मचन्द जगाधर मल, चाँदनी चौक देहली	१०१ प्रतियां
७.	ला० मुन्शीलाल एण्ड सन्ज़, चावड़ी बाजार	६१ प्रतियां
८.	श्रीमती सूरजदेवी जैन, गली गुलयान	५१ प्रतियां
९.	श्री प्रकाशचंद शीलचंद जौहरी, चांदनी चौक	५१ प्रतियां
१०.	श्री आदीश्वर प्रशाद जैन M.A., मंत्री मंडल,	५१ प्रतियां
११.	श्री पन्नालाल रघुवीर सिंह, तेज अखबार	५१ प्रतियां
१२.	श्री त्रिलोकचंद जयचंद कपड़े वाले	५१ प्रतियां
१३.	श्री पवन कुमार वीर कुमार जी कपड़े वाले	५१ प्रतियां
१४.	ला० डिप्ट [illegible] जैन Buildwell stores	५१ प्रतियां
१५.	श्री रामकंवर जी Section officer Estate offiice.	२५ प्रतियां
१६.	श्री अजित प्रशाद जैन, बैंक वाले	२५ प्रतियां
१७.	श्री शांतिलाल, पेपर मर्चेंट चावड़ी बाजार	२५ प्रतियां
१८.	ला० छज्जूमल सुमेर चंद जैन, कोठी वाले	२५ प्रतियां
१९.	ला० मोती लाल } C/o ला० महाबीर प्रशाद ठेकेदार	२५ प्रतियां
२०.	ला० चतर सैन }	२५ प्रतियां
२१.	गुप्तदान C/o ला० अजित प्रशाद जी ठेकेदार	२५ प्रतियां
२२.	दिगम्बर जैन पंचायत, करोलबाग	२५ प्रतियां

अजीत प्रशाद जैन ठेकेदार—सभापति

जैन मित्र मंडल, देहली

प्राक्कथन

जैन मित्र मण्डल भारत के जैनों की एक प्रमुख साहित्यक संस्था है, सन् १९१५ में देहली में इस संस्था का निर्माण हुआ। इस संस्था ने अपने ४१ वर्ष के जीवन में समाज उपयोगी बहुत से कार्य किये हैं, परन्तु इसकी दो विशेषताए हैं।

सर्व प्रथम—जैन धर्म और साहित्य का प्रचार आज तक यह संस्था १८१ पुस्तकें जैन धर्म पर नागरी, अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा में जैन तथा अजैन लेखकों द्वारा लिखित प्रकाशित कर लाखों की सख्या में बाँट चुका है।

द्वितीय—समस्त भारत में 'महावीर जयन्ती उत्सव' मनाने की प्रथा को आरम्भ करने का श्रेय इसी संस्था को प्राप्त है। आज इसी संस्था के प्रयत्न स्वरूप ही भारत के कोने कोने में 'महावीर जयन्ती' मनायी जाती है। देहली में पिछले ३५ वर्षों से मण्डल सार्वजनिक स्थान परेड ग्राउन्ड, गाँधी ग्राउन्ड में विराट रूप से तीन दि[illegible]क महावीर जयंती मनाता आरहा है। जिसमें भारत राज्य के मंत्री गण, विदेशों के राजदूत, तथा अन्य संसार प्रसिद्ध नेता भगवान महावीर के प्रति श्रद्धाँजलि अर्पित करते हैं। मित्र मण्डल का मुशायरा जो कि प्रति वर्ष किया जाता है, महावीर जयन्ती उत्सव को चार चांद लगा देता है।

मण्डल के सौभाग्य से इस वर्ष आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज का चतुर्मास देहली में हुआ। आपकी भाषण शैली इतनी प्रभावशाली तथा रोचक है कि प्रति दिन सहस्त्रों प्राणी आपके भाषणों से धर्मामृत पान करते रहे। मण्डल के प्रधान मंत्री श्री महताब सिंह जी तथा मंत्री श्री ला० पन्ना लाल जी (प्रकाशक दैनिक तेज) के हृदय में अभिला प

उत्पन्न हुई कि आचार्य श्री जी के द्वारा रचित एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जाय जिसमें मनुष्य जीवन का समस्त सार गर्भित हो। आप दोनों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की और उसी प्रार्थना के फल स्वरूप यह पुस्तक आपके सामने प्रस्तुत है। आचार्य श्री ने इस पुस्तक में बताया है कि 'नर' अर्थात् मनुष्य वा आत्मा किस प्रकार अपने ही कर्मों द्वारा 'नारायण' अर्थात् 'भगवान' 'परमात्मा' बन सकता है। पुस्तक बहुत ही सादी तथा रोचक भाषा में है और एक बार आरम्भ करने पर अन्त तक पढ़े बिना छोड़ना सम्भव नहीं होगा।

आज के समाज में आचार्य श्री जैसे महापुरुषों की अत्यन्त आवश्यकता है। आपके द्वारा ही आज के संतप्त मानव समाज में शांति तथा अहिंसा का पाठ प्रसारित किया जा सकता है।

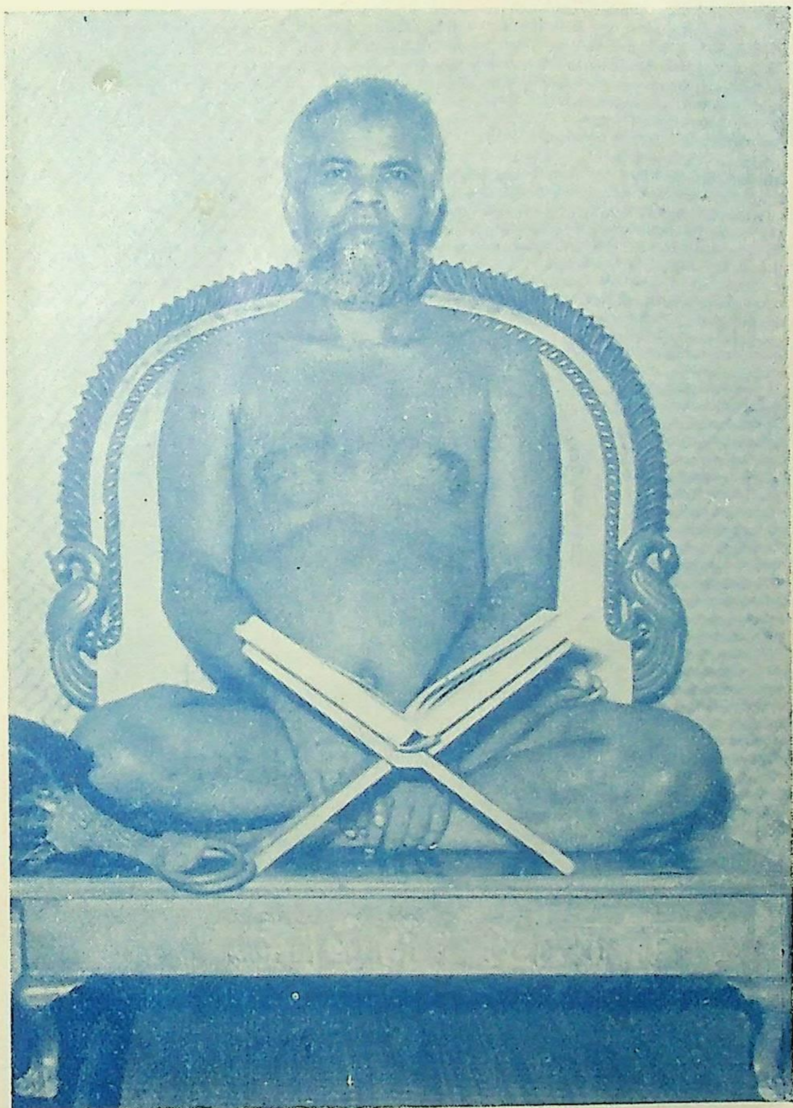
आपका स्वभाव मृदुल और सरल है। क्रोध का बिलकुल भी आभास नहीं है। सदैव आप शास्त्र अध्ययन में लीन रहते हैं। ऐसे संतों का समागम सदैव प्राप्त हो तथा आप दीर्घायु होकर प्राणी मात्र को अहिंसा और सत्य का पाठ पढ़ाते रहें यही निरन्तर भावना है।

आज मण्डल आपके द्वारा रचित पुस्तक को प्रकाशित कर अपने को धन्य मान रहा है और इसका अभिलाषी है कि आपके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों व पुस्तकों के प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हो।

पाठकों से आशा है कि वह इस पुस्तक को अपनायेंगे तथा इसमें दिये गये उपदेश को ग्रहण कर लाभ उठायेंगे।

अजीत प्रशाद जैन (ठेकेदार)
सभापति

आदीश्वर प्रसाद जैन M. A.
मन्त्री



परम पूज्य श्री १०८ विद्यालङ्कार बाल ब्रह्मचारी
आचार्य देशभूषणजी महाराज

श्री १०८ पूज्य आचार्य श्री देशभूषण मुनि महाराज जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र तथा परिचय

बम्बई प्रान्त के बेलगाँव जिले में कोथलपुर नाम का प्रसिद्ध ग्राम है, जिसमें सत्यगौड़ नाम के श्रावक रहते थे। वे इस गाँव के मुखिया थे, उनकी धर्मपत्नी का नाम अक्कावती था। वह दोनों ही धर्म परायण थे। इन देवी जी की कुक्षि से पूज्य श्री देशभूषण जी का जन्म सम्वत् १९६५ में हुआ था, इनका जन्म का नाम बालगौड़ था। माता जी इस संसार को असार जान कर इनको तीन मास का ही छोड़ कर चल बसीं और पिता जी ने भी इनसे अधिक मोह न रक्खा और ९ वर्ष पश्चात् वे भी परलोक सिधार गये। अब इनका जीवन दुःखमय बन गया। इनकी नानी जी ने इनका पालन पोषण किया। १६ वर्ष की अवस्था में ही आपने कनाड़ी और महाराष्ट्री भाषाओं का विद्याध्ययन कर लिया। इनके चाचा जी इनकी पैतृक सम्पत्ति(भूम्यादि) की देख भाल करते थे। वे तथा इनके मामा जी इनके विवाह सम्बन्ध की आयोजना कर रहे थे कि इतने में संयोगवश श्री १०८ जैकीर्ति जी मुनि महाराज का शुभागमन हुआ। उस समय ये १९ वर्ष के थे और इनका भाव मिथ्यात्व की ओर झुका हुआ था। इन्हें धर्म का ज्ञान नहीं था, मुनि महाराज का निमित्त और उपदेश लाभ मिलते ही इनमें धर्म जाग्रति हो गई और गुरु के चरणों में ही इन्होंने अपना मन लगा दिया। गुरु ने आज्ञा दी कि तुम हमारे पास न रह कर घर पर ही शास्त्र-स्वाध्याय किया करो। उनसे इन्होंने जैन धर्म के प्रथम श्रेणी

के ग्रन्थ जैसे सिद्धान्त प्रवेशिका, द्रव्य-संग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अध्ययन का नियम लिया। इन ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् ये गुरु के पास गये तब उन्होंने इनको उपदेश दिया कि अब खाने पीने में भक्ष्य-अभक्ष्य का ध्यान रख कर अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करो। सबसे प्रथम उन्होंने बैंगन, प्याज, बीड़ी, पान आदि का त्याग कराया और दो तीन महीने तक पास में न रहने का आदेश दिया और अन्य श्रावकों से कहा कि देखो कि यह नियम पालन कर रहे हैं या नहीं। पूरी जाँच के बाद गुरु ने इनसे अष्ट मूल गुण धारण कराये, तब लोगों ने यह देख कर कि कहीं घर बार छोड़ कर न चले जावें जल्दी विवाह करने की सोची। उसी समय गुरु जी श्री १०८ जैकीर्ति जी श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा करने जा रहे थे तब इन्होंने कहा कि हमें शिखर जी की यात्रा कर आने दो तब तक विवाह सम्बन्ध की कोई चर्चा न करो। गुरु जी का समागम करके अपने निजी खर्चे से शिखर जी की यात्रा को चल दिये और वहाँ पहुँच कर सभी टोंकों की आनन्द पूर्वक बन्दना कर जब श्री पार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर पहुँचे तब गुरु जी से इन्होंने प्रार्थना की कि महाराज अब तो इस असार संसार से मुक्त होने के लिए मुझे दीक्षा दीजिये गुरु जी ने तब इन्हें छटी प्रतिमा के व्रत वहां टोंक पर दिये क्योंकि उन्हें निश्चय हो गया था कि अब यह व्रत नहीं छोड़ेंगे। यात्रा करने के पश्चात् ये फिर घर नहीं गये और ६ मास गुरु जी के साथ रहे। जब रामपुर दुर्ग पहुंचे वहां गुरु जी ने कहा कि अब तुम मुनिव्रत ले सकते हो तब चतुर्मास के बाद सी. पी. में जो रामटेक तीर्थ है वहाँ लगभग १० हजार श्रावकों के समक्ष ये मुनि दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इतनी अल्प आयु में इनके मुनि दीक्षा लेने पर जनता बड़ा ही आश्चर्य करने लगी और कहने लगी कि पहले क्षुल्लक या ऐलक होना चाहिए। तब गुरु ने कहा कि आप लोग आश्चर्य न करें हमें पूर्ण विश्वास है कि ये मुनि व्रत दृढ़ता से पालेंगे।

लोगों ने फिर भी विरोध किया तब गुरु जी ने कहा कि अच्छा भाई पहले एक महीने का ऐलक व्रत ले लो। गुरु आज्ञा से १ महीने ऐलक रह कर श्री कुँथल गिरी जहां से श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि मोक्ष गये हैं, विहार करते हुए उसी क्षेत्र में जा पहुंचे वहाँ इन्होंने फिर गुरु जी से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव इस क्षेत्र पर अब हमें अवश्य ही मुनि-दीक्षा दे दीजिये, तब गुरु जी ने यहीं मुनि दीक्षा दे दी। अब क्या था गुरु के समागम में दो तीन वर्ष रहने से विद्याध्ययन का पूर्ण लाभ मिल गया। इन्हें संस्कृत में प्रथम भाग धनंजय नाम माला आदि ग्रन्थों को भली भाँति समझाया। अनेक देश देशान्तरों में विहार करते हुए श्री गोम्टे-श्वर में चतुर्मास हो गया। इस चतुर्मास में कनाड़ी काव्य का पूर्ण अभ्यास किया। वहाँ से नागपुर पहुचे। उस समय ये केवल मराठी में उपदेश देते थे। हिन्दी-नागरी का ज्ञान बहुत कम था। फिर सिवनी पहुंचे। वहां की जनता ने आग्रह करके तीन मांस तक रोक रक्खा, श्री पं० सुमेरचन्द दिवाकर ने महाराज को हिन्दी पढ़ाना आरम्भ कर दिया और कुछ ही काल में अच्छी हिन्दी बोलने लगे। जब नागपुर में चौमासा हुआ वहां पं० शान्तिनाथ शास्त्री ने महाराज को सर्वार्थ सिद्धि व जीवकांड पढ़ाया। फिर वहां से विहार करके शिखर जी की यात्रा करते हुए बनारस पहुंचे। वहाँ के भक्तगणों ने आग्रह करके चातुर्मास कराया और महाराज ने मद्रास प्रान्तों में विहार करते हुए निजाम स्टेट (हैदराबाद राज्य) के रामपुर जिले में प्रवेश किया। इस बस्ती में केवल ८ घर जैनियों के थे और मुसलमान अधिक होने से इस नगर में दिगम्बर जैन मुनि का प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था। वहां के श्रावकों ने नगर से बाहर सेठ हरधरन्नपा के बंगले पर ठहरने क व्यवस्था कर दी थी। पर महाराज ने पूछा कि मंदिर कहां हैं ? हम दर्शन अवश्य करेंगे तब लोगों ने कहा कि महाराज मंदिर मुसलमानों के किले के अन्दर है। वहां जाना असम्भव है। तब महाराज ने आग्रह

किया कि हम दर्शन करने के लिये अवश्य जायेंगे । तक केवल दो एक श्रावक ही साथ चले, महाराज ने बाजार में होते हुए किले में प्रवेश किया और श्री जी के दर्शन कर दूसरे मोहल्ले के बाजार में होते हुये बंगले पर आ गये । उस समय ६ बज चुके थे और महाराज आहार शुरू ही कर रहे थे कि ३०० मुसलमानों की सशस्त्र भीड़(लाठी तलवार भाला लिए हुए) ने आ कर बंगले को घेर लिया । तब महाराज ने उपसर्ग आया जानकर आहार का त्याग कर दिया और साहस पूर्वक भीड़ को समझाया वे लोग वहां से लौट गये पर कलक्टर के यहां जाकर अर्जी दे दी कि राज्य में नग्न साधु न रहने पावें । सेट भी कलक्टर के पास पहुँचे । कलक्टर ने सेठ का स्वागत किया और आने का कारण पूछा । तब उन्होंने कहा कि सौभाग्य से नगर में हमारे गुरू का शुभागमन हो गया है । वे नग्न रहते हैं । अतः आप भी उनके दर्शनार्थ पधारें । तब कलक्टर ने पूछा कि क्या यही साधु हैं ? मुसलमानों ने कहा कि हां, यही साधु हैं । कलक्टर ने सब सच्चा हाल जान कर अर्जी फाड़ कर फेंक दी और स्वयं अपनी कार में बैठ कर उसी समय बंगले पर दर्शनों को आये । उनके हृदय पर जैन मुनि का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कलक्टर ने सारी पुलिस बुलाली और बड़े जलूस के साथ मंदिर जी के दर्शन करा कर बंगले पर वापस लाये । फिर महाराज का प्रवचन सुन कर कलक्टर अति ही आनन्दित हुआ और वहां ही केश लोंच करने की आज्ञा दे दी । केशलोंच दो बजे शुरू होकर चार बजे समाप्त हुआ । कलक्टर की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी । और सभीमहाराज की जय बोलने लगे ।

श्री महाराज यहां से गुलबर्गा पधारे और यहाँ चार पाँच दिन तक ठहर कर गुलबर्गा से आलन्दा की तरफ विहार किया मार्ग में संध्या हो गई । वहां एक नाले के पुल के नीचे ठहर गये । साथ में केवल दो या तीन आदमी थे । अचानक बादल उठा और जोर से वर्षा हुई । नाला बढ़ गया । महाराज सामायिक में थे उनकी छाती तक पानी चढ़

गया। रात्री होने से वे कहीं को विहार नहीं कर सकते थे केवल एक पत्थर का सहारा लिए हुये वहाँ ही बैठ गये। जब पास के गांव में खबर पहुंची तब सब लोग दौड़े आये और महाराज को कन्धे पर बिठाकर पानी से बाहर निकाला। दूसरे दिन १० बजे महाराज आलन्दा पहुँचे।

आलन्दा से विहार करते हुए महाराज श्री नागपुर पधारे और महाराज का चौमासा नागपुर में हुआ। चौमासे के बाद महाराज श्री गोमट स्वामी जी की यात्रा के लिए संघ सहित निजाम स्टेट में पधारे। खबर पाते ही निजाम ने स्वयं अपने दरबारियों सहित आकर महाराज जी का स्वागत किया और ७ मील की दूरी से बड़े जलूस के साथ हैदराबाद ले गये। और मंदिर के दर्शन कराकर अपने केसर-बाग में ठहराया और ८ दिन के लिए मदिरा व माँस का बाजार बन्द करा दिया और आठ दिन तक सरकारी पुलिस भी इन्सपैक्टर सहित महाराज जी की सेवा में लगी रही। प्रतिदिन जो उपदेश होता था वे लिख कर ले जाते थे और अन्त में जो उपसर्ग हुये थे, उनकी क्षमा मांगी।

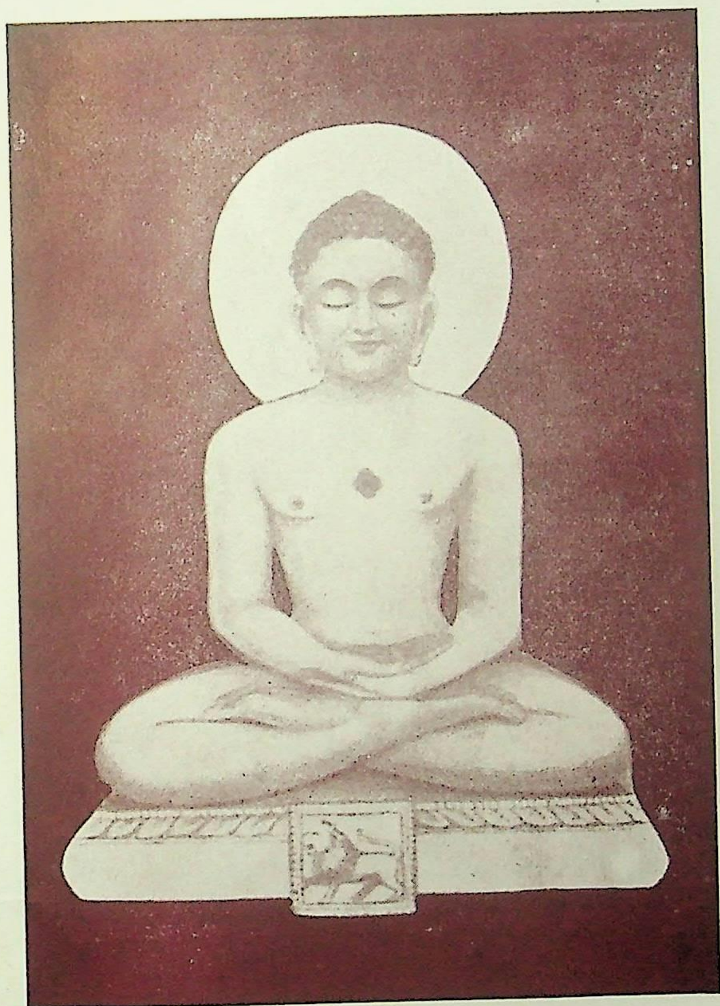
निजाम साहब ने फिर यह फरमान निकाला कि हमारे राज्य में यह महाराज जहां भी जायें वहां सभी इनकी सेवा करें और कहीं पर भी इनके विहार में आपत्ति न आये। यह सब महाराज के तपश्चरण का प्रभाव है कि इतना बड़ा राजा मुसलमान होने पर भी झुक गया और उसने जैन धर्म का सत्कार किया।

तदनन्तर महाराज श्री अनेक देशों में बेलगोल बंगलोर मद्रास हैदराबाद गुलबर्गा आलन्दा अमरावती नागपुर बिहार श्रीशत्रुन्जय जी, गिरनार जी श्री सम्मेद शिखर जी बनारस लखनऊ अयोध्या सुमेर गंज

बाराबंकी टिकेत नगर कानपुर इटावा आगरा जयपुर श्री महावीर जी आदि में पैदल बिहार करते हुए ता० २९-५-५५ को दि० जैन मन्दिर जी कूचा सेठ देहली में पधारे और यहां चतुर्मास में ठहर कर महाराज श्री ने अनेक शास्त्रों का निर्माण तथा अनुवाद किया और प्रतिदिन मन्दिर जी में प्रवचन किया। इनके प्रवचन भी उपदेशसार संग्रह भाग १, २ में पुस्तकाकार हो गये हैं महाराज श्री के चरणों में प्रमुख प्रमुख व्यक्ति जैसे श्री जुगल किशोर जी बिरला श्री सी० एस० आयन्गर जज सुप्रीम कोर्ट तथा अन्य युरोप्यन्ज महाराज के दर्शनों को पधारे थे। श्री बिरला जी ने तो महाराज श्री की शैली पर मुग्ध होकर बिरला मन्दिर में भी महाराज का भाषण कराया था जहाँ अनेक अजैन हजारों की संख्या में एकत्रित हुए थे, और चतुर्मास के बाद पहाड़ी धीरज पर २॥ महीने तक धर्म प्रभावना कर कांधले की कुमारी इलायची देवी को दीक्षा देने के लिये बिहार किया जहां जैन तथा अजैन की लाखों की संख्या की उपस्थिति में महाराज श्री ने कुमारी इलायची देवी को क्षुल्लिका पद की दिक्षा देकर उसका नाम अनन्तमती रक्खा वहां से महाराज श्री हस्तनागपुर क्षेत्र की ओर बिहार कर गये।

महतावसिंह जैन
B. A, L L. B.
प्रधान मंत्री

अहिंसा के अवतार 'भगवान महावीर'

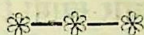


दुनिया के लिये वीर ने वैराग लिया था।
वह राज था या ताज था सब त्याग दिया था ।।

जैन मित्र मंडल, देहली ।



नर से नारायण



[श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज कृत]

मंगलाचरण।

प्रणम्य श्रीवीरजिनेन्द्रपद्मम् ।
भव्या जनानाम् भवतारणार्थं ॥
श्री देशभूषणमुनिरल्पबुद्धिः ।
वक्ष्यामि श्री वीरवाणीं पुनीतम् ॥

भाईयो, माताओ और बहनो !

आज हमने इस छोटीसी पुस्तक में सम्पूर्ण मानव प्राणी, माताओं और बहिनों के लिये अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् महावीर की उस अमर वाणी को समझाने का प्रयत्न किया है, जिसके द्वारा श्रेष्ठ मानव पद की प्राप्ति का उपाय बताया गया है। भगवान् महावीर स्वामी ने सम्पूर्ण विश्व को मानवता का पाठ पढ़ा कर तथा सच्चे मार्ग का शिक्षण देकर लाखों मानव प्राणियों को जीवन के परम लक्ष्य पर पहुँचा दिया है और

आज भी बहुत से मानव जीवन के उस परम ध्येय की ओर बड़ी स्फूर्ति के साथ अग्रसर होते आ रहे हैं। इस लोक तथा परलोक में सुख और शाँति का सर्वोच्च खजाना प्रत्येक मानव के भीतर छिपा हुआ है। इस छिपी हुई अटूट सम्पत्ति को पुरुषत्व के द्वारा ही धीरे २ प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। भगवान महावीर की वाणी से इसी सम्पत्ति को खोजनेकी शिक्षा मिलती है। भगवान महावीर स्वामी जिस अहिंसा के प्रतीक हैं वही अहिंसा का मार्ग सर्व देशों को सुख और शान्ति की ओर सीधा ले जानेवाला है। उस मार्ग में किसी भी प्रकार का कोई विवाद या अड़चन नहीं है। इस मार्ग में चलने वाले जीवों को कभी भी किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ेगा। यह मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाने के लिये एक ही महान् राज मार्ग है। यदि मानव इस मार्ग को छोड़कर अन्य किसी मार्ग से चलेगा तो वह अपने इष्ट स्थानपर पहुँचने से वंचित रह जायगा। फिर लौट कर जब वह इसी मार्ग का सहारा लेगा तभी उसे मार्ग की प्राप्ति होगी।

भगवान् महावीर ने उस सर्वोत्कृष्ट सुखमय स्थान में पहुँच कर अनादि काल से महान् भयानक संसार रूपी अटवी में पड़े हुये जीव को निकालने के लिये, करूणा करके उस विकट मार्ग को सरलता से बताकर निष्कटंक कर दिया। यदि कोई भी प्राणी अपने पुरुषार्थ के बल से उस मार्ग पर शनैः शनैः चलने का साहस करेगा तो निश्चय ही एक दिन वह अपने सुख शान्ति मय इष्ट स्थान को पहुँचकर प्राप्त करेगा।

हम इस पुस्तक में भव्य संसारी मानव को यह बतलाना चाहते हैं कि यदि प्राणी भगवान् महावीर के उस

अहिंसामय पथ पर चलने का प्रयास करता रहेगा तो वह पुरुषार्थी मानव थोड़े ही दिनों में स्वयं भगवान बन सकता है और सर्वोच्च ज्ञान का अधिपति बन कर इस विश्व भर में या परलोक में उत्कृष्ट पद का धारी गिना जायेगा, इसी लिये इस मार्ग का या शिक्षण का अनुकरण करना ही मानवता है।

इस भगवान महावीर के बारे में यहाँ पर उनका परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं है। स्वामी कौन थे और कहाँ के रहने वाले थे, इत्यादि बातों का पाठकों को जैन शास्त्रों से परिचय होगा ही, लेकिन फिर भी कुछ अपरिचित मानवों के लिये उनका परिचय संक्षेप में करा देना ही उचित समझते हैं।

भगवान् महावीर के तीर्थंकर बनने के पहले २३ अन्य तीर्थंकर और हो चुके हैं। उनके भी नाम से यहाँ उन अपरिचित भाइयों को परिचित करा देना अत्यन्त आवश्यक है।

सबसे पहले आज कल जो भागवत या महाभारत में वृषभ देव का चरित्र सुनने में आता है और हिन्दू वैदिक ग्रंथों में उनकी कथा या चरित्र मौजूद है, हिन्दू लोग उन्हें उत्कृष्ट त्याग की मूर्ति, नीति में निपुण और उनके उपदेशों में अधिकतर मान्यता मानते हैं। जब वृषभदेव ने अपने सौ पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र भरत को अपना राज्य सौंप दिया था तथा धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों को न्याय पूर्वक साधन कर अंत में मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये परम हंस दिगम्बर व्रत धारण कर कोने २ में सम्पूर्ण मानव प्राणी के आत्म कल्याण के सच्चे मार्ग का उपदेश दिया और अज्ञानी मानव प्राणी को अहिंसामय धर्म का मार्ग दर्शाया।

वे ही भगवान—वृषभदेव जैनियों के प्रथम तीर्थंकर हैं। उन्हीं तीर्थंकर ने अपने पुत्र भरत चक्रवर्ती को जिसके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष प्रचलित है, अपना सम्पूर्ण राज्य वैभव देकर स्वयमेव दिगम्बरी जैन दीक्षा धारण की और अंत में अपने निर्विकल्प समाधि ध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्म मल को नष्ट कर शिवपद या ब्रह्म पद को प्राप्ति की। इसलिये जैन लोग उन्हें ब्रह्म के नाम से पुकारते हैं। भगवान महावीर के समान उन्होंने भी अहिंसा धर्म का प्रचार किया था तथा सम्पूर्ण संसारी मानवता को सबसे पहले धर्म, अर्थ, काम पुरुपार्थ का उपदेश दिया अंत में उन्होंने मोक्ष पुरुपार्थ का उपदेश देकर मोक्ष मार्ग की परिपाटी को चलाया। आदिनाथ अर्थात वृषभदेव तीर्थंकर भगवान् के मोक्ष जाने के बाद चौथे काल में परम्परा से २३ और तीर्थंकर हुए जिन्होंने कामदेव को भी जीत लिया था और सम्पूर्ण भव्य प्राणियों को अपार संसार सागर से पार कराने के लिये जहाज के समान थे। उनके नाम निम्नलिखित प्रकार हैं।

२४ तीर्थंकर :—(१) वृषभदेव (आदिनाथ) (२) अजितनाथ (३) सम्भवनाथ (४) अभिनन्दननाथ (५) सुमति नाथ (६) पद्म प्रभु जी (७) सुपार्श्वनाथ जी (८) चन्द्र प्रभु जी (९) पुष्प दंत जी (१०) शीतल नाथ जी, (११) श्रेयांस नाथ जी (१२) वासुपुज्य नाथ जी (१३) विमलनाथ जी, (१४) अनन्त नाथ जी (१५) धर्मनाथ जी (१६) शान्तिनाथ जी (१७) कुंथनाथ जी (१८) अरहनाथ जी (१९) मल्लिनाथ जी (२०) मुनिसुव्रत नाथ जी (२१) नमिनाथ जी (२२) नेमिनाथ जी, (२३) पार्श्वनाथ जी, (२४) भगवान महावीर।

तीर्थंकरों की उत्पत्ति का क्रम—

जब तीसरे काल में ३ वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे तब वृषभनाथ भगवान मोक्ष गये थे और जब चौथे काल में ३ वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे तब श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये थे। वृषभदेव की आयु चौरासी लाख पूर्व की थी। अजित नाथ की आयु बहत्तर लाख पूर्व की थी। सम्भवनाथ की साठ लाख पूर्व की, श्री अभिनंदन नाथ की पचास लाख पूर्व की, श्री सुमति नाथ की ४० लाख पूर्व की, श्री पद्म प्रभु की ३० लाख पूर्व की, श्री सुपार्श्वनाथ की २० लाख पूर्व की, श्री चन्द्रप्रभु की १० लाख पूर्व की, श्री पुष्पदन्त की २ लाख पूर्व की, श्री शीतलनाथ की एक लाख पूर्व की, श्री श्रेयांस नाथ की ८४ लाख वर्ष की, श्री वासुपूज्य की बहत्तर लाख वर्ष की, श्रीविमलनाथ की ६० लाख वर्ष की, श्री अनंत नाथ की ३० लाख वर्ष की, श्री धर्म नाथ को दस लाख वर्ष की, श्री शांतिनाथ की १ लाख वर्ष की, श्री कुंथनाथ की ९५ हजार वर्ष की, श्री अरहनाथ की चौरासी हजार वर्ष की, श्री मल्लिनाथ की पचपन हजार वर्ष की, श्री मुनि व्रत की तीस हजार वर्ष की, श्री नेमिनाथ की दस हजार वर्ष की, श्री नमिनाथ की एक हजार वर्ष की, श्री पार्श्वनाथ की सौ वर्ष की, और भगवान महावीर स्वामी की ७२ वर्ष की आयु थी।

सभी तीर्थंकरों की उत्पत्ति का समय—

श्रीवृषभदेव के मोक्ष जानेके बाद ५० लाख करोड़सागर बीत जाने के बाद श्री अजित नाथ उत्पन्न हुए थे। अजितनाथ के मोक्ष जाने के बाद ३० लाख करोड़ सागर बीत जाने के बाद श्री

सम्भवनाथ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष जाने के १० लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री अभिनंदन नाथ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष जाने के ६ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुमति नाथ जी उत्पन्न हुए थे। इनके सिद्ध होने के ६४ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री पद्मप्रभु उत्पन्न हुए थे। उनके मोक्ष जाने के बाद नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुपार्श्व नाथ हुए थे। इनके ६ सौ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री चंद्र प्रभु भगवान हुए थे। फिर ६० करोड़ सागर बीत जाने पर श्री पुष्पदंत हुए थे। इनके ६ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री शीतल नाथ उत्पन्न हुए थे। उनके मोक्ष जाने के १०० सागर ६६ लाख २६ हजार एक वर्ष कम करोड़ सागर बीत जाने पर श्री श्रेयांस नाथ भगवान हुए थे। इनके ५४ सागर बीत जाने पर वासुपुज्य हुए थे। उनके २० सागर बीत जाने पर विमल नाथ हुए थे। उनके ६ सागर बीत जाने पर श्री अनंतनाथ हुए थे। इनके मोक्ष जाने के ४ सागर बीत जाने पर श्री धर्मनाथ हुए थे। उनके पोन पल्य कम ३ सागर बीतने पर श्री शांतिनाथ हुए थे। उनके आधा पल्य बीत जाने पर श्री कुंथ नाथ हुए थे। उनके एक हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जाने पर श्री अरनाथ हुए थे। उनके एक हजार करोड़ बर्ष बीत जाने पर श्री मल्लिनाथ हुए थे। इनके ५४ लाख वर्ष बीत जाने पर श्री मुनिसुव्रत नाथ हुए थे। इनके ६ लाख वर्ष बीत जाने पर श्री नमिनाथ हुए थे। इनके ५ लाख वर्ष बीत जाने पर श्री नेमिनाथ हुए थे। इनके ८३ हजार ७ सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री पार्श्वनाथ हुए थे। उनके २५० वर्ष बीत जाने पर श्री भगवान महावीर हुए थे।

तीर्थंकरों के शरीर की ऊंचाई—

श्री वृषभदेव के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष थी, श्री अजितनाथ की ४५० धनुष थी, श्री सम्भव नाथ की ४०० धनुष थी, श्री अभिनन्दन नाथ की ३५० धनुष थी, श्री सुमतिनाथ ३०० धनुष, श्री पद्मप्रभु की २५० धनुष, श्री सुपार्श्वनाथ की २०० धनुष, श्री चन्द्र प्रभु की १५० धनुष, श्री पुष्पदन्त की १०० धनुष, श्री शीतलनाथ की ६० धनुष, श्री श्रेयांसनाथ की ८० धनुष, श्री वासुपूज्य की ७० धनुष, श्री विमलनाथ की ६० धनुष, श्री अनन्तनाथ की ५० धनुष, श्री धर्मनाथ की ४५ धनुष, श्री शान्तिनाथ की ४० धनुष, श्री कुन्थनाथ की ३५ धनुष, श्री अरनाथ की ३० धनुष, श्री मल्लिनाथ की २५ धनुष, श्री मुनिसुव्रत नाथ की २० धनुष, श्री नमिनाथ की १५ धनुष, श्री नेमिनाथ की १० धनुष, श्री पार्श्वनाथ की ६ हाथ, श्री भगवान महावीर की ७ हाथ की थी।

सभी तीर्थंकरों के जन्म स्थान—

अयोध्या ,अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, कौशांबी काशी, चन्द्रपुर, काकन्दी, भद्रपुर, सिंहपुर, चम्पापुर, कंपिला, अयोध्या, रत्नपुर, हस्तिनापुर, हिस्तनापुर, हस्तिनापुर, मिथला राजगृह, मिथिला, सौरीपुर, वाणरसी, कुन्डपुर, ये अनुक्रम से २४ तीर्थंकरों की जन्मपुरियों के नाम हैं।

बाल ब्रह्मचर्य—

श्री वासुपूज्य जी, श्री मल्लिनाथ जी, श्री पार्श्वनाथ जी, श्रीनेमिनाथजी और श्री भगवान महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था से ही दीक्षित हुए थे और बाल ब्रह्मचारी थे और बाकी तीर्थंकरों ने राज्य करके दीक्षा ली थी।

तीर्थंकरों के पिता के नाम—

श्री नाभिराज, श्री जितामित्र, श्री जितारी, श्री संवरराय, श्री मेघप्रभ, श्री धरणस्वामी, श्री सुप्रतिष्ठि श्री महासेन, श्री सुग्रीव, श्री दृढ़रथ, श्री विष्णुराय, श्री वसुपूज्य श्री कृतवर्मा, श्री सिंहसैन श्री भानुराय, श्री विश्वसेन, श्री सूर्यप्रभ, श्री सुदर्शन, श्री कुम्भराय, श्री सुमित्रनाथ, श्री विजयरथ, श्री समुद्रविजय, श्री अश्वसेन, श्री सिद्धारथ ये अनुक्रम से २४ तीर्थंकरों के पिता थे।

तीर्थंकरों की माताओं के नाम—

श्रीमती मरूदेवी, श्रीमती विजयादेवी, श्रीमती सुसेनादेवी, श्रीमती सिद्धार्थदेवी, श्रीमती मंगलादेवी, श्रीमती सुसिमादेवी, श्रीमती पृथवीदेवी, श्रीमती सुलक्षणादेवी, श्रीमती रामादेवी, श्रीमती सुनन्दादेवी, श्रीमती विमलादेवी, श्रीमती विजयादेवी, श्रीमती श्यग्मादेवी, श्रीमती सुकिर्तिदेवी, श्रीमती सूर्तादेवी, श्रीमती ऐरादेवी, श्रीमती रमादेवी, श्रीमती सुमित्रादेवी, श्रीमती ब्रह्मादेवी, श्रीमती पद्मावतीदेवी, श्रीमती विजयादेवी, श्रीमती शिवदेवी, श्रीमती वामादेवी, श्रीमती त्रिसलादेवी, ये अनुक्रम से २४ तीर्थंकरों की माताओं के नाम है।

१२ चक्रवर्ती—

जैनियों में १२ चक्रवर्ती हुए हैं, जिन सबका जन्मभरत क्षेत्र में हुआ है। ये सभी चक्रवर्ती भरत खण्ड के तथा नौ निधि व चौदह रत्न के स्वामी थे और अनेक देव व राजा इनके चरण कमलों की सेवा करते थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—

श्री वृषभदेव के समय में प्रथमजो चक्रवर्ती हुये उनका नाम भरत चक्रवर्ती था। चक्रवर्तियों के नाम क्रमसे इस प्रकार हैं। भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय, ब्रह्मदत्त। इस प्रकार जैनियों में ये १२ चक्रवर्ती थे।

श्री वृषभदेव के समय में पहला चक्रवर्ती, श्रीअजित नाथ के समय में दूसरा, चक्रवर्ती तीसरा और चौथा चक्रवर्ती श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ के मध्यकाल में, ५वें चक्रवर्ती शान्तिनाथ थे, छठे चक्रवर्ती कुन्थनाथ थे, ७ वें चक्रवर्ती अरनाथ थे, आठवाँ चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथ के मध्यकाल में, ९ वां चक्रवर्ती मल्लिनाथ और सुव्रनाथ के मध्य काल में, १० वां चक्रवर्ती सुव्रतनाथ और नमिनाथ के मध्य काल में, ११ वां चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथ के मध्य काल में और १२ वां चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के मध्य काल में।

नौ नारायण के नाम—

अब आगे नौ नारायण के नाम बतलाते हैं। अश्वग्रीव, तारक, मेरू, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, जरासिंध ये नौ नारायण के नाम हैं।

नौ प्रतिनारायणके नाम—

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ट, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, प्रतापी, (नरसिंह) पुन्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण ये नौ प्रतिनारायण हुए हैं। नारायण और प्रतिनारायण दोनों ही अर्द्धचक्रवर्ती होते हैं। ये सभी लोग निदानसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये सभी नरकगामी होते हैं।

नौ नारद—

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरमुख, उन्मुख ये नौ नारद हुए हैं।

२४ कामदेव—

बाहुबलि, अमिततेज, त्रिधर, शान्तभद्र, प्रसेन-जित, चन्द्रवर्ण अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, विजयराज, श्री चन्द्र, अनल, हनुमान, वली, सुदर्शन, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल, जम्बू-स्वामी ये चौबीस कामदेवों के नाम हैं। इन सभी को जैन शास्त्र में ६३ शलाका पुरुष कहते हैं और ये महान् प्रताप शाली महात्मा गिने जाते थे।

जैन धर्म में अनादि काल से इसी प्रकार तीर्थंकर होते रहते हैं और पुनः पुनः जैन धर्म का उत्थान करते रहते हैं। जैन धर्म में सृष्टि के कर्ता को नहीं मानते हैं और पंचभूतों से जीव की उत्पत्ति भी नहीं मानते हैं। जैन धर्म में द्रव्य भी अनादि है। जीव आदि के साथ कर्म भी अनादि माने गये हैं। जीव अनादि, कर्म अनादि और कालअनादि, इस प्रकार जैन

धर्म में तीनों अनादि माने गये हैं। इसीलिये भगवान महावीर तीर्थंकर ने मोक्ष पुरुषार्थ के लिये सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा करने के लिये सबसे पहले धर्म, अर्थ, काम, तीन पुरुषार्थों का साधन बतलाया है। इन तीन पुरुषार्थों को न्याय पूर्वक साधन करके अन्तिम मोक्ष पुरुषार्थ साधन करना ही मानव शरीर की सफलता बतलाया है। इसलिये भगवान महावीर ने नर से नारायण बनने के लिये अपने आप ही सम्पूर्ण राजपद और सम्पूर्णपरिग्रह को त्याग करके मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये उद्यम किया, तथा जब मोक्ष पुरुषार्थ उद्यम के साथ प्राप्त किया तब वही मोक्ष मार्ग भगवान महावीर ने विश्व के प्राणी मात्र को समझाकर उनको इष्ट स्थान में पहुँचाने के लिये सच्चे अहिंसा धर्म का कोने २ में प्रचार करते हुए अनेक जीवों को संसार रूपी समुद्र से पार कर इष्ट स्थान में पहुँचा दिया अर्थात सुख शान्ति मार्ग में लगा दिया। यही मार्ग जो कि भगवान महावीर ने बतलाया था उसी परिपाटी के अनुसार जैनाचार्य भी अहिंसा धर्म का प्रचार कर अज्ञानी मानव जीवों का कल्याण करते आ रहे हैं। उसी कल्याणकारी मार्ग का प्राचर आज इस भारतवर्ष के कोने २ में महात्मा गांधीजी ने भी किया, और उसीं अहिंसा शस्त्र से उन्होंने भारतवर्ष का कल्याण किया। आज भी अहिंसा की आवाज जो सुनने में आ रही है वह भगवान महावीर के ही शिक्षण का प्रताप है।

भगवान महावीर कौन थे, इसका वर्णन आगे किया जायगा और उपर्युक्त परम्परा सभी तीर्थंकरों का वर्णन हो गया है। संसारी मानव प्राणियो, भगवान महावीर आगे चल करके तुमको क्या शिक्षण देते हैं ? इसे यदि तुम लक्ष्य पूर्वक सुनोगे तो

आपको विदित होगा कि इस मनुष्य पर्याय की सार्थकता क्या है ?

भगवान् महावीर कौन थे इसका संक्षिप्त में वर्णन करेंगे।

इस भरत क्षेत्र में मगध नामक एक देश है जो कि बहुत ही शुभदायक है और बहुत सुन्दर नगरों से सुशोभित है। जिसको आजकल विहारप्रान्त कहते हैं उसी में कुण्डपुर नाम का एक नगर है। उस नगर में राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे जो धर्म अर्थ काम तथामोक्ष चारों पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाले थे। अनेक राजाओं का समुदाय उनके चरण-कमलों की सेवा करता था। वे महाराज कामदेव के समान सुन्दर थे, शत्रुओं को जीतने वाले थे, दाता थे, धर्मात्मा थे, नीति को जानने वाले थे अहिंसा धर्म को परिपूर्ण करनेवाले थे, सम्पत्ति में कुबेर के समान थे, अर्थात् राजा सिद्धार्थ समस्त गुणों से सुशोभित थे। उनकी महारानी का नाम त्रिसला देवी था। वह त्रिसला देवी रूप की खान थी, सर्वोत्तम थी, चन्द्रमा के समान उसका सुन्दर मुख था, हिरण के समान विशाल नेत्र थे, सुन्दर हाथ थे और मूंगे के समान लाल अधर थे। राजा सिद्धार्थ की कीर्ति चन्द्रमा के समान समस्त दिशाओं को श्वेत करती थी ऐसे वे महाराज सिद्धार्थ उस सुन्दरी रानी के साथ सुख भोगते हुए समय व्यतीत करते थे। भगवान महावीर स्वामी के जन्म कल्याण से १५ महीने पहले इन्द्र की आज्ञा से देवगण महाराज सिद्धार्थ के घर रत्नों की वर्षा करते थे, उनको आज्ञा से आठों दिक् कन्याएँ वस्त्र आभरण धारण करती हुई माताकी सेवा करती थो तथा और भी मनोहर देवियां माता की सेवा करती थीं। किसी दिन वह महारानी

त्रिसला देवी राजभवन में कोमल शैया पर सुख से सो रही थी, उसी दिन उसने पुत्र उत्पत्ति के बारे में १६ शुभ सूचक स्वप्न देखे। प्रातः काल महारानी ने अपने पति से स्वप्न का फल पूछा। राजा सिद्धार्थ ने त्रिसला देवी को सुख शान्ति उत्पन्न करने के लिये स्वप्नों का फल समझाया कि तेरे गर्भ से महान प्रताप शाली तीर्थंकर का जन्म होगा। इसहाल को सुन करके माता बहुत आनन्दित हुई और भगवान महावीर के अवतार की सूचना पाकर वह अपने जन्म को बहुत सफल मानने लगी। उन स्वप्नों को उसी समय देखने के दिन, अर्थात आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन पुष्पोत्तरविमान से अवतरित होकर भगवान उसके गर्भ में आए। इन्द्रादिक देवों के सिंहासन कम्पायमान हुए और अवधि ज्ञान से जानकर वे सब देव आये तथा वस्त्राभूषणों से माता की पूजा कर अपने २ स्थान में चले गये। ऐसे प्रतापशाली पुरुषों के लिये कौन नहीं आयेगा ? अर्थात् सभी आयेंगे। उन्हीं भगवान को **चैत्र शुक्ला तेरस के दिन** जब कि सभी ग्रह उच्च स्थान में थे औरलग्न शुभ था तब महारानी त्रिसला देवी ने (भगवान महावीर स्वामी को) जन्म दिया। उस समय सब दिशाएँ निर्मल हो गईं, सुगन्धित वायु चलने लगी, आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और दुन्दुभी बाजे बजने लगे। भगवान महावीर स्वामी के जन्म लेते ही उनके तीर्थंकर नाम के महापुण्य उदय से इन्द्र के सिंहासन एक साथ कम्पायमान हो गये, सभी देवों ने अवधि ज्ञान के द्वारा भगवान महावीर का जन्म जान लिया। उसी समय सभी इन्द्र और चारों प्रकार के देव अपने अपने बाजों गाजों के साथ कुण्डपुर में आये। राजमहल में आकर

इंद्रादिक सब देवों ने माता के सामने विराजमान भगवान को देखा और भक्तिपूर्वक उनको नमस्कार किया। इंद्राणी ने माता के सामने तो मायामयी बालक रख दिया और उस बालक को गोदी में लेकर अभिषेक करने के लिये सौधर्म इंद्र को सौंप दिया। सौधर्म इंद्र ने भी बालक भगवान को ऐरावत हाथी पर विराजमान किया और आकाश मार्ग के द्वारा अनेक चैत्यालयों से सुशोभित मेरुपर्वत पर गमन किया। उस समय देव सभी बाजे बजाने लगे, किन्नर जाति के देव गीत गाने लगे और देवांगनाओं ने शृंगार, दर्पण, ताल (पंखा) आदि मंगल द्रव्य धारण किये। मेरु पर्वत पर पांडुक वन में जाकर पांडुक शिला के समीप पहुँचे। वह शिला सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची थी। उस पर एक मनोहर सिंहासन था, उस पर देवों ने बालक (भगवान) को विराजमान किया और फिर वे भक्ति से नम्रीभूत होकर भगवान का अभिषेक (स्नान) उत्सव करने लगे। मणि और सुवर्ण के बने हुए एक हजार आठ कलशों से क्षीरोदधि समुद्र का जल लाकर इंद्रादिक देवों ने भगवान का अभिषेक किया। इस अभिषेक से मेरु पर्वत कम्पायमान हो गया परन्तु बालक (भगवान) निश्चल ही बने रहे। उसी समय इन्द्रादिक देवों को भगवान तीर्थंकर परमदेव का स्वाभाविक बल मालूम हुआ। तदनन्तर इंद्रादिक देवों ने जन्म मरण आदि के दुःख दूर करने के लिये जल, चन्दन आदि आठों शुभ द्रव्यों से स्वर्ग मोक्ष को देने वाली भगवान की पूजा की। भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा सूर्य की प्रभा के समान है। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा प्रकाश करती है, अन्धेरे का नाश करती है और कमलों को प्रफुल्लित करती है उसी प्रकार

भगवान की पूजा धर्म रूपी प्रकाश को फैलाती है, पाप रूपी अन्धेरे को नाश करती है और भव्य जीवों के मनरूपी कमलों को प्रफुल्लित करती है। इंद्रादिक देवों ने उस बालक का नाम **वीर** रक्खा। उस समय अनेक अप्सराएँ और अनेक देवां के साथ प्रसन्नता पूर्वक सब इन्द्र नृत्य कर रहे थे। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानों से सुशोभित होने वाले भगवान को बालकों के योग्य वस्त्राभूषणों से सुशोभित किया और फिर अपनी इष्ट सिद्धि के लिये उन सब इंद्रादिक देवों ने भगवान की स्तुति की।

तदनन्तर बालक अवस्था का उल्लंघन कर वे भगवान यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। उनके शरीर की कांति सुवर्ण के समान थी और शरीर की ऊँचाई सात हाथ थी। उनका शरीर निःस्वेदता (पसीने का न आना) आदि जन्मकाल से ही उत्पन्न हुए दश अतिशयों से सुशोभित था। ऐसे वीर भगवान ने कुमार काल के तीस वर्ष व्यतीत किये।

वैराग्य अवस्था

तीसवर्ष बीत जानेपर बिना किसी कारणके संसारको अनित्य समझकर वे बुद्धिमान् भगवान् कर्मों को शान्त करने के लिये विषयों से विरक्त हुए। जिनका हृदय मोक्ष में लग रहा है ऐसे वे भगवान् अपने निर्मल अवधिज्ञान से अपने पहले भवों को जानकर अपने आप प्रतिबोध को प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें आत्म ज्ञान स्वयमेव हुआ।

लोकांतिक देवों का भगवान के प्रति संबोधन—

उसी समय लोकांतिक देव आए, उन्होंने आकर भगवान

को नमस्कार किया और कहा कि हे प्रभो! तपश्चरण के द्वारा कर्मों को नाश कर आप शीघ्र ही केवल ज्ञान को प्राप्त कीजिये। इस प्रकार निवेदन कर वे लोकांतिक देव अपने स्थान को चले गये। तदनन्तर वैराग्ययुक्त भगवान अपने माता पिता को शान्तिपूर्वक समझाकर मनोहर पालकी में सवार हुए। उस पालकी को उठाकर आकाश मार्ग के द्वारा इन्द्र ले चले। इस प्रकार वे भगवान नागखण्ड नामक वन में पहुँचे। वहाँ पर इन्द्रों ने उन्हें पालकी से उतारा और एक स्फटिक शिला पर वे भगवान उत्तर दिशा की ओर मुँह करके विराजमान हो गये। महाबुद्धिमान भगवान ने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन सायंकाल के समय जिन दीक्षा धारण की और सबसे प्रथम षष्ठोपवास(तेला) करने का नियम धारण किया। उस समय भगवान ने जो पंच मुष्टि लोंच किया उन बालों को इन्द्र ने रत्नमयी डिब्बी में रक्खा और उसे ले जाकर क्षीरसागर में पधराया। जो तपश्चरण रूपी लक्ष्मी से शोभायमान हैं और चारों ज्ञानों से विभूषित हैं ऐसे उन भगवान को इन्द्रादिक सभी देव नमस्कार कर अपने २ स्थान को चले गये। पारणा के दिन वे बुद्धिमान भगवान दोपहर के समय कुलय नाम के राजा के घर गये। राजा ने नवधा भक्ति पूर्वक भगवान को आहार दिया तथा भगवान आहार ग्रहण करके अक्षयदान देकर उस घर से निकल कर वन को चले गये। उसी समय उस दान के फल से ही उसके बाद देवों ने राजा के घर पंच आश्चर्यों की वर्षा की (रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, जय जय शब्द, दुंदुभियों का बजना और दान की प्रशंसा) सो ठीक ही है— पात्रों को दान देने से धर्मात्मा लोगों को लक्ष्मी की प्राप्ति होती ही है।

विविध उपसर्ग विजय—

भव्य मानव प्राणियो ! तुमको यह बात विदित ही होगी कि महान धीर वीर पुरुष पर चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न आ जाय तो भी वे अपने आत्म ध्यान से डिगते नहीं। वे मेरु पर्वत के समान सदा स्थिर रहते हैं और अपने शान्त मय रस से विचलित नहीं होते। उसी तरह भगवान महावीर ने अपने आत्म ध्यान में स्थिरहोकर बाह्य पदार्थों को हेय माना था और अखण्ड अविनाशी सच्चे उपादेय को ही अपने जीवन का मार्गबनायाउसी से भगवान महावीर कहलाये।

पूर्व जन्म के बैरी एक दुष्ट इन्द्र ने निरपराधी उन तपस्वी भगवान पर उस बन में उपसर्ग करना शुरू किया। संसार में प्राय: देखा जाता है कि निरपराधी साधुओं पर प्राय: संकट आता ही है। इसी के अनुसार कहा है—

निरपराध निर्वैर महा मुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारें,
कोई खैंच खम्भ से बांधें, कोई पावक में परजारें।
तहां कोप नहीं करें कदाचित पूर्व कर्म विचारें,
समरथ होय सहें बध बन्धन, ते गुरु सदा सहाय हमारें॥

भव्य मानव प्राणियो ! तुम जानते होगे कि संसार में दो मार्ग है एक निबृत्ति मार्ग और दूसरा प्रवृत्त मार्ग होता है प्रवृत्त से मनुष्य की संसार स्थिति बढ़ती है और शुभाशुभ कर्मों का बंध उसमें होता है। किन्तु साधारण मनुष्य उसका सहारा लेकर निवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ता है। निवृत्ति में कर्मों की निर्जरा है

और संसार की कमजोरियां को जीत कर उस पर विजय पाने का सुअवसर है। परन्तु यह मार्ग अधिकतर कठिन और दुष्कर है। साधारण मनुष्य वासना का त्यागी एक दम नहीं हो जाता - उसे अपनी प्रवृत्ति नीरस धर्ममयी बनानी पड़ती है तभी वह निवृति मार्ग का पर्यटक बनता है। पाठक पढ़ चुके हैं कि भगवान महावीर ने अपने पहले कई भवों से प्रवृत्ति को सुधारना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी कुमारावस्था में हीउन्होंने श्रावकों के व्रतों का अभ्यास किया था। वे साहसी और वीर थे, भरी जवानी में मुनि हुये और निवृत्ति मार्ग में साधनायें करने लगे। वे जानते थे कि जब तक मनुष्य पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, कृतकृत्य नहीं हो जाता तब तक न वे अपना भला कर पाता है और न दूसरों का। आत्मा जितने अंशों में अपने स्वाभाव को प्राप्त करता है, उतना ही वह पूर्णता की ओर बढ़ता है, वह परम पद के निकट पहुँचता है। तब वह उतना अधिक ही लोक हितकर हो जाता है। जो स्वयं मलिन जिसका अत:करण स्वच्छ नहीं है वे भला दूसरों को कैसे शुद्ध और पवित्र बना सकता है ? कोयले से दूसरा कोयला उज्जल नहीं हो जाता। इसीलिये भगवान महावीर साधना में लीन होकर जीवन के सभी पहलुओं का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किये थे। वे अपनी आत्मा को पूर्ण सर्वज्ञ और सर्व दर्शी देखना चाहते थे, क्योंकि उनके सम्मुख लोक कल्याण का महान प्रश्न था। वे मूक भाषा में निवृति की उपासना कर रहे थे और समभावों से प्रकृत्ति की रीतियों का अच्छे बुरे व्यवहार का अनुभव कर रहे थे। जैन शास्त्रों में भगवान महावीर की दृढ़ता और चरित्र निर्मलता का द्योतक कितनी ही घटनाओं के तथा उपसर्गो का वर्णन है.

पाठक उन में से कुछ आगे पढ़ेंगे और देखेंगे, निवृत्ति मग में किस तरह सहन शीलता और साहस से आगे कदम बढ़ाया जाता है।

एक समय विहार करते हुये भगवान् उज्जयनी नगरी में पहुँचे और वहां के अतिमुक्तक नामक श्मशान भूमि में रात्रि के समय प्रतिमायोग धारण करके खड़े हो गये। उस समय उज्जयनी पशुबलि प्रथाका केन्द्र बन रही थी क्योंकि महाकाल की पूजा होती थी। भव नामक रुद्र पुरुष वहां आया। तो भगवान का शान्ति स्वरूप उसी तरह से असह्य हुआ जिस तरह अग्नि को जल! पूर्व बैर के संस्कार उसके हृदय में राख से ढके हुये अंगारे की तरह धधक रहे थे। वाह्य निमित्त की हवा लगते ही वे प्रज्वलित हो गये। रुद्र अनेक विद्याओं का जानकर था। उसने योगिराट् महावीर को कष्ट देने के लिए किसी विद्या को उठा न रक्खा। साधारण मनुष्य उसके क्रूर कर्म के सामने टिक नहीं सकता था, परन्तु धीर वीर महावीर ज्ञानी थे—उनका मोहनीय कर्म क्षीण हो रहा था—हृदय में उनके विवेक था—समतारस से वह ओत प्रोत था। उस उपसर्ग का—उन कठोर प्रहारों का उन पर कुछ भी असर न हुआ। मोहनीय कर्म की क्षीणता के कारण वेदनीय भी निस्तेज हो गया। साधारण मनुष्य की विमुग्ध दृष्टि उनमें अतुल आत्मवेदना का अनुभव करती परन्तु महावीर तो विजयी वीर की तरह योग मार्ग में आगे बढ़ रहे थे। शारीरिक कष्ट और प्रलोभन उनके निगट नगण्य थे। भव रुद्र उनकी निस्पृहता और समता देखकर अवाक हो रह गया। उसकी क्रूरता काफूर हो गई। वह भगवान् के चरणों में नतमस्तक हुआ

और उनको अतिवीर कह कर उसने जयघोष किया। अहिंसा का महत्व उसने हृदयंगम कर लिया। पशुओं को बलि चढ़ाने की क्रूरता और निस्साहता उसको जंच गई, और जनता ने भी तब अपनी गलती देखी।

निस्सन्देह भगवान महावीर पर इस समय बड़े २ दैहिक उपसर्ग आये थे—वे उपसर्ग इतने भयंकर थे कि जिनका वर्णन पढ़ते ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दिल कांपने लगता है। किन्तु भगवान् के उत्कट आत्मबल के सामने वे उपसर्ग उसी तरह फीके पड़ गये थे जिस तरह सूर्य का प्रकाश होने पर चन्द्र-विम्ब फीका पड़ जाता है। भगवान के अनन्त तेज और प्रभा के सम्मुख वे उपसर्ग प्रभाहीन हो गये। उल्टे उनकी प्रति क्रिया में भगवान का आत्मतेज और अधिक प्रकाशमान् हो गया। तब उस इंद्र ने अपने को हार स्वीकार कर भगवान महावीर प्रभु को नमस्कार करके उनका नाम महावीर रखकर अपनेस्थान को लौट गया।

केवल ज्ञान—

इस प्रकार तपश्चरण करते हुए भगवान को जब बारह वर्ष बीत गये तब किसी एक दिन ऋजुकूल नाम की नदी के किनारे जृंभक नाम के गांव में वे भगवान षष्ठोवास (तेला) धारण कर शाम के समय एक शालवृक्ष के नीचे किसी शिला पर विराजमान थे। उस दिन वैशाख शुक्ला दशमी का दिन था। उसी दिन ध्यानरूपी अग्नि से घातिया कर्मों को नष्टकर उन भगवान ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान होते ही शरीर की छाया का न पड़ना आदि दश अतिशय प्रगट हो गये और

चारों प्रकार के इन्द्रादिक देवों ने आकर लोक अलोक सबको प्रकाशित करने वाले उन भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। उसी समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने चारकोस लम्बा चौड़ा बहुत सुन्दर समवसरण बनाया। अर्थात् सभासदन बनाया। वह समवसरण, मानस्तम्भ, ध्वजा दन्ड, घंटा, तोरण, जल से भरी हुई खाई, जल से भरे हुए सरोवर और पुष्पवाटिकाओं से सुशोभित था, ऊँचे धूलिप्राकार से घिरा हुआ था, नृत्यशालाओं से विभूषित था, उपवनों से सुशोभित था, वेदिका, अन्तर्ध्वजा, सुवर्णशाला आदि से विभूषित था, सब प्रकार के कल्पवृक्षों से सुशोभित था और बहुत ही प्रसन्न करने वाला था। उसमें अनेक मकानों की पंक्तियाँ थीं। वे मकान दैदीप्यमान सुवर्ण और प्रकाशमान मणियों के बने हुए थे, अनेक स्फटिक मणियों की शालाएँ थीं जो गीत और बाजों से सुशोभित थीं। उस समवसरण के चारों ओर चारों दिशाओं में चार बड़े दरवाजे थे जिनकी अनेक देवगण सेवा कर रहे थे तथा सुवर्ण और रत्नों के बने हुए ऊँचे भवनों से वे दरवाजे शोभायमान थे।

भिन्न भिन्न सभाओं के नाम—

उसमें बारह सभाएँ थीं। जिनमें मुनि, आर्जिका, कल्पवासी देव, ज्योतिषी देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देवांगनाएँ, ज्योतिषी देवों की देवांगनाएँ, मनुष्य और पशु बैठे हुए थे। अशोकवृक्ष, दुंदुभियों का बजना, छत्र, भामंडल सिंहासन, चमर, पुष्पवृष्टि और दिव्यध्वनि, इन आठों प्रातिहार्यों से वे भगवान सुशोभित थे। उस समय वे श्री वीर भगवान अठारह दोषों से रहित थे, चौंतीस अतिशयों से सुशोभित थे,

और ऊपर लिखी सभी सभा के विभूतियों के साथ विराजमान थे इस प्रकार भगवान वीर को सिंहासन पर विराजे हुए तीन घन्टे बीत गये तथापि उनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी। यह देखकर सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से विचार किया कि यदि गौतम आ जायं तो भगवान भी दिव्यध्वनि खिरने लग जाय। गौतम को लाने के लिये इन्द्र ने बूढ़े का रूप बनाया जो कि पद पद पर काँप रहा था और फिर वह ब्राह्मण नगर में जाकर गौतम शाला में पहुँचा। उस समय लकड़ी उसके हाथ में थी, मुँह में एक भी दांत नहीं था और बोलते समय पूरे अक्षर भी नहीं निकलते थे। इस प्रकार जाकर उसने कहा कि हे ब्राह्मणो! इस पाठशाला में समस्त शास्त्रों को जानने वाला और सब प्रश्नों का उत्तर देने वाला कौनसा मनुष्य है? इस संसार में ऐसा मनुष्य बहुत ही दुर्लभ है जो मेरे काव्य को विचार कर उसका यथार्थ अर्थ समझाकर मेरी आत्मा को सन्तुष्ट करें। इस श्लोक का अर्थ समझने से मेरे जीवन का सार निकल आवेगा। आप धर्मात्मा हैं इसलिये आपको इस श्लोक का अर्थ बतला देना चाहिये। केवल अपना पेट भरने वाले मनुष्य संसार में बहुत हैं परन्तु परोपकार करने वाले मनुष्य इस पृथ्वी पर बहुत ही थोड़े हैं। मेरे गुरु इस समय धर्म-कार्य में लगे हैं, वे इस समय ध्यान में मग्न होकर मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध कर रहे हैं और इस प्रकार अपना और दूसरों का उपकार करने में लगे हुये हैं, इसलिये वे इस समय मुझे कुछ नहीं बतला सकते। इसी कारण इस काव्य का अर्थ समझने के लिये मैं आपके पास आया हूँ, इसलिये आप मेरा उपकार करने के लिये इस काव्य का यथार्थ अर्थ कहिये। इस प्रकार उस बूढ़े की बात सुनकर पाँच सो शिष्य और दोनों

भाइयों के द्वारा प्रेरित किया हुआ गौतम शुभ बचन कहने लगा कि हे वृद्ध ! क्या तू नहीं जानता है कि इस पृथ्वी पर समस्त शास्त्रों के अर्थ करने में पारगंत और अनेक शिष्यों का प्रतिपालन करने वाला मैं प्रसिद्ध हूँ। मैं तुम्हारे काव्य के अर्थ को अवश्य बतलाऊँगा परन्तु तुम अपने काव्य का बड़ा अभिमान करते हो बताओ तो सही कि यदि मैं उस काव्य का अर्थ बतला दूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे ? इसके उत्तर में उस बूढ़े इन्द्र ने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि आप मेरे काव्य का अर्थ बतला देंगे तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊँगा, और यदि उस काव्य का अर्थ आप से न बना तो बहुत अभिमान करने वाले आप इन सब विद्यार्थियों और अपने दोनों भाइयों के साथ मेरे गुरु के शिष्य हो जाना। बूढ़े की बात सुनकर गौतम ने कहा कि हां ! यह बात ठीक है, अब इस बात को बदलना मत। सत्य बात को सूचित करने वाले ये सब इस बात के साक्षी (गवाह) हैं। इस प्रकार वह बूढ़ा इन्द्र और गौतम दोनों ही एक दूसरे को प्रतिज्ञा में बंध गये। सो ठीक ही है—अपने अपने कार्य का अभिमान करने वाले ऐसे कौन से मनुष्य हैं जो अकृत्य (न करने योग्य कार्य) को भी न कर डालते हों। भावार्थ—ऐसे मनुष्य न करने योग्य कार्यों को भी कर डालते हैं। तदनन्तर उस सौधर्म इन्द्र ने गौतम का मान भंग करने के लिये आगम के अर्थ को सूचित करने वाला और बहुत बड़े अर्थ से भरा हुआ श्लोक पढ़ने लगा:—

धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म ।
षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः ॥
तत्वानि संयमगति सहिता पदार्थै ।
रंगप्रवेदमनिशं वद चारित्र कायम् ॥

इसका अर्थ यहहै कि—धर्मद्वयं धर्म के दो भेद हैं, वे दो भेद कौन २ है ? तीन प्रकार का काल कौनसा है, कर्म सब कितने हैं ? छः द्रव्य कौन कौन है ? उसमें काल सहित कौन कौन द्रव्य है, काल किसको कहते हैं, लेश्या कितनी और कौनकौन सी है ? तत्व कितने और कौन कौन हैं ? संयम कितने और कौन कौन हैं ? गति कितनी है और कौन कौन है ? पदार्थ कितने और कौन कौन हैं ? श्रुत ज्ञान के अंग कितने और कौन कौन हैं ? अनुयोग कितने और कौन कौन हैं ? और अस्ति काय कितने और कौन कौन हैं ? इन सबका अर्थ आप बतलाइये ।

इस प्रकार इंद्र के द्वारा पढ़ा हुआ काव्य सुनकर गौतम कुछ खिन्न हुआ और मन में विचार करने लगा कि मैं इस काव्य का क्या अर्थ बतलाऊँ ? अथवा इस बूढ़े ब्राह्मण के साथ बातचीत करने से कोई लाभ नहीं, इसके गुरू के साथ वाद विवाद करूंगा । यह विचार कर गौतम ने इंद्र से कहा कि चल रे ब्राह्मण तू अपने गुरू के पास चल, वहीं पर तेरे कहने का निश्चय किया जायगा । इस प्रकार कह कर वे दोनों ही विद्वान सब लोगों को साथ लेकर चल दिये । गौतम ने मार्ग में विचार किया कि जब मुझसे इस ब्राह्मण का ही उत्तर नहीं दिया जाता है तो फिर इसका गुरु तो भारी विद्वान होगा, उसका उत्तर किस प्रकार दिया

जायगा। इस प्रकार वह सौधर्म इंद्र गौतम ब्राह्मण को समव शरण में ले जाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। सो ठीक है, क्योंकि अपने कार्य के सिद्ध हो जाने पर कौनसा मनुष्य संतुष्ट नहीं होगा अर्थात सभी होंगे।

जिस समय वह गौतम अपने विद्या के मद से मस्त होकर छाती अकड़ाते हुए अपने मस्तक को ऊँचा कर, मान से उन्मत्त होकर पाँचसौ शिष्योंके साथ अंदर प्रवेश किया उस समय भगवान अपनी शोभा से तीनों लोकों में आश्चर्य उत्पन्न करने वाले भगवान मानस्तंभ को देख कर उसका मान गलित हुआ और वह अपने मन में विचार करने लगा कि जिस गुरु की पृथ्वी भर में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली इतनी विभूति है वह क्या, किसी से जीता जा सकता है ? कभी नहीं।

तदनन्तर भगवान वीर प्रभु के दर्शन कर वह गौतम उनकी स्तुति करने लगा। वह कहने लगा कि हे प्रभो ! आप कामरूपी योद्धा को जीतने वाले हैं, भव्य जीवों को धर्मोपदेश देने वाले हैं, अनेक मुनि राजों का समुदाय आपकी पूजा करता है, आप तीनों लोकों को तारने वाले हैं, कर्मरूपी शत्रु का नाश करने में समर्थ हैं और तीनों लोकोंके इंद्र आपकी सेवा करते हैं। इस तरह अनेक प्रकार से भक्तियुत होकर स्तुति करके गौतम ने भगवान के चरण कमलों को नमस्कर किया और फिर मुक्ति रूपी स्त्री की इच्छा रखने वाला वह गौतम इंद्रियों के विषयों से विरक्त हुआ, अर्थात वैराग्य धारण किया। उसी तरह उसके साथ के पांच सौ शिष्यों तथा उसके भाइयों ने भी जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। ठीक ही है ऐसे वीतराग भगवान के चरणों में पहुँचे कर

भव्य जीव संसार समुद्र से क्यों नहीं तर सकते ? अर्थात सभी तर सकते हैं। तदनंतर भगवान वीर प्रभु की वाणी तुरंत ही खिरने लगी और वह वाणी सुनने वाले भव्य जीवों के हृदय रूपी कमल को प्रफुल्लित करने लगी।

आर्य सज्जनो, भगवान महावीर ने अनुपम अक्षय आत्म सुख की प्राप्ति के लिये स्वयं त्याग, वैराग्य, निःस्पृहता, वात्सल्य, दया तथा परोपकार आदि की भावना भाकर सांसारिक समस्त प्राणियों के दु ख द्वन्द को मिटाकर उन्हें शाश्वत सुख प्राप्त कराने के लिये तप त्याग, वैराग्य, दया, परोपकार आदि की भावना दर्शायी है और आत्मोन्नति प्रगट करने का पाठ पढ़ाया है। यदि हम इसे अपने हृदय रूपी भूमि में उतारकर, श्री वीरप्रभु की वीर वाणी रूपी जल से सिंचन करते जायेंगे, तो निःसन्देह हमारे हृदय में भगवान महावीर के समान प्राणी मात्र का कल्याणकारी तथा परोपकारी बीजांकुर उत्पन्न हो जायगा और उससे हम उच्च मानवता को प्राप्त करके अन्त में शीघ्राति शीघ्र विश्वपति बन सकते हैं।

सात तत्वों का वर्णन—

भगवान् महावीर स्वामी ने भव्य प्राणियों के लिये निम्न लिखित सात तत्वों का वर्णन किया है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं।

जीव का स्वरूप—जो अन्तरंग और बहिरंग प्राणों से पूर्व भव में जीता था, वर्तमान काल में जी रहा है और आगे भी

जीवेगा उसे जीव कहते हैं। ये जीव अनादि काल से स्वयंसिद्ध हैं। इस जीवका कोई कर्ता धर्ता नहीं है। जीव अनादि काल वा अनादि द्रव्य से अनादि है। यह जीव पंचभूतों से उत्पन्न हुआ नहीं है क्योंकि पंचभूत जड़ पदार्थ हैं और वह हमेशा नष्ट होते रहते हैं। यह जीव भव्य अभव्य के भेद से, संसारी और सिद्ध के भेद से, सैनी असैनी के भेद से या त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार का है। उनमें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्नि कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावरों के भेद हैं। और दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पाँच इंद्रिय ये चार त्रस के भेद हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांच इन्द्रिय हैं। स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण और शब्द ये उन इन्द्रियों के विषय हैं। इस निमित्त से यह अनादिकालीन जीवात्मा इन्द्रिय और गन्धादिक में रमण करता हुआ हमेशा संसार में दुःखी होकर भ्रमण करता है।

योनियां तीन प्रकार की हैं—

१ शंखावर्त २ पद्मपत्र और वंशपत्र। इनमें से शंखावर्त योनि में कभी गर्भ नहीं रहता यह बात निश्चित है। पद्मपत्र योनिसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र आदि पुरुष उत्पन्न होते हैं। तथा वंशपत्र योनि से साधारण मनुष्य उत्पन्न होते हैं। जीवों के जन्म तीन प्रकार से होते हैं। सम्मूर्च्छन गर्भ, उत्पाद तथा उनकी योनियाँ सचित्त अचित्त शीत, उष्ण, संवृत, विवृत, शीतोष्ण, सचित्ताचित्त, संवृत विवृत ये नौ

प्रकार की हैं। जिन जीवों के ऊपर उत्पन्न होते समय जरा होती है उसे जरायुज, जो अण्डे से उत्पन्न होते है, वे अंडज और जिनके ऊपर जरा नहीं आती है और उत्पन्न होते ही भागते लगते हैं वे पोत कहलाते हैं। ये तीनों प्रकार के जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं। देव नारकी उपपाद से उत्पन्न होते हैं, और बाकी के सब जीव सम्मूर्च्छन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार योनियों के ९ भेद भगवान ने संक्षेप में कहे हैं। इनको विस्तार से कहा जाय तो योनियाँ चौरासी लाख होती हैं। नित्य निगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक अग्नि-कायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक इनकी सात २ लाख योनियाँ हैं। दोइन्द्रिय, तीनइंद्रिय चारइन्द्रिय इनकी दो दो लाख योनियां हैं। नारकियों की चार लाख योनियाँ हैं। वे परस्पर एक दूसरे को दुःख दिया करते हैं, क्षेत्र सम्बन्धी शीत और उष्णता के दुःख भोगा करते हैं। मानसिक और शारीरिक दुःख भोगा करते हैं और असुरकुमार देवों के द्वारा दिये हुए दुःखों को भोगा करते हैं। इस प्रकार पांच प्रकार के दुःख नारकियों क. हमेशा भोगने पड़ते हैं। तिर्यञ्च की चार लाख योनियां है। ये तिर्यञ्च भी बाँधना, मारना, छेदना, भूख, प्यास का सहना और बोझा ढोना आदि २ अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए उपर्युक्त योनियों में परिभ्रमण किया करते हैं। मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ होती हैं। इन योनियों में परिभ्रमण करते हुए मानव जीव इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग से उत्पन्न हुये अनेक प्रकार के दुःखों को भोगा करते हैं। इसी प्रकार देवों के भी चार योनियां

हैं। इनमें परिभ्रमण करते हुए देव भी मानसिक दुःख भोगा करते हैं।

हे भव्य प्राणियों ध्यान पूर्वक सुनो इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है। गर्भ से उत्पन्न होते हुए स्त्री तथा पुरुष स्त्रीलिंग, पुल्लिंग नपुसंकलिंग इन तीनों लिंगों को धारण करने वाले होते हैं। देव भोग भूमियों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दो ही लिंगोंको धारण करने वाले होते हैं। एकइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, सम्पूर्च्छन पंचेन्द्रिय और नारकीय ये सब नपुंसकलिंग ही होते हैं। इसी प्रकार सर्वज्ञ वीर प्रभु ने कहा कि एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और चारइन्द्रियों के अनेक संस्थान होते हैं। देव और भोग भूमियों के समचतुरस्र संस्थान होता है और बाकी तिर्यञ्च मनुष्य के छह संस्थान होते हैं। सबसे अधिक आयु देव नारकियों की तीस सागर है, व्यन्तर व ज्योतिषियों की एक पल्य व भवनासियों की एक सागर है। प्रत्येक वनस्पतियों की उत्कृष्ट आयु १० हजार वर्ष है और सूक्ष्म वनस्पतियों की आयु अन्तर्मुहूर्त है। पृथिवीकायिक जीवों की २२ हजार वर्ष है, जल कायिक जीवों की ६० हजार वर्ष है, वायुकायिक जीवों की ३ हजार वर्ष है और अग्निकायिक जीवों की ३ दिन की उत्कृष्ट स्थिति है। दोइन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष है और तीन इन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति भगवान वीर प्रभु ने ४६ दिन की बतलाई है। चार इन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति ६ महीने की है, पांच इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु ३ पल्य की है तथा इन्हीं की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

छः द्रव्यों का स्वरूप—

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छः द्रव्य हैं। इनमें से धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीव भी हैं और काय भी हैं अर्थात् अनेक प्रदेशी भी हैं। इन छःों द्रव्यों में से पुद्गल जीव रूपी है और बाकी सब अरूपी है तथा सभी द्रव्य नित्य हैं। जीव और पुद्गल दो द्रव्य क्रिया वाले हैं और बाकी चार द्रव्य क्रिया रहित हैं। धर्म और अधर्म एक जीव के असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गलोंमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। आकाश में अनन्त प्रदेश हैं और काल का एक ही प्रदेश है। दीपक के प्रकाश के समान जीवों के प्रदेशों में भी सँकोच होने और फैलने की शक्ति है। इसलियें वे छोटे बड़े शरीर में जाकर शरीर के आकार के हो जाते हैं। शरीर वचन, मन और श्वासोच्छ्वास पुद्गल के उपकार हैं। जिस प्रकार मछलियों के चलने में जल सहायक होता है उसी प्रकार जीव और पुद्गलों के चलने में धर्म द्रव्य सहायक होता है। जिस प्रकार पथिकों के ठहरने में छाया सहायक होती है उसी प्रकार जीव पुद्गलों के ठहरने में अधम द्रव्य सहायक होता है। द्रव्यों के परिवर्तन होने में जो कारण है उसको काल कहते हैं। वह क्रियापरिणामन छोटे और बड़े से जाना जाता है अर्थात हवा बादलों को चलाना परिणामन अर्थात् रूपान्तर होना और परत्वा परत्व १५ वर्ष का बड़ा और १० वर्ष का छोटा यह काल का उपकार है। सब द्रव्यों को अवकाश देना आकाश द्रव्य का उपकार है। द्रव्य का लक्षण सत्य है जो प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होता

रहता है और ज्यों का त्यों बना रहता है उसको सत्य कहते हैं। अथवा जिसमें गुण हो और पर्याय हो उसको द्रव्य कहते हैं। संसार में जितने पदार्थ हैं उन सब की पर्याय बदलती रहती है। पर्यायों का बदलना ही उत्पाद व्यय है। द्रव्य में गुण सदा बना रहता है इसलिये गुणों की अपेक्षा से द्रव्य में द्रव्यपना रहता है। इस प्रकार जिसमें गुण पर्याय हो अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो उसको द्रव्य कहते हैं, ऐसा श्री भगवान ने कहा है। मन वचन शरीर की क्रिया को योग कहते हैं। शुभ योग अर्थात् मन वचन काल की शुभ क्रियाओं को पुण्य कहते हैं और अशुभ योग अर्थात् अशुभ क्रियाओं को पाप कहते हैं। मिथ्यात्व अविरति कषायों से जो कर्म आते हैं उसे आश्रव कहते हैं। इनमें से मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है, अविरति १२ प्रकार का है, योग १५ प्रकार का है और कषाय के २५ भेद है। इसका भेद अन्य ग्रन्थ से जान लेना क्योंकि ग्रन्थ विस्तार के भय से यहां पर इसका वर्णन नहीं किया गया।

मिथ्यात्व—

एकान्त विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पांच मिथ्यात्व के भेद हैं।

इन्हीं पांच मिथ्यात्वों के द्वारा यह जीव मूढ़ता को प्राप्त होकर हमेशा चारों गतियों में भ्रमण कर दुःख को उठाता है।

६ प्रकार के जीवों की रक्षा न करना, पांच इन्द्रियों तथा मन को वस में न करना, इन्द्रियों के विषय में लोलीन रहना इस प्रकार असंमय के १२ भेद भगवान ने निरुपण किये हैं। इसी असंयम के द्वारा संसारी प्राणी इन्द्रिय लोलुपता में रत होकर

अनेक जीवों का संहार करते हुये अपनी इन्द्रियों को पोषण क
अनन्त पापों का भागी होकर लख चौरासी योनियों में जन
और मरण करते हुये अनन्त दुःख को सहते हुये जन्म मर
का चक्कर कर रहे हैं। कषाय के दो भेद हैं। कषाय वेदनीय औ
नोकषाय वेदनीय। इनमें से अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माय
लोभ, प्रत्यास्थान क्रोध मान माया लोभ, स्वञ्ज्लन क्रोध, मा
माया लोभ ये १६ भेद कषाय वेदनीय के हैं हासूय, रति, अरति
शोक, भय, जुगुप्सा, पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग ये न
कषाय वेदनीय के भेद हैं। इस प्रकार कषाय के २५ भेद हो
हैं। जिस प्रकार समुद्र में पड़ी हुई नाव में छिद्र हो जाने
उसमें पानी भर जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व अविरत आ
के द्वारा जीवों के सदा कर्म का आश्रव होता रहता है। इस जी
के साथ अनादि काल से अनन्त कर्मों का सम्वन्ध चला आ र
है। उन्हीं कर्मों के उदय से इस जीव के रागद्वेष रूप भाव हो
रहते हैं। जिस प्रकार घी से चिकने हुये बर्तन में उड़ती हु
धूलि जम जाती है उसी प्रकार रागद्वेष रूप परिणामों से अन
पुद्गल आकर इस जीव के साथ मिल जाते हैं। इसको बन
कहते हैं। पहले कर्म के बन्ध के उदय से रागद्वेष होता है औ
उनसे फिर नय कर्म का बन्ध होता है। इसलिये कर्म और बन
का सम्बन्ध आनादि काल से है। प्रकृति, स्थति, अनुभाग औ
प्रदेश ये बन्ध के चार भेद है। प्रकृति बन्ध के आठ भेद हैं
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गो
और अन्तराय। इस प्रकार इन कर्मों के द्वारा आत्मा के अन्द
हमेशा शुभ अशुभ कर्म का आश्रव होता रहता है। इसलि

जीव शुभ अशुभ कर्मों को बांधकर साता, असाता. का बंध कर लेता है संवर का अर्थ आने वाले कर्मों का रोकना है। संवर को रोकने वाली भावना:—गुप्ति, समित, धर्म, अनुपेक्षा, परीषह और चारित्र से आश्रव रुक जाता उसे संवर तत्व कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र में पड़ी हुई नाव का छिद्र बन्द कर देने से वह नाव कभी डूबती नहीं और वह अपने इष्ट स्थान पर पहुँच जाती है उसी प्रकार ये आत्मा भी संवर के होने पर फिर संसार में कभी भी नहीं डूबती, और वह अपने मोक्ष रूपी स्थान को पहुँच जाती है।

निर्जरा तत्व—

१२ प्रकार के तपश्चरण से, धर्म ध्यान रूपी उत्तम बल से और रत्नत्रय रूपी अग्नि से यह जीव कर्मों की निर्जरा करता है। वह निर्जरा दो प्रकार की है। सविपाक और अविपाक। सविपाक निर्जरा रोग आदि के द्वारा फल देकर कर्मों के झड़ जाने से होती है तथा जिस प्रकार घास में रख कर आम को जल्दी पका लेते हैं उसी प्रकार तप और ध्यान के द्वारा विना फल दिये जो कर्म नष्ट हो जाता है उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं।

मोक्ष—

सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मुक्ति होने पर यह जीव एरण्ड के बीज के समान ऊपर को गमन करता

है और जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहां तक अर्थात् लोकाकाश के ऊपर तक जाता है। आगे धर्मास्तिकाय न होने से वहीं जाकर ठहरता है, आगे नहीं जाता है। कुछ लोग मोक्ष के बारे में शंका करते हैं कि सम्पूर्ण कर्म नष्ट होने के बाद जब जीव ऊपर गमन करता है वह हमेशा गमन करता रहता है, कहीं पर भी नहीं रुकता है। जैसे समुद्र में खाली घड़े को छोड़ दिया जाय तो वह स्थिर न होकर हमेशा ऊपर २ चलता रहता है इसी प्रकार कर्म का क्षय होने के बाद आत्मा ऊपर २ ही जाता है इसलिए भगवान महावीर ने इनकी शंका को दूर करने के लिए ६ द्रव्यों का निरूपण इस प्रकार किया है कि जहां तक छः द्रव्य हैं वहीं तक जीव जाता है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने सात तत्वों का लक्षण बतलाया है।

इन तत्वों को जाने बिना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए हे भव्य प्राणियो! अगर तुम को सच्चे आत्मसुख की प्राप्ति करनी है तो इन तत्वों को जानना ही सच्चे शान्ति के निकेतन को प्राप्त करना है और आत्मोन्नति का सच्चा मार्ग है अतः अब इसी मार्ग को प्राप्त करने के लिये भगवान महावीर ने अहिंसा धर्म का प्रतिपादन किया है।

धर्म का स्वरूप :—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमम्॥

हे आर्य भूमि के भव्य प्राणियो ! जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोधी होता है, वह धर्म नहीं है, कुमार्ग अर्थात् कुधर्म है। धर्म वही है, जिसका किसी भी दूसरे धर्म से विरोध नहीं होता हो। वही धर्म ग्रहण करने योग्य है, वही धर्म संसारी प्राणी मात्र को दु:ख से छुड़ाकर सुख में ले जाता है। वही धर्म सार्वजनिक धर्म कहलाता है। जिन्होंने अच्छी तरह प्रत्यक्ष, प्रमाण, अनुमान आगमादि के द्वारा परीक्षा कर ग्रहण किया है वही धर्मात्मा है।

धर्म की कसौटी—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते।
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥
तथैवधर्मो विदुषा परीक्ष्यते।
श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः ॥

हे संसारी प्राणियो ! जिस प्रकार निघर्षण (कसौटी पर कसना), छेदन (काटना), ताप (तपाना), ताडन (पीटना) आदि क्रिया से सुवर्ण परीक्षित होता है, वैसे ही शास्त्र, शील, तप, दया आदि गुणों से विद्वान् पुरुष धर्म की परीक्षा करते हैं।

जिस प्रकार श्री भगवान् महावीर स्वामी तप-त्याग की कसौटी पर घोराघोर तप करके कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष पद को प्राप्त किये और अपने ही समान बनने के लिये लाखों प्राणियों को सन्मार्ग दिखाकर कल्याण कर गये उसी प्रकार यदि

आप लोग भी उनके प्रदर्शित किये गये मार्ग का अनुसरण करेंगे तो उन्हीं के समान वीर बन जायेंगे।

भगवान् महावीर स्वामी बारंबार संबोधित करके कहते हैं कि हे मानव प्राणियो! तुम्हें बड़ी मुश्किल से मानव पर्याय प्राप्त होने पर भी उस मानवता से श्रेष्ठ मानवता को यदि प्राप्त नहीं करोगे तो तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि जैसे कोई मानव रूपी रत्न को विषय वासना रूपी कौवे को उड़ाने में नष्ट कर दिया हो तो तुमसे बढ़कर दूसरा मूर्ख कौन ?

इसी प्रकार म० भा० व०—

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्चये ।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः ॥

वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों में राग बना हुआ है, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है। वे तो कुत्ते, घोड़े और सूअर के समान ही हैं।

ऐसे वा० पु० में भी कहा है—

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां ।
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ॥
विषम विषयतोये मज्जतामप्लवानां ।
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥

जो मनुष्य संसार रूपी समुद्र में पड़कर सुख-दुःख, हर्ष-शोक, गर्मी-सर्दी आदि पवन के झकोरों से पीड़ित रहते हैं। लड़के-लड़की, पत्नी आदि की रक्षा के बोझ से दबे रहकर तथा तैरने का कोई साधन न पाकर विषय रूपी अगाध जल में डूबते-रहते हैं ऐसे लोगों की भगवान् विष्णु ही नौका बनकर रक्षा करते हैं।

इसलिये मनुष्यों को सदा धर्म, अर्थ व काम इन तीनों पुरुषार्थों का साधन करने के पश्चात् मोक्ष पुरुषार्थ का साधन कर लेना मानवता है। यह मानवता बारंबार मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

मानवता दुर्लभ है :—

मानुष्यं वरवंशजन्मविभवो दीर्घायुरारोग्यता।
सुजनत्वं सुसुता प्रियतमा भक्तिश्च तीर्थंकरे॥
इन्द्रत्वं सुजनत्वमिन्द्रियजयः सत्पात्रदाने स्थितिः।
पुण्येन विना त्रयोदशगुणाः संसारिणां दुर्लभः॥

उत्तम मनुष्य, उत्तम कुल में जन्म, उत्तम ऐश्वर्य, दीर्घायु, आरोग्यता, सज्जनता, धर्मानुकूल कुटुंबी, अनुगामिनी धर्मपत्नी तीर्थंकर में भक्ति, इन्द्रपद, सज्जनों से प्रेम, इन्द्रिय निग्रह (जितेन्द्री) तथा सत्पात्र दान में स्थिति होना ये तेरह गुण पुण्य के बिना संसारी पुरुषों के दुर्लभ हैं। जिन्होंने पूर्व-भव में तीनों

पुरुषार्थ किये हैं उन्हीं को उपर्युक्त तेरह गुण प्राप्त हो सकते हैं। अतएव मनुष्य को सदा धर्मपुरुषार्थ करते रहना चाहिये। परन्तु जो लोग ऐसा नहीं करेंगे उनका उत्तम नर रत्न तथा समस्त साधन उसी प्रकार व्यर्थ हो जायगा जिस प्रकार निरुद्यमी एव प्रमादी कारीगर (शिल्पी) के समस्त साधन नष्ट हो जाते हैं। इस लिये सर्वदेशी मनुष्य को अपने मानव रत्न के द्वारा धर्म पुरुषार्थ करना नितान्त आवश्यक है।

मानव को मोक्ष पुरुषार्थ करना नितान्त आवश्यक है—भगवान् महावीर स्वामी प्रत्येक प्राणी को यह शिक्षा देते हैं कि:—हे प्राणियो ! संसार में अमूल्य नर रत्न को पाकर अपने आप अपने ही पुरुषार्थ के द्वारा अपनी उन्नति करने का निरन्तर यत्न करते रहना चाहिये। प्रत्येक प्राणी अपने पुरुषार्थ के बल से ही अनादि काल से अपने साथ संतान रूप से चले आये मिथ्यात्व रूपी शत्रु का नाश कर सकता है तथा सम्यक्त्व रत्न को पाकर उसके द्वारा अपने स्वरूप में आचरण करता हुआ अत्यन्त निर्मल आत्मशुद्धि को प्राप्त करके संसार से मुक्त हो सकता है।

परन्तु कब मुक्त हो सकता है ? जब यह जीव अपने रत्नत्रय मार्ग (अर्थात् सच्चेआत्म धर्म)में प्रयत्नशील हो और पुरुषार्थ को अपना इष्ट समझे। अर्थात् जो व्यक्ति अपने बल को बाह्य निमित्तों के साथ संयोग में लाकर उन्नति के लिये साहस और उत्साह से पुरुषार्थ करता है वह उन्नति कर लेते हैं, परन्तु जो आलसी रहता है वह अपनी वर्तमान दशा से भी अवनति कर बैठता है। उदाहरणार्थ कहा जाता है कि यदि हम बीस हजार

रुपये रक्खें तो व्यय बराबर होता ही है। क्योंकि व्यय के बिना जीवन नहीं चल सकता। परन्तु यदि हम धन पैदा करके, किये गये व्यय की पूर्ति न करें तो धीरे २ एक दिन सारा रु० समाप्त हो जायगा और बीस हजार के धनी से एक हजार के धनी होकर अन्त में उसे भी खो बैठेंगे और दुनिया भर में कंगाल बन जायेंगे।

इसी तरह यदि हम प्राचीन काल में बांधे हुए शुभ कर्मों के फलों को केवल भोगते चले जावें यानी नवीन शुभ कर्मों को न करें तो एक दिन हम सारा पुण्य समाप्त करके दरिद्री बन जायेंगे। केवल दरिद्री ही नहीं बल्कि पाप की गठरी को सिर पर लाद कर भारी भारवाहक होकर अधोगति के पात्र बन जायेंगे। इसी प्रकार आधुनिक काल के व भारतवासी अधिकतर पूर्व भव में किये हुए पुण्य के द्वारा मनुष्य रूपी रत्न को पाकर अत्यन्त विषैले इन्द्रियसुख में मग्न होकर पाप रूपी गठरी को बांध करके अधोगति के भागी बन रहे हैं।

पुरुषार्थ के बिना मनुष्यत्व कदापि प्रगट नहीं हो सकता। जो जो शक्तियां मनुष्य के अन्दर विद्यमान हैं वे सभी पुरुषार्थ के बिना राख के नीचे दबी हुई अग्नि की भाँति छिपी हुई रह जाती हैं। यदि उनको काम में न लाया जाय तो वह सदा दबी ही रहेंगी। अतः हमें सच्चे मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना परमावश्यक है।

पुरुषार्थ एक ऐसी वस्तु है कि अशुभ कर्म को भी शुभ कर सकता है अर्थात हमारे तीव्र कर्मों को टालकर मन्द कर सकता

है। जैसे कि यदि ईंट, चूना, मिट्टी इत्यादि भी सामग्री तैयार हो और घर बनाने वाला शिल्पी भी तैयार हो, परन्तु जब तक शिल्पी अपना हाथ पांव हिलाकर उस चूने मिट्टी मसाले को लगाकर ईंट को नहीं जोड़ेगा तब तक मकान कभी नहीं तैयार हो सकता उसी तरह हम संसारी मानव जीवों के जब तक साधारण ज्ञान और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अपने चित्त का पागलपन बिल्कुल नहीं हटायेंगे तबतक कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि मोहनीयकर्म के मन्द उदय से अपने में साधारण सच्चे आत्म श्रद्धान की शक्ति उत्पन्न होना, अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से शरीर और उसके अंगोपांग, हाथ और पैर आदि बनाना नाम कर्म के उदय का प्रताप है और इसी के द्वारा नीच ऊँच कुल या नीच कुल में जन्म लेना गोत्र कर्म के उदय का फल है। अच्छे या बुरे देश तथा कुटुम्बियों में जन्म लेना अर्थात् पैदा होना, वेदनीय कर्म के उदय से है। एक गति से लेकर चारों गतियों में भ्रमण कराने का काम आयु कर्म का है। शुभाशुभ कर्मों के द्वारा यह आत्मा अनादि काल से भ्रमण करता हुआ बड़े पुण्य के निमित्त से आज इस आर्य भूमि में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के योग्य उत्कृष्ट मानव पर्याय पाया है। यह मानव पर्याय इस आर्य क्षेत्र में हमें प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, परन्तु इस तरह मानवता को प्राप्त करके भी अगर इससे असली मानवता को प्राप्त करने का प्रयत्न या पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो अपने को मानव कहलाना भी हमारी मूर्खता है। इसलिये मनुष्य को पुरुषार्थ के द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम में परस्पर विरोध न आने देकर अन्त में मोक्ष

पुरुषार्थ की प्राप्ति करना ही असली मानवता है।

उद्यम करना मनुष्य का परम कर्तव्य है—

भगवान महावीर ने यह बतलाया है कि हे संसारी मानवो ! इसी बातका ध्यान रखकर आर्य भूमि के प्राचीन ऋषि मुनियों ने, आचार्यों ने तथा रामचन्द्र, कृष्ण, श्रीवृषभदेव, समन्तभद्र, अकलंकदेव इत्यादि ने मोक्ष साधनी भूत तथा असली आत्म सुख की साधनी भूत चार पुरुषार्थों की नीव मानव प्राणी के प्रति डाली है।

धर्म पुरुषार्थ :—

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
न्नन्योन्यानुगुणं तदर्हंगृहणीस्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहारआर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी,
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभिः सागारधर्मं चरेत् ॥

अन्याय, अत्याचार, विश्वासघात, चोरी, बेइमानी, छल, कपट, मायाचार, कालाबाजार इत्यादि करके जो धन कमाया जाता है, वह पाप का मूल कारण है। वह धन धर्म कार्य में, दान में, सत्पात्र में खर्च करने योग्य नहीं होता है, क्योंकि वह द्रव्य अन्यायमूल कमाई है।

इस न्याय को नष्ट करने वाला कौन है ? इसके उत्तर में यही कहा जायगा कि लोभ ! लोभ बड़ा भारी ग्रह है, इसी से

पाप होता है। पाप, अधर्म, दुःख और कपट की जड़ लोभ ही है। काम, क्रोध, मोह, माया, मान, पराधीनता, क्षमाहीनता, निर्लज्जता, दरिद्रता, चिन्ता और अपयश आदि दुर्गुण लोभ से ही उत्पन्न होते हैं। भोगों में आशक्ति, अति तृष्णा, बुरे कर्म करने की इच्छा, कुल, विद्या, रूप, धन आदि का मद, सर्व प्राणियों से बैर, सबका तिरस्कार, सबका अविश्वास, सबके साथ टेढ़ापन, परधन हरण, परस्त्री गमन, वाणी से चाहे जो बक उठना, मन में चाहे जो सोचना, किसी की निंदा करने लगना, काम के वश हो जाना, बिना मौत मरना, ईर्ष्या करना, झूठ बोलने को मजबूर होना, जीभ के स्वाद के वशीभूत होना, बुरी बातें सुनने की इच्छा करना, पर निंदा करना, अपनी बड़ाई करना, मत्सरता, द्रोह, कुकार्य सब तरह के व्यसन और न करने योग्य कार्य भी कर बैठना आदि अनेक दुर्गुण लोभ से ही उत्पन्न होते हैं। जन्म से लेकर बुढ़ापे तक किसी भी अवस्था में लोभ का त्याग करना कठिन है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, परन्तु उसका लोभ बूढ़ा नहीं होता। गहरे जल से भरी हुई नदियों का जल समुद्र में मिल जाता है, परन्तु जैसे उस जल से समुद्र तृप्त नहीं होता उसी प्रकार लोभी मनुष्य की कामना कभी नहीं पूरी होती। लोभ के स्वरूप को देव, दानव, मनुष्य और कोई भी प्राणी ठीक-ठीक नही जान सकते अतः मनस्वी पुरुष को उचित है कि वहलोभ को पूर्णरूप से जीते। मन को वश में न रखनेवाले लोभी मनुष्यों में द्रोह, निन्दा, हठग्राहिता और स्वार्थपरता इत्यादि दुर्गुण अधिकता से देखने में आते हैं। अनेक शास्त्रों को जानने वाले दूसरों की शंका को समाधान करने वाले तथा बहुश्र पडित

भी लोग के वशीभूत होकर संसार में अनेक कष्ट पाते हैं। लोभी मनुष्य सदैव क्रोध में डूबे रहते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों के शिष्टाचार से वे सर्वथा वंचित हो जाते हैं। उनके मन में क्रूरता और वाणी में मिठास भरा रहता है। इस अन्याय के कारण ही मनुष्य को लोभ में फँसाकर धर्मरूपी पथ से गिरा देते हैं और स्वयं भी गिर जाते हैं—

कहा भी है कि—

सत्यप्रशमतपोभिः सत्यघनैः शास्त्रवेभिर्विजितः ।
लोभोऽवरं प्रविष्ट कुटिलं हृदयं किराटीनाम् ॥

लोभ रूपी गर्त में प्रविष्ट महाजन के कुटिल हृदय की गति अत्यन्त दयनीय है। सब कुछ होने पर भी उसका लोभ कम नहीं हो पाता। तृष्णा रूपी धारा में वह निमग्न रहता है। इस प्रकार आज कल के इस भारतवर्ष में लोभ के वशीभूत होकर क्या बड़ा क्या छोटा उचितानुचित का विचार सब कुछ त्याग करने को तैयार हैं। आज तो यह आर्यभूमि, यह पवित्र धारा तथा यह उन्नत सुसंस्कृत राष्ट्र इस लोभवृत्ति का आचरण कर दिन प्रति-दिन पतन की ओर उन्मुख होता जा रहा है। यह भूमि प्राचीन काल से आर्य भूमि कहलाती है। इसी पवित्र स्थान में बड़े २ महापुरुषों ने जन्म लिया, ज्ञान प्राप्त किया और जीवन के परमोत्कर्ष को प्राप्त किया। इसलिये इसको रत्नभूमि भी कहते हैं, परन्तु ये सब विशेषताएं शनैः २ लुप्त होती जा रही हैं।

यह लज्जा की बात है कि किसी समय श्रावकों की चर्या का समस्त विश्व में आदर होता था, उसकी पूजा होती थी, यह सब १ संयतः-चर्या और धर्म वृद्धि का ही प्रभाव था किन्तु आज तो हमारी चर्या की शिथिलता, धर्म और श्रद्धान की न्यूनता होने से धर्म का ह्रास होता जा रहा है। आँकड़े इस बात को सिद्ध करते हैं कि अन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा जैनों में अपराधियों की संख्या नहीं के बराबर रही है। कहीं २ तो किसी भी जैन का नाम ऐसे व्यक्तियों में नहीं आया। किन्तु आज इस उन्नतचरित्र की ओर से उदासीनता होने के कारण अनेक बन्धु अनेक प्रकार के कार्य करने लग गये हैं। कोई रात्रि भोजन करता है, कोई शिथिलाचारी है, कोई धूम्रपान करते हैं, कोई व्यभिचार में प्रवृत्त हैं। इससे हमारी आर्थिक स्थिति भी खराब हो चली है। आय कम है और व्यय अधिक है। यही दुःख का मूल कारण है। पहले की अपेक्षा शिथिलाचार बहुत ज्यादा बढ़ता चला जा रहा है। यही कारण है कि लोभ की सीमा न रही और हमारा पतन दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। इस पतन का मुख्य कारण स्वार्थ या अन्याय ही है। इस पतन के कारण ही इस पवित्र जैनधर्म के वर्तमान अनुयायियों का ह्रास होता जा रहा है और हिंसा का प्रचार सर्वत्र फैलता जा रहा है। अतः आत्म हितेच्छु पुरुषों को इस पिशाच वृत्ति को दूर कर देना चाहिये। आजकल अन्याय से धन कमाने वाले की दशा क्या हो रही है, इसे आप लोग स्वयं ही अनुभव में आ रहे हैं।

आजकल पाप की मात्रा अधिक बढ़ती जा रही है और झूठ-

चोरी, कुशील, व्यभिचार, परिग्रह की तीव्र लालसा आदि लोभ के कारण ही जगत में फैली है। इसी को संसार में दुःख का कारण समझकर, जो न्याय द्वारा कमाई मिलती है उसमें संतोष रखना दयालु गृहस्थ का काम है।

२. गुणी गुरुओं की पूजा करना—सदाचार, सज्जनता, उदारता, दानशीलता, गम्भीरता, प्रिय और हितमित वचन बोलना, परोपकार करना तथा उत्तम गुणों से युक्त व्यक्तियों का बहुमान, प्रशंसा और नाना प्रकार से उनकी सेवा, विनय, आज्ञा-पालन, पूजा इत्यादि करना धर्मात्मा श्रावक के जीवन का आदर्श होना चाहिये। इसी तरह माता, पिता, शिक्षा, गुरू का सत्कार विनय वैयावृत्ति करनी चाहिये। वृद्ध अवस्था में माता पिता की पूजन की जाती है। माता पिता ने जो उपकार हमारे पर बचपन में किये हैं, उस उपकार को करोड़ों जन्म में भी हम से नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये माता पिता की सेवा मन लगाकर करनी चाहिये। इस प्रकार गुणयुक्त गुरुओं की पूजा, उपासना करना अपने में गुण विकास के लिये सार्थक है। क्योंकि जो गुण गुरू और गुणयुक्त गुरुओं में आदर नहीं रखता है वह अपने में गुणों की गुरुता के विकास के बिना आत्मगुणों के विकासरूप श्रावक धर्म को भी नहीं पाल सकता है। कहा भी है कि :

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निस्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

मनुष्यों की उत्पत्ति के समय में जो उनके माता पिता दुःख

को सहन करके उनका उपकार करते हैं, उसका बदला सौ वर्ष में भी नहीं चुका सकते, अर्थात् यदि उनकी सौ वर्ष तक लगातार सेवा की जावे तो भी किये गये उस उपकार का बदला नहीं चुका सकते।

३. सद्गी :—सद्गी शब्द का अर्थ दूसरे की झूठी निन्दा न करना और कठोरता आदि वचनों के दोषों से रहित प्रशस्त तथा सत्य वचन बोलना होता है। झूठ अनेक अनर्थों का मूल है और हमारे आत्मा को चारों गतियों के दारुण दुःखों में भ्रमण कराने वाला है। राजा वसु इत्यादि लोग झूठ बोलने की वजह से ही अभी तक नरक कुण्ड में पड़े हुए हैं।

कहा भी है कि :—

यदिच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादशस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥

अगर तुम एक उपाय से सम्पूर्ण संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो दूसरों की निन्दा रूपी धान्य को चरने वाली अपनी वाणी रूपी गाय को रोको अर्थात् दूसरों की निन्दा मत करो और सदा सत्य बोलकर असत्य का त्याग करो।

४. त्रिवर्ग का सेवन :—

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥

अर्थात् परस्पर अविरोध भाव से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों के सेवन बिना किये ही जिसके दिन आते तथा

जाते रहते हैं वे पुरुष लोहार की धौंकनी के समान श्वास लेते हुये भी मरे के समान हैं।

गृहस्थ को आमदनी का आधा भाग अथवा उससे कुछ अधिक धर्म में लगाना चाहिये और बचे हुए शेष धन से न्याय-पूर्वक इस लोक सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। क्योंकि इह लोक सम्बन्धी सुख क्षणिक है। इन्द्रिय सुख के लिये जितना व्यय होगा उतना ही साँसारिक वासना बढ़ेगी। इससे यह दोनों ही लोकों को बिगाड़ने का कारण है। धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों में काम का कारण अर्थ है क्योंकि अर्थ के बिना पचेंद्रिय विषयों की सामग्री ही प्राप्त नहीं हो सकती। अथवा प्रामाणिकता के बिना धन की प्राप्ति नहीं होती तथा प्रामाणिकता सदाचार पर निर्भर रहती है और सदाचार का नाम ही धर्म है। जिस प्रकार अर्थ के बिना पंचेन्द्रिय के विषयों की सामग्री नहीं प्राप्त हो सकती, उसी प्रकार प्रत्येक गृहस्थ को परस्पर में अविरोध भाव से ही धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का सेवन करना चाहिये। धर्म को छोड़कर अर्थ वा काम का सेवन नहीं करना चाहिये, अर्थ को छोड़कर धर्म तथा काम का सेवन नही करना चाहिये तथा काम को छोड़कर अर्थ व धर्म का सेवन नहीं करना चाहिये। क्योंकि जो व्यक्ति अपने धर्म की रक्षा न करते हुये अर्थ को पैदा करके अपने २ अर्थ के अनुकूल पंचेन्द्रियों के विषय का सेवन करते हैं उनकी प्रवृत्ति धर्म की रक्षा करने से अधार्मिक तथा अर्थ की रक्षा करते हुए विषय सेवन करने से दारिद्रादिक दोषों से आक्रमन नहीं मिटती है। इसलिये परस्पर विरोध भाव से

त्रिवर्ग का सेवन करने वाले पुरुष ही अपने कुलाचरण के अनुसार श्रावक धर्म के पालन करने के योग्य माने गये हैं। क्योंकि जितनी बातें ऊपर बतलाई गई हैं वे अपने कुलाचार की रक्षा के लिये हैं। किन्तु जिन पुरुषों की प्रवृत्ति धर्म, अर्थ, काम से विपरीत है और वे बिना तीनों पुरुषार्थों के अर्थ संचय करना चाहते हैं उनका जीवन गधे के सींग के समान समझना चाहिये। इसलिये मनुष्य को अपने कुलाचार की रक्षा तथा भगवान की आज्ञानुसार उनके मार्ग पर चलकर अपना हित करना चाहिये और ऊपर कहे हुए नियम के अनुसार तीनों पुरुषार्थों को पूर्ण रीति से पालन कर अपने जीवन की सफलता प्राप्त करनी चाहिये। हमारे जैनी भाइयों को अन्याय के द्वारा अनेक पाप करके पैसा नहीं कमाना चाहिये। उनको कुलाचार तथा कुल-मर्यादा की रक्षा करते हुये इस निंद्य कृत्य को दूर से ही त्याग कर देना चाहिये और न्याय पूर्वक जो अपने कर्मानुसार मिलता है उसमें सन्तोष रखना चाहिये।

५. योग्य स्त्री, स्थान आलय :—कुलीनता आदि गुणों से युक्ति योग्य स्त्री। जहां पर उदार, चतुर, सज्जन, गुणवान तथा धार्मिक पुरुष अधिक रहते हों ऐसा स्थान तथा जहाँ पर अर्थोपाजन की सामग्रीं हो ऐसा स्थान और योग्य मकान त्रिवर्ग के साधन करने में बाह्य कारण हैं। इसलिये योग्य स्त्री, योग्य स्थान व योग्य मकान त्रिवर्ग के साधन करने की सामग्री है। अर्थात् जिसको स्त्री, स्थान तथा आलय के निमित्त से किसी प्रकार की आकुलता नहीं है प्रत्युत जिसकी त्रिवर्ग के साधन में

उनसे सहायता मिलती है, ऐसा पुरुष ही श्रावक धर्म के पालन करने के लिए योग्य माना गया है। क्योंकि मनुष्य जीवन तथा सृष्टि के ऊपर स्त्री का अधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए कुभार्या के निमित्त से अपने जीवन व संतान के कोमल जीवन पर जो बुरे संस्कार पड़ते हैं उनसे व्यक्ति जल्दी त्रिवर्ग के सेवन की तरफ नहीं झुक सकते। अतः त्रिवर्ग के साधन करने योग्य स्त्री का होना प्रधान कारण माना है।

६. लज्जाशील :—सामन्य पुरुषों को भी लज्जाशील होना चाहिये क्योंकि लज्जा एक भूषण है। लज्जाशील पुरुष ही स्वाभिमानी, अपकीर्ति के भय से कभी भी अनाचार में प्रवृत्ति नहीं होता। कुकर्मों से हमेशा भयभीत रहता है। विरुद्ध परिस्थिति के आने पर वह प्राणों को तो छोड़ सकता है, किन्तु अपने स्वाभिमान पर धक्का नहीं आने देता। ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा के निबाहने के लिये सदैव तत्पर रहता है। लोक भयसे असत्कर्मों से सदा बचता रहता है, तथा उसके व्यवहार में सदैव मृदुल प्रवृत्ति पाई जाती है। उसका व्यवहार अत्यन्त शिष्ट होता है, किन्तु इसके विपरीत जो लज्जा रहित पुरुष हैं उन्हें अपनी बात और स्वाभिमान का ध्यान नहीं रह जाता। वे मनमाने कुवचन बोलते रहते हैं। बुरे कर्मों को करने से कभी हिचकते नहीं हैं, वे ली हुई प्रतिज्ञाओं को निर्भय होकर भंग करते हैं, अतः वे श्रावक धर्म के पालन करने योग्य नही हो सकते। इसलिये श्रावक धर्म के पालन करने में लज्जाशील भी एक गुण है।

७. योग्य आहार-विहार :—आहार और विहार शब्द में आहार शब्द सामान्य रूप से भोजन का और विहार शब्द

सामान्य रूप से विचरण—गमनागमन का वाचक है। व्रती पुरुष अपने कुलाचार की रक्षा के लिये तथा जीव दया पालने के लिये धर्म की वृत्ति के लिये आहार विहार को शास्त्र के अनुसार जो करते हैं यह भी कुलाचार की रक्षा का एक साधन है।

भोजन का ग्रहण शरीर की रक्षा के लिये होता है और शरीर की रक्षा तभी हो सकेगी जब कि यत्नाचार पूर्वक परिशोध किया जाय। परन्तु जब मनुष्य साधर्मी होकर भी शोधने और यत्नाचार पूर्वक तैयार करने की विधि नहीं जानता तो उसके तैयार किये हुए भोजन में संयम की रक्षा कभी नहीं हो सकती। इसी प्रकार जो व्यक्ति शोधने और तैयार करने की विधि जानता है, परन्तु विधर्मी होने से यत्नाचार पूर्वक जीवों की रक्षा नहीं कर सकता वह मनुष्य शोधकर भी जीवदया के स्वरूप क नहीं जान सकता। जानकार विधर्मी से भी संयम की रक्षा नहीं हो सकता। इसलिये दयामयी धर्म की रक्षा, अपने कुल धर्म की रक्षा और संयम की रक्षा करने वाले बुद्धिमान श्रावकों का साधर्मी होना आवश्यक है। इन ऊपर बताई हुई क्रिया से रहित होने पर उसके हाथ से भोजन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार अपने धर्म की रक्षा तथा अपनी क्रिया की रक्षा करने के लिये गमनागमन भी यथायोग्य करना चाहिये। क्योंकि यद्वा-तद्वा विहार करना भी धर्म तथा स्वास्थ्य का घातक है—

८. आर्य पुरुष की सत्संगति :—जिसके संसर्ग से अपने गुण का विकास एवं जगत में प्रशंसा होती है, तथा आत्मनिष्ठा बढ़ती है ऐसे सदाचारी पुरुषों की संगति को आर्य पुरुष की संगति कहते हैं। उनके संसर्ग में रहने वाले पुरुष से श्रावक धर्म का पालन हो

सकता है पर मिथ्याचारी, क्रोधी तथा कठोर शब्द बोलने वाले के संसर्ग से नहीं हो सकता कहा भी है कि :—

यदि सत्संगनिरतो भविष्यसि भविष्यसि,
अथ सज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि।

भावार्थ यह है कि यदि तुम सज्जन पुरुषों की संगति में लीन हो जावोगे तो अवश्य ही उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होगी। इसलिये हमेशा अपने कुल धर्म के पालन करने वाले श्रावक को सदैव उत्तम संगति में रहना चाहिये।

९. प्राज्ञ :—जो ऊहापोहात्मक, तर्क वितर्कात्मक मतिज्ञान के अतिशय को धारण करता है और जो दीर्घदर्शी, बलाबल का विचार करने वाला तथा विशेषज्ञ है उसको प्राज्ञ कहते हैं।

१०. कृतज्ञ :—दूसरे के द्वारा अपने पर किये हुये उपकार के जानने वाले को कृतज्ञ कहते हैं।

११. वशी :—जो इष्ट पदार्थों में अनासक्ति से तथा विरुद्ध में पदार्थों में अप्रवृत्ति से एवं स्पर्शादिक पचेन्द्रिय के विषयों को तथा अन्तरंग काम क्रोध, मोह, लोभ, शत्रुओं को वश में रखते हैं उन्हें वशी कहते हैं। अभिप्राय यह है कि पंचेन्द्रिय विकारों को रोकने के साथ२ जो काम क्रोधादि का प्रतीकार करते हैं उन्हें वशी कहते हैं। ऐसा पुरुष ही धर्म का अधिकारी माना गया है।

१२. धर्म की विधि को सुनने वाले :—जिसके द्वारा अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है उसे धर्म कहते हैं। युक्ति और आगम से सिद्ध उस धर्म की प्राप्ति अथवा स्वरूप को जो प्रति दिन सुनता है उसे विधि का सुनने वाला कहते हैं।

१३. दयालु :—दुःखी प्राणी के दुःख को दूर करने वाले को दयालु कहते हैं। दया ही धर्म का मूल है। क्योंकि दया से जिसका हृदय पूर्ण है वह पुरुष त्याग, शौर्य आदि संपूर्ण गुण एवं मोक्ष को देने वाला गुणों से युक्त होता है। इसलिये पुरुषों को सर्वदा दयाभाव रखना ही श्रेयस्कर है।

१४. अघभि :—दृष्ट और अदृष्टात्मक--फल को देने वाले हिंसा, झूठ, कुशील आदि पापोंसे तथा मद्यपानादि से डरने वाले को अघभी कहते हैं। इस प्रकार ऊपर के १४ गुणों में से समस्त अथवा व्याप्तरूप से उन गुणों का धारण करने वाला जो दयालु श्रावक है वही ऊपर की क्रिया को पालन करने योग्य तथा कुलाचार को पालन करने योग्य उस अहिंसा धर्म का पालन करने में समर्थ होता है। कुलाचार का वर्णन आगे के प्रकरण में विस्तृत रूप से किया जावेगा।

सच्चे धर्म में शंका करना ही आत्मा की अवनति है—

अत्यन्त अगाध और निर्मल हृदय रूपी पानी में जब तक विषय कषय रूपी मगर मच्छ बसे हुए हैं, तब तक उसके गुणों के समूह उसमें नहीं रह सकते। इसलिये सबसे पहले भगवान वीतराग देव के द्वारा बताये हुये मार्ग में शंकादि दोषां को दूर करके जबतक निःशंक होकर नही चलेंगे तब तक सच्चे वीतराग चारित्र की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। इसलिए भव्य मानव प्राणियों को भगवान् वीतराग की वाणी में श्रद्धा रखकर चलना चाहिये क्योंकि यही उनकी आज्ञा का पालन करना है।

सम्यक्त्व का प्रभाव—

इस संसार में जिस मनुष्य को सच्चे धर्म की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ था और वह रात दिन चोरी डकैती एवं सप्त व्यसनों में लीन रह कर घोर पाप संचय किया करता था उस मनुष्य ने भी, रत्नत्रय के धारी मुनिराज का सतसंग करके, किये हुए अपने पूर्व पापों का क्षालन करके उच्च पद प्राप्त किया अर्थात् मोक्ष पद में पहुँच कर अक्षय सुख का स्वामी बन कर वह तीन लोक में पूजनीय हुआ।

ज्ञान—

जिन सात तत्वों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है उनको अच्छी तरह मनन कर अपनी आत्मा का ज्ञान करना ही सच्चा सम्यग्ज्ञान है और उसी के अनुसार आचरण करना सच्चा चारित्र है।

यह चारित्र परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि के प्रभाव से ही प्राप्त हो सकता है—

कदाचित् पशुगति में अन्धे के हाथ पड़े हुए बटेर पक्षी के समान किसी मन सहित पंचेन्द्रिय पशु को किसी सद्गुरु महात्मा अर्थात् सर्व संघ परित्यागी दिगम्बर मुनि की संगत से सम्यक्त्व चारित्र प्राप्त हो जाय तो हो सकता है। परन्तु पशुगति में सम्यक् चारित्र प्राप्त नहीं हो सकता। सम्यक्दर्शन अर्थात् सच्चे धर्म के प्रति श्रद्धा भले ही हो।

यदि सम्यक्चारित्र होगा तो आर्य भूमि के उच्च कुलीन सम्यग्दृष्टि मानव प्राणी में ही हो सकता है और इस सम्यक्-

चारित्र का उदाहरण करने का अधिकार एक मानव को ही है, अन्य को नहीं। यह शक्ति मानव के अन्दर ही है। यदि मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार निरन्तर प्रयत्न करता रहे तो नीच से नीच ऊँच से ऊँच दशा को प्राप्त कर सकता है। चारित्र धारी दिगम्बर मुनि का प्रभाव एक विद्यु त नाम के चोर पर इस प्र कार पड़ा है :—

मथुरा नगरी में जिनदत्त नाम का एक बहुत बड़ा सेठ रहता था। वह बहुत धर्मात्मा, कुलीन, सज्जन, सम्यग्दर्शन से सुशोभित था। चारित्र से उज्ज्वल होने के कारण उसकी कीर्ति चारों तरफ फैल गई थी। उसकी सुशील, गुणवती व शील सम्पन्न जिनमती नाम की स्त्री थी। उनका गुणवान शीलवान जम्बूकुमार नामक एक पुत्र था। पुत्र की आयु जिस समय लगभग १६, १८ वा १६ साल की थी उस समय एक दिन बाहर उद्यान में एक मुनिसंघ आया। मुनिसंघ का समाचार सुनकर (उसके माता पिता इत्यादि और जम्बू कुमार भी उनके साथ गये।) पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से मुनिराज का उपदेश सुनते ही जम्बू कुमार को वैराग्य हुआ।

सज्जनो ! आपको विदित ही होगा कि महात्मा पुरुषों की संगति से क्या २ नहीं होता है ? अर्थात् चारित्रवान् महात्मा पुरुषों का प्रभाव पड़ते ही जीव चाहे नीच से नीच क्यों न हो तुरन्त ही चढ़ सकता है। इसी समय मन में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न होते ही जम्बू स्वामी गुरु चरणों में गिरकर विनय पूर्वक याचना करने लगे कि हे भगवन् ! मुझे संसार रूपी समुद्र से नौका के समान आप ही तारण तरण हैं। इसलिये आप मुझे

संसार सागर से शीघ्र ही निकाल दीजिये। तब मुनिराज ने कहा कि हे भव्य ! तू पहले घर जाकर अपने माता पिता के चित्त को शान्त करके आओ तत्पश्चात् दीक्षा ग्रहण करो। तब जम्बू कुमार तुरन्त ही लौट कर घर जाकर अपनी माता से कहने लगा कि हे माता ! अनादि काल से संसार में भ्रमण करता हुआ मैंने अनन्त काल व्यतीत कर दिया परन्तु संयम भार को प्राप्त कर श्रेष्ठ मोक्ष पद की प्राप्ति नहीं कर सका। इसलिये माता ! अब मैं इस संसार से मुक्त होने के लिये यत्न करूंगा क्योंकि मेरी आत्मा अब जग गई है। आप मुझे किसी प्रकार संसार में फंसाने की चेष्टा न करें। माता ने कहा कि बेटा ! तुम्हारी आयु अभी बहुत छोटी है, संसार में मेरा तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी दूसरा सहारा नहीं है। थोड़े दिन तक सँसार में सुख भोग कर तत्पश्चात् तुमको सयम धार लेना अच्छा होगा। उस समय मैं भी तुम्हारे साथ सयम भार ग्रहण करूगी। फिर माता पिता ने कहा कि कम से कम लोक रूढ़ि के लिये तुम विवाह कर लो। तब जबरदस्ती उन्होंने माता की आज्ञा का उल्लंघन न करके विवाह की अनुमति द दी। माता के मोह के कारण उसने अपनी शादी करवा ली। तब आठों कन्याएँ आकर के जम्बू स्वामी को संसार में फंसाने के लिये रात भर विविध प्रकार के चेष्टायें की, किन्तु जम्बू स्वामी पूर्ण विरक्त होने के कारण मेरु पर्वत के समान अचल रहे। इस दशा को देख कर माता विचार करने लगी कि अब मेरा पुत्र घर में नहीं रह सकता। माता जम्बू स्वामी से कहने लगी कि बेटा ! अपनी माता का हृदय शान्त करके जाना। जम्बू स्वामी ने उत्तर दिया कि अनादि काल से आपके समान अनन्त माताएँ मेरी हो गई हैं तथा

असंख्य माताओं का दूध पीकर मैंने सबको छोड़ दिया है तो किन २ माताओं का हृदय मैं शान्त करूं ? पर फिर भी माता उन्हें बारम्बार समझा रही थी कि इतने में विद्युत नाम का चोर चोरी करने के लिये वहाँ आया और महल में घुसकर रत्नों की बड़ी २ गठरी बाँधकर जब वह जाने लगा तब उसकी नजर तुरन्त ही जम्बू स्वामी के ऊपर पड़ गई। वह विरक्त जम्बू स्वामी के चारों तरफ बैठी हुई स्वर्ग की देवियों के समान परम सुन्दरी स्त्रियों को देखकर मन में विचार करने लगा कि मुझे धिक्कार है। इसके पास करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति तथा देवांगनाओं के समान सुन्दरी स्त्रियां होते हुए भी ये आज सबको लात मार करके वैराग्य धारण करके महान् दुःखदायी संसार चक्र से छुटकारा पाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं और मैं कितना पाप कर रहा हूँ। ओहो ! न करने वाले अनेक पापों को करके चोरी, बेईमानी के द्वारा मैंने क्या २ पाप नहीं किया ? मेरे समान मूर्ख कौन होगा ? ऐसा मन में विचार करके तुरन्त ही वह जम्बू स्वामी के चरणों में गिर कर पूर्वकाल में किये हुए अपने पापों के प्रति ग्लानि करते हुए जम्बू स्वामी के सत्संग से सप्त व्यसनों को त्यागकर एक महात्मा बन गया। जो महान् पापी था उसने सम्यक् चारित्र रूपी पुरुषों के संसर्ग से तुरन्त ही मुनि व्रत को धारण कर लिया। जो पापी दुनिया में नीच से नीच था और जिसको सभी पाप की दृष्टि से देखते थे वह आज मुनि बनकर देवों में भी पूजनीय हो गया।

इसलिये सज्जनो ! भगवान महावीर की यही शिक्षा है कि हे सँसारी मानव प्राणियो ! अगर तुमको सच्ची मानवता प्राप्त करनी है तो सदा सम्यग्दर्शन सहित चारित्रवान् बनने का प्रयत्न

करो। परन्तु संसारी अज्ञानी प्राणी संसार की क्षणिक वासनाओं में अनादि काल से पड़े हुए हैं और अपने मन में आत्म स्वरूप से भिन्न इन्द्रिय जन्य सुख सामग्री को अपना मान कर उसी की प्राप्ति के लिए अनेक पापों को संचय करते हुए आप ही आप ठगे जा रहे हैं। क्या ऐसे लोगों को सच्ची मानवता प्राप्त होना संभव है? कदापि नहीं। जब तक योग्य सज्जनों का संग और सज्जनों का उपदेश न मिले तब तक हमारे अन्दर आत्मा को मलिन करने वाली बाह्य वस्तुयें बनी ही रहेंगी और जब तक उसको साफ करने का मसाला न मिले तब तक हमारी आत्मा परमात्मा नहीं बन सकती। नर से नारायण यानी परमात्मा बनने के हेतु से ही महान् २ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, रामचन्द्र, हनुमान, भीमसेन, इत्यादि महान् २ योद्धा होते हुए भी सच्चे ज्ञान चारित्र से युक्त महात्माओं का संसर्ग करके अपनी आत्मा पर लगी हुई पाप रूपी वासना को धोने के लिये चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद इत्यादि सांसारिक तथा इंद्रिय सुखों को त्याग कर जब सतगुरु की शरण ली और वे बाद में सम्पूर्ण पदार्थों से भिन्न आत्म स्वरूप में लीन होकर कर्म-मैल को धोया उसी के बाद सदा के लिये सुखी हो गये।

इसलिये हे भव्य प्राणियो! यदि तुम सच्चे मोक्ष की प्राप्ति करना चाहते हैं या रामपद, कृष्णपद, राष्ट्रपतिपद या पं० नेहरूजी का पद प्राप्त करके सुखी होना चाहते हैं तो स्वयं ही अपने अन्दर मौजूद नीचपने को दूर करने के लिये उच्च सज्जन मनुष्य की संगति करना बहुत आवश्यक है। जब तक अपने भीतर रागद्वेष क्रोधादि कषायों को हटाने की कोशिश न करें तब तक हम वीत-

राग सच्चिदानन्द नारायण रूप को धारण नहीं कर सकते। इसलिये सबसे पहले श्री वीतराग भगवान महावीर के बतलाये हुये मार्ग (शिक्षण) के अनुसार अपने कुलाचार को निशंकित मार्ग पर जब तक श्रद्धा न हो या उनके तत्त्व पर विश्वास न हो तब तक प्राणी संसार में कभी भी उच्चपद को प्राप्त नहीं कर सकता।

मानवता का उद्देश्य—

आर्य भूमि के मानव प्राणी भगवान् महावीर ने मानवता का मुख्य उद्देश्य क्या है ? सो बताते हैं।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भावान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीर :
तूर्णं यतेत पतेदनुमृत्यु याव—
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

अर्थात् यह मनुष्य शरीर यद्यपि अनित्य है, मृत्यु सदा इसके पीछे लगी रहती है, तथापि यह इतने महत्व का है कि परम पुरुषार्थ—मोक्ष की प्राप्ति इसी शरीर से हो सकती है। इसलिये अनेक जन्मों के बाद इस अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह शीघ्र से शीघ्र मृत्यु के पहले ही मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। इस जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, पर भव बंधन से मुक्त होने का एक यही स्थान है। इसलिये उनके संग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिये। इस मानवता को प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ सन्तान की उत्पत्ति की आवश्यकता है।

शिशु की उन्नति ही राष्ट्र की उन्नति है—

चाहे कोई भी राष्ट्र क्यों न हो पर बच्चों को जन्म देने के पहले ही उनको जन्म देने वाली माता के गर्भ में जब बालक आवे तभी से ही उन पर सच्ची मानवता का संस्कार डालते रहना चाहिये। जब तक उनकी उन्नति के लिये श्रेष्ठ सँस्कार उस गर्भवती माता पर ठीक नहीं होगा तब तक वह माता नहीं कहलाती है। इस लिए माता पर भी ठीक सँस्कार होनी चाहिये। सँस्कार के द्वारा श्रेष्ठ मानव पद को प्राप्त करके उसी के द्वारा भगवान भी बन सकता है। जब बालक माता के गर्भ में आता है तब उसकी शक्ति को मजबूत या कमजोर बनाने की जिम्मेदारी माता के ऊपर रहती है। अगर माता का संस्कार ठीक न हो तो उससे माता उन बच्चों की मानसिक शारीरिक शक्तियों को अवनति कर देती है। अर्थात माता के मन बचन, काय की क्रिया का प्रभाव बालक के ऊपर अवश्य पड़ता है। यदि माता सुशील, धर्मात्मा और विदुषी है, तो उसके मन बचन कायों की योग्य क्रिया बालक की शक्तियों पर अपने आप पड़ जाती है। ऐसी विदुषी माताओं के द्वारा ही गुणवान, बलशाली, अहिंसाके पुजारी भगवान महावीर, रामचन्द्र, लक्ष्मण, लव-कुश, वृषभदेव, शुकदेव इत्यादि महान् २ पुरुषों का जन्म हुआ है। माता पिता के शुभ सँस्कार से ही ऐसे महात्माओं का जन्म होता है। इसलिये आर्य भूमि के मानव प्राणियों! सबसे पहले सच्ची माता का निर्माण करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। अगर वह माता पिता के रूप में न होकर राक्षसी के समान आचरण करती है तो वह घर नदी के किनारे रहने वाले खेत के समान है। जैसे कहा भी है कि—

यस्य क्षेत्रं नदी तीरे, भार्या च पर संगता।
ससर्पे च गृहे वासः कथं स्यात्तस्य निवृत्तिः ॥

जिसका खेत नदी के तट पर है, स्त्री पर-पुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली तथा घर में साँप मौजूद रहता है, तो उसे कहां से सुख मिल सकता है ?

स्त्री ही प्रजा को योग्य निर्माण करने के लिये क्षेत्र के समान है। वही माता स्त्री रत्न है, वही माता सज्जन मनुष्यों तथा देव देवियों के लिये पूजनीय होती है। इसलिये ऐसी स्त्री की परमावश्यकता है।

क्या कुल को कलँकित करने वाली स्त्रियाँ देश या राष्ट्र की उन्नति करने वाले बालक को जन्म दे सकती हैं? कभी नहीं। किसी कवि ने आधुनिक काल की नारी का स्वरूप बतलाया है कि—

आः पाकं न करोषि पापिनि कथं पापी त्वदीयः पिता।
रण्डे जल्पसि किं तमेव जननी रण्डा त्वदीया स्वसा।
निर्गच्छत्वरितं गृहाद्बहिरितो नेदं त्वदीयं गृहं।
हा ! हा ! नाथ ममाद्य देहि मरणं जारस्य भाग्योदयः ॥

कोई पति बाहर से देरी में घर आने पर भूख से व्याकुल होकर भोजन करना चाहता है, पर घर में भोजन जब तक बना ही नहीं। अतः क्रोधावेश में आकर अपनी पत्नी से कहता है कि—रे पापिनी ! भोजन क्यों नहीं बनाया ? पत्नी उत्तर देती है कि—तुम्हारा पिता पापी है। पति पुनः क्रोध में आकर कहता

है कि अरे राँड़ ! क्यों अधिक बकवाद करती है ? पत्नी उत्तर देती है कि—मैं क्यों रांड़ हूँ तेरी मां राँड़ होगी। पति पुनः क्रोधित होकर कहता है कि–हमारे घर से शीघ्र निकल जा । तब उत्तर में पत्नी कहती है कि यह तुम्हारा घर नहीं है। यह सुनते ही पति कहता है कि हा नाथ ! हा नाथ !! हमारा आज ही मरण हो जावे तो अच्छा है, क्योंकि घर में कुलटा का भाग्योदय हुआ है। ऐसी कुल कलंकिनी स्त्री के साथ में एक मिनट भी नहीं रहना चाहता।

हमारी माताओं एवं बहिनों में भी अधिकतर उपरोक्त दोष देखे जाते हैं। यह सब दोष कुसंस्कार से उत्पन्न होते हैं। बाल्यावस्था में जिस बालक या बालिका के ऊपर बुरे सस्कार अँकित हो जाते हैं, वे बड़ी कठिनाइ से छूटते हैं । अधिकतर तो छूटते ही नही । अतः माता पिताओं को चाहिये कि बचपन में बच्चों को बड़ी सावधानी से रक्खें जिससे कि उनके कोमल हृदय पर बुरे सस्कार न पड़ सकें । धर्म, अर्थ तथा काम प्राप्त करने के लिये गृहस्थाश्रम बनाया गया है। इन तीनों वस्तुओं को कोई अकेला पुरुष या स्त्री प्राप्त नहीं कर सकती। जिस तरह गाड़ी एक पहिये से नहीं चल सकती उसी प्रकार बिना पति या पत्नी की एकता के धर्म, अर्थ और काम का साधन होना असम्भव है। उपरोक्त तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के पश्चात् मोक्ष पद भी धीरे २ साधन से साध्य किया जा सकता है। जिस दम्पत्ति में पारस्परिक प्रेम भरा हुआ है, उसके लिए पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त होना बड़ा सरल है। क्योंकि जो कार्य दोनों की तत्परता से किया जाता है वह शीघ्र ही सफल

होता है। दोनों की एकता से किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती।

माता होने योग्य कन्या—

साध्वी शीलवती दया वसुमति दाक्षिण्य लज्जावती।
तन्वी पापपराङ्मुखी स्मितमति मुग्धाप्रियालापिनी॥
देवे सद्गुरुबंधुसज्जनरता यस्यास्ति भार्या गृहे।
तस्यार्थागमकाममोक्षफलदाः कुर्वन्ति पुण्यप्रिया॥

हे प्राणियो! भगवान महावीर जैसे सुयोग्य पुत्र को जन्म देने वाली माता के समान स्त्री रत्न का निर्माण करना भी परमावश्यक है, क्योंकि वेदों तथा शास्त्रों में भी ऐसी स्त्री रत्न की ही प्रसंशा की गई है, अन्य की नहीं।

स्त्रियों के अन्दर स्वाभाविक शील, दया, लक्ष्मी के समान घर को सुशोभित करने वाली, लज्जावती, कोमलांगी यानी दुबली पतली, पापसे डरने वाली, प्रसन्न मुखी, मधुर भाषिणी देवी, गुरु शास्त्र, माता, पिता एवं धर्मात्मा सत्पुरुषों की सेवा में रत रहने वाली, परोपकारी, सभी के साथ प्रेम प्रकट करने वाली, अनेक गुणों से सुशोभित स्त्रियों को ही रत्न की उपमा दी गई है। ऐसी स्त्री रत्न के द्वारा ही श्रेष्ठ मानव बनने योग्य पुत्र रत्न को जन्म देने वाली सुयोग्य माता कहलाती है, पर अयोग्य हजारों पुत्रों को जन्म देकर आजकल की मातायें यथार्थ माता नहीं हो सकतीं। कहा भी है कि :—

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्।
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी॥

एक ही सुयोग्य पुत्र पैदा होने से जंगल में सिंहनी निर्भय होकर सोती है, परन्तु गदही दस कुपुत्रों को जन्म देने पर भी उनके साथ सदा बोझा ही ढोती रहती है।

इसी प्रकार आजकल की हमारी माताओं और बहिनों के अन्दर कुसंस्कार के प्रभाव से योग्य पुत्र और पुत्रीयों को जन्म देने वाली माताओं का इस भारत में बहुत ही अभाव हो गया है। हमारी मातायें पुत्र और पुत्रीयों को जन्म देती हैं और अपने को खुशी मानती हैं पर प्ररम्भ में जितना ही हर्ष मानती हैं उतना ही आगे चल कर पुत्र या पुत्रियों के प्रति उनको विशेष चिंता का भार उठाना पड़ता है। इसका मूल कारण एक कुसंस्कार ही है।

प्राचीन काल की हमारी मातायें सुसस्कार, शील, लज्जा, सज्जनों की संगति में रत रहती थी तथा गुणी गुरुओं के सँस्कार माताओं के हृदय भूमि में आनन्द उत्पन्न हुआ करता था। इसलिये ऐसी मातायें हृदय भूमि, शुद्ध सुसंस्कृत होने के कारण सिंहिनी के समान एक ही या दो पुत्र पुत्रियों को जन्म देकर हमेशा सँसार में सुख से अपने धर्म ध्यान में लीन रहकर स्वपर के कल्याण में लगी रहती थी और इह पर दोनों लोक की सुख सामग्री को प्राप्त कर लेती थी।

यदि बच्चे की माता अज्ञानी, कुशील, अधर्मी, मूर्ख होगी तो उसकी क्रियाओं का बहुत बुरा प्रभाव बालक पर अवश्य पड़ेगा। यद्यपि मनुष्य के पूर्वोपार्जित कर्म का उदय जीवके साथ इस जन्म में फल देता है। अर्थात पूर्व जन्म में जैसा शुभाशुभ कर्म सचय किया है वैसा ही फल भोगना पड़ता है, तथापि वाह्य निमित्त कारणभी सहायक है। वाह्य सस्कार का भी बड़ा

प्रभाव पड़ता है। माता पिता का जैसा आचरण होगा वैसा ही अच्छे या बुरे संस्कार बच्चों पर पड़ेंगे।

माता पिता के द्वारा बच्चों पर कुप्रभाव—

हे आर्य मानव प्राणियो! बच्चों पर माता पिता का प्रभाव कैसे पड़ता है, इस बात को हम आप लोगों को उदाहरण पूर्वक समझायेंगे।

किसी एक छोटे से गांव में सुसंस्कार से हीन स्त्री पुरुष रहते थे। बहुत दिनों के पश्चात उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र को दोनों दंपती बहुत प्यार करते थे। परन्तु बच्चे पर ठीक सस्कार न होने से यानी मां बाप के बुरे सस्कार से वह बच्चा एक दिन किसी दरजी की दुकान से दो चार हाथ कपड़ा चुरा लाया और घर में आकर अपनी माता से कहा कि मां, मैं दो गज कपड़ा अमुक आदमी की दुकान से चुराकर लाया हूँ। माता ने उस बच्चे की बात सुनकर बड़े हर्ष से कहा कि बेटा! तूने बहुत अच्छा किया क्योंकि तुम्हारे बाबू जी की धोती फटी है उसमें जोड़ दूगीं। यह कह कर उस कपड़े को लेकर रख लिया। प्रोत्साहन प्राप्त होने से वह बच्चा दो चार दिन के बाद किसी सेठ की दुकान से मौका पाकर चोरी से एक थान उठा कर ला रहा था कि रास्ते में पुलिस ने पकड़ा और पूछा, कहाँ से लाया? बच्चे ने उत्तर कि मैंने चोरी नहीं की है। पुलिस ने पूछा कि फिर किसने की? उसने कहा कि मेरे मां बाप ने की है। पुलिस ने कहा अरे बदमाश तू चुराकर लाया है फिर अपने मां बाप का नाम क्यों लेता है? उसने कहा

कि सचमुच मैंने नहीं की, मेरे माता पिता ने चोरी की है। तब पुलिस ने उस बच्चे के माता पिता को बुलाकर पूछा कि तुम्हारा बच्चा एक थान चुराकर लाया है और मेरे पूछने पर उसने कहा कि मैंने चोरी नहीं की, मेरे माता पिता ने की है। तब उसके माता पिता ने बच्चे से पूछा कि बेटा ! हम कब चोरी करने गये थे ? तू ही तो लाया है और हमें बदनाम करता है ? बच्चे ने उत्तर दिया कि माता ! मैं जब अज्ञान से पहले दर्जी की दुकान से दो गज कपड़ा चुराकर लाया था तब तुमने मुझे चोरी करने के बारे में क्यों नहीं डांटा ? अगर उसी समय डांटकर इस बुरी आदत को छुड़ाती तो मैं चोरी करके अपनी बदनामी व आप लोगों की बदनामी क्यों करता ? इसलिये चोरी करना तुमने सिखाया है मेरा कोई दोष नहीं है। इसीलिये अगर माता पिता का संस्कार ठीक होगा तो बच्चे पर भी संस्कार ठीक पड़ेगा। अतः अच्छे या बुरे बालक पर संस्कार डालना माता पिता पर ही निर्भर है। इसलिये जन्म से लेकर मरण तक ठीक संस्कार जिस पर होगा, वे ही बालक योग्य मानवता को प्राप्त कर अन्त में नारायण, विष्णु, शिव, जिनेन्द्र इत्यादि पद सरलता से प्राप्त कर सकता है।

संस्कार इस संसार में बहुत अमूल्य वस्तु है। बुरी से बुरी चीजों पर जब योग संस्कार पड़ता है तब वह भी पूजनीय बन जाती हैं। अगर कोई बढ़िया से बढ़िया शस्त्र भी हाथ में क्यों न हो पर यदि उस पर तीक्ष्ण काटने योग्य धार न चढ़ाई जाय तो उसकी कीमत नहीं होती। इसी प्रकार मनुष्य अच्छे से अच्छे कितने भी उच्च घराने का क्यों न हो, उसके अन्दर जब तक

योग्य संस्कार न होंगे, तब तक वह दुनिया में बेकार है और गौरवशाली नहीं बन सकता।

तांबे या लोहे के ऊपर सोने का पानी चढ़ाया जाय तो वह भी दुनिया में पूजनीय बन जाता है। अगर साठ साल के बूढ़े मनुष्य की ठीक दाढ़ी बनवाकर बढ़िया से बढ़िया कोट, पतलून मौजा, बूट, आँखों पर चश्मा, हाथ में घड़ी, गले में मफलर तथा मुँह पर पाउडर का लेप इत्यादि करके हाथ में बेंत की छड़ी देकर बाजार के चौड़े रास्ते में भेज दिया जाय तो उसके बाह्य टाट बाट को देखकर आने जाने वाले लोग ताकते जाते हैं। उसकी इज्जत करते हैं। दुनिया में सुसंस्कार का ही महत्व है।

जब सोने को सोलह बार तपाया जाता है तभी वह मूल्यवान होता है तथा दुनिया में उसकी कीमत श्रेष्ठ होती है और बहुत महंगा बिकता है इसी प्रकार माता के गर्भ में बच्चे के रहते ही उस पर सुसंस्कार डालना प्रारम्भ करने चाहिये।

संस्कार का विवेचन—

यदि सच्चे श्रावक या गृहस्थपने को ठीक चलाने वाली मनुष्यता को प्राप्त करना है तो हमारे भारतीय माताओं और बहनों को चाहिये कि योग्य माताओं को तैयार करें क्योंकि यह बहुत जरूरी है। जैसे किसान पानी बरसने के पहले ही अपने खेत का सुसंस्कार बार बार करके खाद इत्यादि से खूब शक्तिशाली बना देता है और उसमें घास वगैरह आने नहीं देता है। जब समयानुसार पानी बरसता है तब शीघ्र ही सभी कार्य छोड़कर बीज बोता है। ऐसा करने से फसल भी ठीक फलती है

इसी तरह माता पिताओं को चाहिये कि अपनी कन्याओं को धर्म, नीति, गृह प्रबन्ध, कारीगरी इत्यादि अनेक कलाओं में कुशल बनाने की शिक्षा दे जैसा अन्न माता खाती है उसी का अंश गर्भस्थ बालक को प्राप्त होता है। यदि माता शुद्ध आहार पान करे तो बालक का शरीर भी उसी से पोषित होगा। जिससे उसके शरीर में निरोगता रहेगी और खून शुद्ध बनेगा।

माता के मन में यदि अच्छे विचार होंगे तो उसके संसर्ग से बालकों की मानसिक वृत्ति पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा। प्रायः देखा जाता है कि यदि कोई महान तेजस्वी पुण्यात्मा जीव माता के गर्भ में आता है तो उसके ज्ञान और धर्म के बल के निमित्त से माता के मन के विचारों पर भी अन्तर आ जाता है। उसी तरह अनेक प्रकार के दोहले उत्पन्न होते हैं। यदि तेजस्वी पुत्र हो तो माता को दर्पण अर्थात् शीशा में मुख देखने की इच्छा होती है। यदि माता के गर्भ में धर्मात्मा महान् पुण्यशाली या भाग्यशाली बालक हो तो तीर्थ यात्रा, भगवान के दर्शन पूजा, पाठ, गुरु सेवा तथा सज्जनों की संगति करने के दोहले उत्पन्न होते है। यदि माता का गर्भस्थ बालक दरिद्र, या पुण्यहीन हो तो माता को चने या मिट्टी के टुकड़े खाने की इच्छा होता है। इसी तरह माता को भी शुभाशुभ विचार गर्भस्थ बालक के अनुसार होता है। इसी प्रकार द्रव्य पर भाव का और भाव पर द्रव्य का प्रभाव बराबर पड़ता रहता है।

इसलिये हे सज्जन मनुष्यो! याद रखिये माता जैसी योग्य या अयोग्य होगी वैसे ही विचार बालक के मन में उत्पन्न होंगे। इसलिये माताओं औ बहनों को अपनी सन्तानों के ऊपर बचपन

से ही योग्य धार्मिक नैतिक, सुशील और सदाचार का संस्कार डालते रहना चाहिये जिससे कि योग्य प्रजा का निर्माण होकर परम्परा धर्म नीति न्याय इत्यादियों के द्वारा राष्ट्र और धर्म की रक्षा हो सके। सारांश यह है कि बालकों के ऊपर बुरे या भले भावों को डालने की जिम्मेदारी माता की ही है।

इसके आगे भगवान महावीर ने भारतवर्षीय आर्य मनुष्यों के लिये गर्भाधन संस्कार का निरूपण किया है।

(१) प्रतिक्रिया :—

भगवान ने सबसे पहले धर्मात्मा पुरुषों के प्रति यह शिक्षा दी है कि सज्जन मनुष्य स्त्रियों में अधिक आसक्त होकर उसके साथ अति गृद्धतापूर्वक विषय भोग न करें, किन्तु योग्य कुलवान गुणवान् या सदाचारी बनकर धर्म, अर्थ और कामपुरुपार्थ का साधन कर अन्त में मोक्षपुरुषार्थ को प्राप्त कर सके, ऐसे पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से निरिच्छापूर्वक स्त्री संसर्ग करें।

स्त्रियाँ महीने के अन्त में जो मासिक धर्म में बैठ जाती हैं उस समय उन्हें केवल अपने मन में भगवान का नामोच्चारण करते हुये एकान्त कमरे में बैठे रहना चाहिये और तीन दिन तक किसी अन्य पुरुष का मुख नहीं देखना चाहिये।

पांचवें दिन अथवा किसी कारण बश हो तो छठवें दिन स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर अपने पति के साथ मन्दिर जाना चाहिये। वहां जाकर भगवान का दर्शन कर पूजादि क्रिया को करे, बाद में उन अरहन्त जिनेन्द्र भगवान के ऊपर यथाशक्ति तीन छत्र चढ़ावे। इन छत्रों को चढ़ाने का अर्थ यह है कि भग-

वान् तीनों लोक के जीवों पर छत्र समान आश्रय देने वाले हैं और संसार रूपी तापत्रय को दूर करने वाले हैं। बाद में भगवान के सामने हवन करना चाहिये।

हवन कुण्ड बनाने के नियम और उसके प्रत्येक नाम—

गृहपत्य, त्रिकोटा और दक्षिणावर्त ऐसे तीन कुण्ड बनावे। पहला कुण्ड गृहपत्य का चौकोर बनावे, दूसरा अहवनीह त्रिकोण बनावे और तीसरे कुन्ड का नाम दक्षिणावर्त है जिसको छत्राकार बनावे। इन तीनों कुण्डों में अग्नि जलावे। पहले कुण्ड की अग्नि को तीर्थंकर भगवान की निर्माण अग्नि कहते हैं। इसका मतलब यह है कि भगवान महावीर तीर्थंकर ने अपने आत्म-ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा अपने कर्म मल को नष्ट कर दिया है, दूसरे कुण्ड की अग्नि को गणधर की निर्वाण अग्नि कहते हैं, इन्होंने भी अपय ध्यानाग्नि के द्वारा आठों कर्मों को जलाकर निर्वाण तथा सच्चे मोक्ष सुख को प्राप्त कर लिया है। तीसरे कुण्ड की अग्नि को सामान्य केवली निर्वाण अग्नि कहते हैं। तीर्थंकर के अलवा जो कर्मनिर्जरा कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं उसे निर्वाण अग्नि कहते हैं। इन तीनों कुण्डों का दूसरा नाम प्रणीताग्नि भी है। यदि इतने कुण्ड बनाने की शक्ति व यज्ञ करने की शक्ति न हो तो केवल चौकोर कुण्ड बनाकर एक से ही काम में ले। इस प्रकार कुण्ड बनवाकर विधि पूर्वक हवनादिक पूजा को करना चाहिये।

इस प्रकार दोनों दम्पत्ति इस पूजादिक क्रिया को पूर्ण करें प्रेम पर्वक घर पर आ जाय। अतिथि या सूत्रपात्र को यथाशक्ति

आहार दान देना या भोजन कराना अथवा बिरादरी को बुला कर आपस में प्रेम व्यवहार करने का नाम प्रीति क्रिया है।

अब प्रीतिमन्त्र कहते हैं—त्रैलोक्यानाथो भव (तीनों लोकों के अधिपति होओ) त्रैकाल्यज्ञानी भव, (तीनों काल का जानने वाला हो) और त्रिरत्नस्वामी भव (रत्नत्रय का स्वामी हो) ये तीन प्रीतिक्रया के मन्त्र हैं।

संग्रह—त्रैलोक्यानाथो भव, त्रैकाल्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव।

(२) गर्भाधान क्रियाः--

गर्भाधान के समय काम आने वाले विशेष मन्त्रों का संग्रह इस प्रकार है :—

सज्जातिभागी भव, सद्गृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव।

(३) सुप्रीति क्रियाः—

सुप्रीति क्रिया में अवतारकल्याणभागी भव (गर्भकल्याणक को प्राप्त करने वाला हो), मन्दरेन्द्राभिषेक कल्याणभागी भव (सुमेरु पर्वत पर इन्द्र के द्वारा जन्माभिषेक के कल्याण को प्राप्त हो), निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव (निष्क्रमण कल्याण को प्राप्त करने वाला हो), आर्हन्त्यकल्याणभागी भव (अरहन्त अवस्था-केवल ज्ञान कल्याण को प्राप्त करने वाला हो) और परमनिर्वाण-कल्याणभागी भव (उत्कृष्ट निर्वाण कल्याण को प्राप्त करने वाला हो) ये मन्त्र विद्वानों को अनुक्रम से बोलना चाहिये।

(४) धृति क्रिया :—

यह क्रिया गर्भ से सातवें महीने में की जाती है। जिसमें भी पहले की तरह पूजा हवनादि करना चाहिये इसका मंत्र—

सज्जाति दातृ भागी भव (सज्जाति यानी उत्तम जाति को देने वाला हो), सद्गृहिदातृभागी भव (सद् गृहस्थ पद को देने वाला हो), मुनीन्द्रदातृभागी भव (महामुनि पद को देने वाला हो), सुरेन्द्रदातृभागी भव (सुरेन्द्र पद को देने वाला हो), परम राज्य दातृ भागी भव (उत्तम राज्य चक्रवर्ती के पद को देने वाला हो), आर्हन्त्यदातृभागी भव (अरहन्त पद को देने वाला हो) तथा परम निर्वाण दातृभागी भव (उत्कृष्ट निर्वाण पद को देने वाला हो)। इस प्रकार धृति क्रिया में इन मन्त्रों का पाठ करना चाहिये।

(५) मोद क्रिया :—

सज्जाति कल्याणभागी भव (सज्जाति के कल्याण को धारण करने वाला हो), सद्गृहिकल्याणभागी भव (उत्तम गृहस्थ के कल्याण का धारण करने वाला हो), वैवाहिकल्याणभागी भव (विवाह के कल्याण को प्राप्त करने वाला हो), मुनीन्द्रकल्याण-भागी भव (महा मुनि पद के कल्याण को प्राप्त करने वाला हो), सुरेन्द्रकल्याणभागी भव (इन्द्र पद के कल्याण का उपभोग करने वाला हो), मन्दराभिषेक कल्याणभागी भव (सुमेरु पर्वत पर अभिषेक के कल्याण को प्राप्त करने वाला हो), युवराज कल्याण-भागी भव (युवराज पद को कल्याण का उपभोग करने वाला हो), महाराज कल्याणभागी भव (महाराज कल्याण पद का

उपभोग करने वाला हो), परमराज्यकल्याणभागी भव (प
राज्य के कल्याण को प्राप्त करने वाला हो), आर्हन्त्य कल्या
भागी भव (अरहन्त पद के कल्याण का उपभोग करने वाला हो
यह क्रिया है।

गर्भिणी स्त्री के कर्तव्य :—

पाँचवें महीने में गर्भिणी स्त्री बहुत ऊँची भूमि पर न
और न उतरे, नदी में जल क्रीड़ा करने या तैरने न जावें,
गाड़ी पर या और गाड़ियों पर न बैठे अथवा तेज दवाई
खावे, खारे पदार्थ न खावे और ब्रह्मचर्य रक्खे।

पति का कर्तव्य :—

गर्भिणी स्त्री के पति को उचित है कि देशान्तर इत्यादि
जावे, जिसमें छुट्टी न मिले ऐसा काम न करे क्यों
गर्भिणी स्त्री की हमेशा रक्षा करना उसका परम कर्तव्य है।

अब जन्म संस्कार के मन्त्र कहते हैं—

ओं कं ठं छः यः असि आउसागभर्भार्भकं प्रमोदेनपरि
स्वाहा। फिर पत्नी के हाथ में णमोकार मंत्र पढ़ रक्षा का
बाँधे, इस दिन घर में मंगलाचार करें दान इत्यादि दें।

(६) पियोद्भव क्रिया :—

बालक के जन्म होने के बाद यह क्रिया की जाती है।
दिन से घर में पहले की तरह पूजा आदि करनी चाहिये।
अथवा किसी विद्वान् पंडित के द्वारा ही यह क्रिया करनी चाहि
पिता और अन्य कुटुम्बी जन भी सामने रहें, इस प्रकार पू

इत्यादि होने के बाद इस मन्त्र को पढ़ कर आहुति देवें। दिव्य-नेमि विजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा, आर्हंत्य नेमि-विजयाय स्वाहा। फिर भगवान के गन्धोदक से बालक के अंग पर छींटा देवें यदि घर में प्रतिमाजीव यंत्र न हो तो श्री मन्दिर जी में गन्धोदक मंगलादि करावें। फिर पिता बालक के सिर को स्पर्श करे और आशीर्वाद देवे और इस प्रकार कहे कि :—

कुल जाति वयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयः। भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वै समधिष्ठिता सम्यग्दृष्टि सतवाप्वेयगतस्त्वमपि पुत्रकः। सम्प्रीतिं माप्नुहित्रीणिप्राप्य चक्राण्यनुक्रमात्।

यदि संस्कृत में न कहते बने तो भाषा में इस प्रकार कहे कि तेरी माता कुलशुद्धि, जातिकुल शुद्धि. वयरूपशील इत्यादि गुणों से सुशोभित, उत्तम सन्तान को उत्पन्न करने वाली, भाग्य-शालिनी, सौभाग्यवती, विधिमार्ग प्रवृत्ति करने वाली, महासौम्य मूर्ति को धारण करने वाली, सम्यग्दर्शन को धारण कर अणुव्रत को पालन करने वाली, महायोग्य हो और हे पुत्र ! तू दिव्य चक्र को प्राप्त कर इन्द्र पद, विजय चक्र को प्राप्त कर, चक्रवर्ती पद और परम चक्र को प्राप्त करके तीर्थेश्वर पद को क्रम से धारण करने वाला हो। पुत्र के अंग को स्पर्श करके पुत्र के रूप में अपना साक्षात् रूप देख कर स्नेह पूर्वक इस प्रकार कहे। अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादसपिजायसे। आत्म-वैपुत्रनामाऽसि सजीव शरदः शतम्॥ अर्थात् भाषा में इस प्रकार कहे कि हे पुत्र तू मेरे अँग से उत्पन्न हुआ है, अतः मेरे आत्मा

के समान ही है। हे पुत्र ! तू दीर्घ आयु हो। फिर दूध घी से बना हुआ अमृत लेकर उससे बालक की नाभि को सींचे और नाभि का नाल काटे। उस समय आशीर्वाद देते समय यह श्लोक पढ़े—घातिजयोभव, श्रीदेव्यः तेजातक्रियाकुर्वन्तु अर्थात् हे पुत्र, श्री ह्री आदि देवियाँ तेरी जन्मक्रिया का उत्सव करें, यह कहते हुए धीरे २ यत्नपूर्वक सुगन्धित चूर्ण से उस बालक के शरीर पर उबटन करें फिर मन्दराभिषेकार्हो भव, अर्थात् तू मेरु पर्वत पर अभिषेक करने योग्य हो, यह मन्त्र पढ़कर सुगन्धित जल से उसे स्नान करावे और फिर चिरंजीव्याः, अर्थात् तू चिरकाल तक जीवित रह। इस प्रकार आशीर्वाद देकर उस पर अक्षत डाले। इसके अनन्तर द्विज नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नम् अर्थात् तेरे समस्त कर्म मल नष्ट हो जावें यह मन्त्र पढ़ कर उसके मुख और नाक में औषधि मिलाकर तैयार किया हुआ घी मात्रा के अनुसार छोड़े। तत्पश्चात् विश्वेश्वरीस्तन्याभागी भूयाः अर्थात् तू तीर्थंकर की माता के स्तन का पान करने वाला हो ऐसा कहता हुआ माता के स्तन को अभिमन्त्रिकर उसे बालक के मुँह में लगा दे। तदनन्तर जिस प्रकार पहले वर्णन कर चुके हैं उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक दान देते हुए उत्सव कर विधिपूर्वक जात कर्म अथवा जन्म काल की क्रिया समाप्त करनी चाहिये। उस के जरायु पटल को नाभि की नाल के साथ २ किसी पवित्र जमीन को खोद कर मन्त्र पढ़ते हुए गाड़ देना चाहिये। उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पद, सर्वमाता पद और वसुन्धरा पद को दो दो बार कहकर अन्त में स्वाहा शब्द कहना चाहिये। अर्थात् सम्यग्दृष्टि सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः

वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा (सम्यग्दृष्टि सर्व की माता पृथ्वी में यह समर्पण करता हूँ) इस मन्त्र से अभि मन्त्रितकर उस भूमि में जल और अक्षत डाल कर पांच प्रकार के रत्नों के नीचे गर्भ का वह मल रख देना चाहिये और फिर कभी त्वत्पुत्रौ इव मत पुत्राः चिरंजीवनी भूयासुः (हे पृथ्वी तेरे पुत्र कुल पर्वतों के समान मेरे पुत्र भी चिरंजीवी हों) यह कह कर धान्य उत्पन होने के योग्य खेत में वह मल डाल देना चाहिये । तदनन्तर क्षीर वृक्ष की डालियों से पृथ्वी को सुशोभित कर उस पर उस पुत्र की माता को बिठाकर अभिमंत्रित किये हुए सुहाते गर्म जलसे स्नान कराना चाहिये। माता को स्नान कराने का मन्त्र यह है—प्रथम ही (सम्बोधनान्त सम्यग्दृष्टि पद) को दो बार कहना चाहिये फिर आसन्नभव्या, विश्वेश्वरी, अर्जित पुण्या और जिन माता इन पदों को भी सम्बोधनान्त कर दो दो बार बोलना चाहिये और अन्त में स्वाहा शब्द पढ़ना चाहिये अर्थात सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये २ विश्वेश्वरि विश्वेश्वरि ऊर्तिपुण्ये २ जिनमातः जिनमातः स्वाहा (हे सम्यग्दृष्टि हे निकटभव्य हे सब की स्वामिनी, हे अत्यन्त पुण्य संचय करने वाली जिन माता, तू कल्याण करने वाली हो) यह मन्त्र पुत्रकी माता को स्नान कराते समय बोलना चाहिये । जिस प्रकार जिनेन्द्र देव की माता पुत्र के कल्याणों को देखती है उसी प्रकार यह मेरी पत्नी भी देखे, ऐसी श्रद्धा से वह स्नान की विधि करनी चाहिये । तीसरे दिन रात के समय अनन्तज्ञानवर्ती भव (तू अनन्तज्ञान को देखने वाला हो) यह मन्त्र पढ़कर पुत्र को गोदी में उठाकर तारात्रों से सुशोभित आकाश दिखाना चाहिये । उसी दिन पुण्याहवचन के साथ साथ

शक्ति के अनुसार दान करना चाहिये और जितना बन सके उतना सब जीवों के अभय की घोषणा करनी चाहिये। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने यह जन्मोत्सव की विधि कही है। उत्तम द्विज को आज भी इसका यथायोग्य रीति से अनुष्ठान करना चाहिये।

(७) नाम कर्म संस्कार—जन्म के दिन से बारहवें दिन बालक का नाम रक्खा जाता है। नाम रखते समय पिता को बहुत शुभ नाम रखना चाहिये क्योंकि नाम के अनुसार ही गुण भी होता है। फिर भी नीचे लिखे मंत्र को पढ़ कर आहुति देवें। इत्यष्ट सहस्रनाम भागी भव, विज्यानामष्टसहस्रनामभागी भव, परमणामाष्टसहस्रनाम भागी भव, तव गृहस्थ आचार्य भगवान के १००८ नामों से कोई भी एक नाम उसमें से ढूँढ कर रक्खे। और सभी मिलकर बाद में आहार इत्यादि करें।

(८) बहिरंग क्रिया—दूसरे तीसरे अथवा चौथे महीने में ठीक मुहूर्त पर ठीक दिन घर से बालक को बाहर ले जावे, क्योंकि आज कल कई माताएँ उस बालक को १५ दिन भी पूर्ण नहीं करने देतीं वे अपने बालक को ले करके घूमने लगती हैं। ऐसा कभी भी नहीं करना चाहिये क्योंकि प्रसूती घर के बाहर आ जाने से माता का ध्यान दूसरी बातों पर चला जाता है। प्रसूती घर में माता का यह फर्ज है कि पुत्र का पालन भली प्रकार से करे और आप भी आराम करते हुए शरीर की निर्मलता को दूर करें। प्रसूती गृह में बाहर की हवा आने जाने के लिये रोशनदान जरूर चाहिये। जिस समय बालक को बाहर लावे उसी प्रकार पहले की हुई क्रिया को करनी चाहिये और उसी दिन गरीबों को यथाशक्ति दान देकर उनकी इच्छा की पूर्ति करें। बाद

में सभी कुटुम्बी इत्यादि मिल करके उस माता और बालक को बाजे गाजे के साथ श्री अरहन्त भगवान के दर्शन के लिये जावे। वहाँ जाकर पूजा अर्चा इत्यादि क्रिया को कर उस बालक को दर्शन कराना चाहिये। उस समय यह मंत्र पढ़े। ओं नमोः र्हते भगवते जिन भास्कराः तवमुखं बालकं दर्शयामि, दीर्घायुष्कं कुरू २ स्वाहा। फिर लौटकर दान इत्यादि से बन्धु जनों का सम्मान करे और आहार पानी करें।

(९) नाम संस्कार का निशेद्योग क्रिया—पाँचवें महीने की क्रिया जब बालक बैठने योग्य हो जावे तब यह क्रिया करनी चाहिये। ऐसी क्रिया करने का यह मतलब है कि ये बालक विद्या के सिंहासन पर बैठने के योग्य बने। इसकी विधि यह है कि पहले की तरह पूजा इत्यादि करना चाहिये। इसका मन्त्र यह है कि "दिव्यसिंहासन भागी भव, विज्यासिंहासन भागी भव तथा परमसिंहासन भागी भव, इस प्रकार मंत्र पढ़ करके बालक के मस्तक पर अक्षत का क्षेपण करें। उस बालक को रूई की गद्दीपर बैठा देना चाहिये। शुभस्नेह से स्त्रीयां आकर के बालक के सामने मंगल गान करें।

(१०) अन्न प्राशन क्रिया—बालक जब आठवें महीने का हो जाय तब उसको अन्न का आहार देना प्रारम्भ करना चाहिये। जब तक यह क्रिया न हो जाये तब तक बालक को अन्न नहीं देना चाहिये। इस दिन भी पहले की भांति पूजा आदि करे इसका मंत्र यह है कि—दिव्यअमृत भानी भव, विज्यामृतभागी भव, अक्षीरामृतभागी भव इस प्रकार मंत्र पढ़ करके बालक के

ऊपर अक्षत क्षेपण करना चाहिये और अच्छे कपड़े इत्यादि बालक को पहना देना चाहिये।

(११) वर्ष वर्द्धन क्रिया—जब बालक जन्म दिन से एक वर्ष का हो जाय तब यह क्रिया करना चाहिये। उसी दिन अपने इष्ट मित्र बन्धु जनों को बुलाकर पहले की तरह पूजा इत्यादि करना चाहिये और नीचे लिखा मंत्र बालक पर पढ़ना चाहिये।

उपनयनजन्मवर्षवर्द्धन भागी भव, वैवाहिसिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव, मुनिजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, मन्दाराभिषेकवर्द्धनभागी भव, युवराजवर्षवर्द्धनभागी भव महाराज वर्षवर्द्धनभागी भव, परमराज्य वर्षवर्द्धनभागी भव आर्हन्त्यराजवर्षवर्द्धन भागी भव, इस प्रकार मंत्र पढ़ कर आये हुए सभी लोग बालक को आर्शीवाद देवें और अगन्तुक सभी अतिथियों का सम्मान करें।

(१२) मुण्डन क्रिया—जब बालक के केश बढ़ जावें तो उसकी मुन्डन क्रिया करनी चाहिये। इसके लिये शुभ मुहूर्त इत्यादि नियत करें। किन्तु तेरहवें संस्कार के पाँचवें वर्ष पूर्ण हो जाने पर यह होता है। इसलिये उसके पहले जब बालक दो तीन व चार वर्ष का हो जावे तब क्रिया करनी चाहिये। शुभ दिन देखकर मुन्डन करना चाहिये तथा पहले के समान पूजा इत्यादि करनी जाहिये। इसका मंत्र यह है कि—

उपनयनमुन्डभागी भव, निग्रन्थमुन्डनभागी भव, निष्क्रान्ति मुन्डनभागी भव, परमनिस्तारक केशभागी भव, सुरेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्य केशभागी भव, आर्हन्त्यकेशभागी भव, इसके बा

भगवान के गन्धोदक से बालक के केश को आर्द्र करके अक्षतादि बालक के सिर पर डाले फिर उस बालक को दूसरे स्थान पर ले जावें और चोटी सहित उसका मुन्डन करावे। बाद में विसर्जन करके बालक को सुगन्धित जल इत्यादि से स्नान करावे। तत्पश्चात् यथायोग्य अच्छे वस्त्र आदि पहनावें, सुन्दर २ वस्त्रों से बालक को सुशोभित करें। फिर सभी कुटुम्बी जन मिल कर उस बालक को मुनि के पास ले जावें। अगर कोई मुनिराज न हों तो मन्दिरजी में ले जावें भगवान को भेंट चढ़ा करके दर्शन करें तब बालक के मस्तक में चोटीके स्थान में चन्दन लगावे। बाद में उसी दिन से चोटी रखना प्रारम्भ करे। तब मन्दिर में जाकर पूजा आदि करके घर में आकर सभी कुटुम्बी जनों का सम्मान करें। इस क्रिया में आभूषण वगैरह पहनने को लिखा है। आभूषण भी ऐसा होना चाहिये कि उस बालक को किसी प्रकार का कष्ट न हो। महा पुराण (आदिपुराण) में इसकी विधि हैं। आज कल कुन्डल आदि जो पहनाये जाते है सो भी महा पुराण के आधार पर है। क्योंकि जैन शास्त्र में अरहन्त भगवान का चिन्ह बतलाया गया है। भगवान अरहन्त को देवों ने कुन्डल हार, रत्नों के हार, भुजबन्ध इत्यादि आभूषण भगवान के जन्म के समय इन्द्र के द्वारा पहनाये जाते है। इसीलिये बालक को तीर्थंकर की भांति पहनाया जाता है।

करणवेद क्रिया—इसका मंत्र यह है—ओं ह्रीं श्रीं अर्हम् बालकस्य कर्णनासावेदनम् करोमि असिआउसा स्वाहा। इस मंत्र के द्वारा कर्ण छेद किया जाता है।

(१३) लिपि संस्था क्रिया—जब बालक पाँच वर्ष का हो जाये

तब यह क्रिया शुभ दिन, शुभ वार, शुभ तिथि, शुभ मास
की जाती है। यदि अध्यापक घर में ही आकर पढ़ावें, तो य
क्रिया घर में ही की जाये। किन्तु यह किसी जैन शास्त्र शाला
पाठशाला में पढ़ने जाये तो वहीं को क्रीया की जाय। स
बन्धु जनों को बालक को वस्त्र इत्यादि पहनाकर पाठशाला
ले जाना चाहिये। वहाँ जाकर देव, गुरु, शास्त्र और सरस्वत
की पूजा करें फिर नीचे लिखे मंत्र को पढ़कर होम करे। स्ले
के ऊपर चावल डालें उसके ऊपर बालक के हाथ से लिखवाये
लिखवाते समय नीचे लिखे मन्त्र बोले—शब्दपरिणामी भव, अ
परिणामी भव, शब्दसम्बन्धपरिणामी भव फिर उपाध्याय (अध्या
पक) बालक के हाथ में स्लेट देकर उनको पढ़वावे। सबसे पहले
ओं अक्षर स्लेट पर लिखवावे। लिखने का विधान यह है कि
अक्षतों को कमलों से जोड़कर कमल बनवाये और उसी अक्षत
कमल को केशर से चाँदी सोना धातु इत्यादि से स्लेट पर लिख
वाये। होम के बाद ओं नमः सिद्धेभ्यः ऐसा लिखवावे फिर अन्य
अक्षर भी लिखवाना चाहिये और फिर बच्चे के मुंह से पढ़वाना
चाहिये। अक्षरों की लिपि की पहचान के लिये उस बच्चे के हाथ
में मोटे अक्षर वाली पुस्तक दी जावे। जिस समय बालक को
गुरु अक्षर का अभ्यास करावें उस समय बालक गुरू के सामने
वस्त्रादि द्रव्य भेंट कर हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करें। तत्प
श्चात विनय से गुरु के सामने बैठे। उस समय बालक के पिता
यथा योग्य दान करें सभी बन्धुजनों को तथा अन्य लोगों को
मिष्ठान इत्यादि देवे। फिर गाजे-बाजे के साथ घर लौट कर
उन सब लोगों का सत्कार करे। उसी दिन से बालक अक्षर

आदि का प्रति दिन लिखने पढ़ने का अभ्यास करे अर्थात् इसके आगे लगभग तीन वर्ष में होने वाली जो उपनीति क्रिया है उसके पहले-पहले अपनी प्रारम्भिक शिक्षापूर्ण करले यानी अक्षर शब्द वाक्यों का ठीक २ ज्ञान लिखना पढ़ना, अर्थ समझना जोड़ बाकी, गुणन भाग आदि गणित सीख लेना चाहिये। यदि एक के सिवाय अन्य लिपि के शास्त्रों का भी अभ्यास करने का इरादा हो तो उनकी लिपियों को भी इस काम में सीख लेवे। तथा साधारण धार्मिक शिक्षा भी लेते रहना चाहिये जिससे अपने जैनपने की पहचान हो जाय। नित्य दर्शन जाप आदि व खान-पान क्रियाओं में ठीक-ठीक नियम इत्यादि का पालन करे। इस पंचम काल में ज्यादा से ज्यादा बालक माता के पास ही रहते हैं इसलिये बिद्या का अभ्यास अध्यापक के द्वारा घरमें यानी उसके स्थान पर ही होता है। उसके बाद प्राथमिक शिक्षा में बालक को उपनीति क्रिया के पहले चतुर हो जाना चाहिये। इस के लिये तीन वर्ष काल नियत किया गया है।

(१४) उपनीति क्रिया—(यज्ञोपवीत संस्कार) गर्भ के दिन से जब बालक आठ वर्ष का हो जाय तब शुभ नक्षत्र में यह यज्ञोपवीत क्रिया करनी चाहिये। त्रिवर्णाचार में लिखा भी है कि:—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपयनम्।
गर्भादेकादशो राज्ञागर्भाच्च द्वदशेविशः॥

ब्राह्मण आठवें वर्ष में, क्षत्री ११ वें वर्ष में तथा वैश्य १२वें वर्ष में यज्ञोपवीत करावे। तथा अन्त की सीमा ब्राह्मण क्षत्री वैश्य के लिये क्रम से १६-२२ और २४ वर्ष तक है परन्तु

आदि पुराण के अनुसार तीनों के लिये सामन्य काल ८ वर्ष है। इस दिन श्री जैन मन्दिर जी में व किसी विशेष मन्डप में जहाँ श्री जिन बिम्ब विराजमान हों और बन्धुजनादि बैठ सकें वहाँ यह क्रिया होनी चाहिये। ग्रहस्थाचार्य प्रवीणद्विज याश्रावक यज्ञोपवीत की सभी क्रिया को करावें। पहली क्रियाओं की तरह पूजा व हवन सात पीठिका के मन्त्रों तक किया जाय। जिसका यज्ञोपवित हो वह बालक चोटी के अतिरिक्त अन्य अपने सब केशों का मुन्डन करके स्नान करे तत्पश्चात ग्रहस्थाचार्य के निकट जावें तदनन्तर द्विज नीचे लिखे मन्त्र से आहुति देते हुए उसके ऊपर अक्षत डाले और फिर विकार सहित श्वेत रंग के वस्त्रादि पहनावे तथा आदि की क्रिया करें। उसके मन्त्र इस प्रकार हैं: —

परमनिस्तारकलिंगभागी भव।१। परमर्षिलिंगभागी भव।२। परमेंद्रलिंगभागी भव।३। परमराज्यलिंगभागी भव।४। परमार्हन्त्यलिंगभागी भव।५। परमनिर्वाणलिंगभागीं भव॥६॥ इस मंत्र के बाद बालक को णमोकार मन्त्रका संस्कार और व्रत संस्कार किया जाता है—

जैनियों का मूल मंत्र—

णमो अरिहन्ताणम, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व–साहूणं ॥

अर्थात् अरहन्त को नमस्कार हो, सिद्ध भगवान को नमस्कार हो, आचार्यको नमस्कार हो, उपाध्याय को नमस्कार हो और लोक में सर्व साधु को नमस्कार हो। इस प्रकार बालक को ५ बार उपरोक्त मंत्र पढ़ाया जाता है इसको मन्त्र संस्कार कहते हैं तथा

पांच उद्म्बर, तीन मकार इसको आठ मूल गुण कहते हैं। बड़ पाकर, पीपल, अन्जीर, गूलर ये पाँच उद्म्बर कहलाते हैं। इनमें त्रस जीव हमेशा रहने के कारण सवजीव मर जाते है इसके खाने से माँस खाने का दोष लग जाता है इसलिये इसको सबसे पहले त्याग कराते हैं। मद्य, मधु, मांस में भी असंख्यात जीवों की हिंसा होती है और मांस आदिका दोष लगता है इन सबको मिला कर आठ मूल गुण कहते हैं जो बालक के संस्कार पर किया जाता है ? बच्चे को इनके त्याग का नियम दिया जाता है ऊपर (ऊपर के व्रत की रक्षा) करने के लिये यज्ञोपवीत और कटिसूत्र व लगोंटी धारण करने का अभिप्राय यह है कि भगवान ने सम्य ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यकचारित्र इन तीनो की एकता को ही मोक्ष का मार्ग बतलाया है इसकी प्राप्ति के लिये व्यवहार रत्नत्रय बतलाया है इसके साधन के लिये उपयुक्त सभी संस्कारों का निरू- पण कर आये हैं तथा ये ही व्यवहार रत्नत्रय के चिन्ह हैं और कटि सूत्र अखण्ड ब्रह्मचर्य का चिन्ह है। इसी प्रकार व्रत की पूर्ति करने के लिये बालक को गुरुकुल में जाकर गुरू के आधीन रहना चाहिये। वहीं पहले श्रद्क की क्रिया का ग्रन्थ पढ़े फिर व्याकरण छन्द ज्योतिष व गणित अपने २ वर्ण के योग्य परमार्थिक और लौकिक विद्या का अभ्यास करे। जैसे अभी तक व्रत की संस्कार किया है उसी प्रकार पालन करें और हमेशा अपनी विद्या पूर्ण होने तक रात दिन गुरु के पास ब्रह्मचर्य के रूप में रहकर तरह २ की विद्या का अभ्यास करें। यज्ञोपवीत का विचार जनेऊ अपने तालु के छेद सेनाभि तक ही लम्बा होना चाहिये। नाभि के नीचे न जाय न इससे छोटा हो अथवा न

बड़ा हो। लघु शंका करते समय दाहिने कान में लपेटना चाहिये और दीर्घ शंका के समय दाहिने कान में लपेटना चहिये। क्योंकि अशुद्धता न हो अब १५ वां सस्कार ब्रह्मचर्य का है।

ब्रह्मचर्य :—

उपनयन क्रिया करने के बाद बालक को विद्याध्ययन कराने के लिये धर्म गुरु के पास गुरुकूल में या जहां अन्य धार्मिक तथा नैतिक दोनों शिक्षायें बालक को प्राप्त हो सके वहां बच्चे को उसके माता पिता के द्वारा अच्छी अवस्था के साथ प्रविष्ट कराना चाहिये तथा विद्याध्ययन पूर्ण होने तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत बालक को देना चाहिये। ब्रह्मचर्य से बुद्धि तीक्ष्ण होती है, स्मरण शक्ति का विकास होता है तथा बालक अतुल बलवान बनता है। बालक को विद्याध्ययन होने तक बाहर के व्यसनों से या कुसंगति आदि दुर्गुणों से सदा सुरक्षित रखना चाहिये। बालक को गुरु के पास रहकर श्रद्धा के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। और अपने वीर्य की रक्षा हर तरह से करनी चाहिये। वीर्य का पतन का मूल कारण अश्लील नाटक, सिनेमा देखना तथा लड़कियों के साथ खेल क्रीडा करना है। अतः लड़कियों को एक साथ खेल इत्यादि नहीं खेलने देना चाहिये और न नाटक सिनेमा देखना चाहिये। गरिष्ठ भोजन से वीर्य नाश का कारण है। अतः भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये, बिना भूख से नहीं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ—ब्रह्म में रमण करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। इसके लिये उपनयन संस्कार से लेकर २५ साल तक बच्चे को

काम वासना व उसकी इच्छा सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। ब्रह्मचर्य शब्द वीर्य रक्षा के अर्थ में रूढ़ हो गया है। वीर्य रक्षा ही जीवन और वीर्य नाश ही मृत्यु है। वीर्य रक्षा ने प्रताप से ही प्राचीन काल के लोग दीर्घ जीवी निरोग हृष्ट पुष्ट, बलवान, बुद्धिशाली, तेजस्वी, शूरवीर और दृढ़ संकल्पी होते थे तथा वीर्य रक्षा के कारण ही वे शीत अताप वर्षा को सहन कर नाना प्रकार के तप करने में समर्थ होते थे। सिंह के समान जंगल में एकाकी विचरते थे दिगम्बर मुनि बन कर संपर्ण परिषह को सहन कर कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष पद प्राप्त कर लेते थे। प्राचीन काल के विद्यार्थी गुरुकूल में २५ साल तक दृढ़तर ब्रह्मचर्य को पालन करके अनेक शास्त्र शस्त्र, कलरव शिल्पकारी, ज्योतिषशास्त्र, समुद्रिक शास्त्र छन्द शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, तर्क, न्याय, अनेक विद्याओं में निधान हो जाते थे। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा से गुरुकुल से लौटकर अपने पिता के घर आते थे। तब पाणि ग्रहण सँस्कार करके गृहस्थाश्रम का पालन करते थे और स्त्री समागम करते थे। उसके बाद संतान भी योग्य व बलवान उत्पन्न होती थी। इस तरह एक दो संतान होने के बाद जब बालक अपने पिता के कारोबार सभालने के योग्य हो जाते थे तब सांसारिक भार योग्य बच्चे को सौंपकर पिता अपके अवशिष्ठ जीवन को आत्म साधन में व्यय करके आगे के लिये धर्म साधन कर लेता था।

विद्यार्थी की रुचि के अनुसार विद्याध्ययन—

विद्यार्थी को नैतिक विद्या के साथ २ धार्मिक शिक्षा भी देनी चाहिये और छात्र की रुचि व मस्तिष्क के अनुकूल ही विद्या

पढ़ानी चाहिये। जब तक विद्यार्थी अपनी संपूर्ण विद्या
निष्णात न हो तब तक व्याह नहीं करना चाहिये। व्याह होने
बाद विद्यार्थी पूर्ण रूप से विद्योपार्जन करने में असमर्थ हो जात
है। इसका कारण यह है कि बालकपन में ही वीर्य का क्षय हो
के कारण बुद्धि निर्बल हो जाती है, दिमाग फेल हो जाता है
संसारिक चिन्ता में अस्त व्यस्त रहता है, बचपन में वीर्य का ना
होने से विचार शक्ति भी नष्ट हो जाती है और संतान भी ही
क्षीण उत्पन्न होती है। बल, वीर्य नष्ट होने के बाद उनका जीव
ईह पर दोनों लोक को बरबाद कर देता है।

चाहे स्त्री हो या पुरुष सबके लिये ब्रह्मचर्य ही एक श्रेष्ठ सच्च
संपत्ति है। यदि ब्रह्मचर्य रूपी संपत्ति नष्ट हो जाय, तो
पुरुष का जीवन केवल जंगल में गोबर से बने सूखे कण्डे
समान व्यर्थ ही समझना चाहिये।

राष्ट्र का उद्धार, अपना उद्धार, देश-विदेश का उद्धार, धर्म
उद्धार, पर लोक का उद्धार तथा तप का उद्धार एक ब्रह्मचर्य
ही होता है। आज जितने भी महान् पुरुषों का आदर्श इतिह
हमारे सामने है। वे सभी सच्चे, शील या ब्रह्मचर्य के बल से
ख्याति पाये हैं।

आधुनिक पश्चात्य सभ्यता के बालक और शिक्षण—

भाईयो माताओ और बहिनो! आज कल की शिक्षा प्रण
से होने वाले देश राष्ट्र और धर्म के पतन को देखकर बहुत दु
होता है और उसके कहे बिना जिह्वा नहीं मानती।

भाग्य का चक्र बड़ा विचित्र है। यह चक्र कलिकाल के स

आर्य भूमि के वासी मानव के ऊपर घूम रहा है और उसके द्वारा हमारे सवस्व धन मानव रत्न चूर्ण २ होकर अपार संसार सागर में डूबता जा रहा है।

आज कल जहाँ हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञों की माँग करते हैं, चाहे वह मशीन से सम्बन्धित हो चाहे पशुओं से सम्बन्धित हो चाहे फलों और फूलों से सम्बन्धित हो वहां पर बच्चों के पालन पोषण और शिक्षण के सम्बन्ध क प्रश्न रखना परमावश्यक है। अनपढ़ों को तो जाने दीजिये, पढ़े लिखे सम्पन्न माता पिता भो बच्चों के पालन पोषण को कला को सीखने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका भ्रम है कि हम बच्चों का पालन पोषण करना भली भांति जानते हैं। परन्तु प्राय: उन्हें उदासीन ही पाया जाता है। इसी अभागी वृत्ति के कारण पशुओं. फल फूलों और पक्षियों के पालन पोषण की अपेक्षा भी मानवी बालक अत्यन्त उपेक्षित होते जा रहे हैं और यही कारण है कि मनुष्य जाति दुःख के सागर में बहती जा रही है। मानव समाज का इतिहास पालन पोषण की कठोर टीका टिप्पणी का इतिहान है। यह योद्धाओं और व्यक्तियों के पारस्परिक वैमनस्य का इतिहास है। यदि मानव समाज इसकी ओर ध्यान नहीं देगा तो एक दिन वह पूर्ण रूप से नष्ट हो जायेगा। मनुष्य जाति का कलंकित इतिहास और बालक तथा बालिकाओं के सामान्य व्य-वहार की महामारी को देखकर यह सिद्धान्त निर्विवादरूप से स्थिर होता है कि बालकों के लिये शिक्षा और विज्ञान की परमा-वश्यकता है। सभ्य समाज के अन्दर आजकल अधिकांश माता पिता में इस विषय के प्रति केवल जागृति का अभाव ही नहीं,

अपितु विरोध भी है। बालकों के पालन पोषण के लिए मनो
विज्ञान और उसके विकास की विधियों में ज्ञान प्राप्त करने की
नितान्त आवश्यकता है।

बच्चे ही राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति हैं—

जैसे खेत किसान के लिए योग्य धन धान्यादि प्राप्त करने के लिये योग्य संपत्ति है उसी तरह बालक राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति हैं और उनके कल्याण पर ही उस देश का भारी कल्याण निर्भर है। किन्तु दुःख है कि हमारे देश में उनके हितों की अवहेलना होती जा रही है। क्योंकि शिक्षण के प्रभाव को देखकर बड़ा दुःख होता है। छात्रों के जीवन तथा सुख मार्ग का सुख आजकल हमारे आर्य भारत भूमि में प्रायः लोप हो गया है। जिस भारत की आर्य भूमि में बड़े २ महर्षि, रामचन्द्र जैसे महापुरुष, महान् २ तीर्थंकर बलभद्र, भरत चक्रवर्ती, बलशाली कृष्ण वीरनायक हनुमान इत्यादि जन्म लेकर आर्य भूमि की शोभा बढ़ाकर योग्य शिक्षण के द्वारा बलशाली महान् २ धर्मवीरों उत्पन्न किये थे। तथा धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों प्रभाव प्रजा के ऊपर डालते हुए अन्त में स्वयं मोक्ष पुरु साधन करके सभी को उसका मार्ग प्रदर्शित किये थे। वे महापु इस पवित्र भारतवर्ष में परम्परा से धर्म स्थापना करने के लि सर्वत्र मानवता का प्रचार करने के लिए स्वर्गीय देवों के सम सुख सामग्री तैयार कर गये हैं अर्थात् मानों यह कर्म भू नहीं बल्कि आर्य भूमि सचमुच स्वर्गपुरी ही है और यह धर्म, अ काम और मोक्ष पद प्राप्त करा देने वाली अखण्ड मातृभूमि

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्र रूपी रत्न को उत्पन्न करने वाली यह वसुन्धरा सचमुच रत्न की खान ही है।

प्राचीनकाल के महात्माओं की याद, आर्य पुरुषों का सतसंग, आर्य ललनाओं अर्थात माताओं की धर्मतत्परता तथा धार्मिक व नैतिक शिक्षा की जो प्रथा थी उसकी याद आते ही आंखों से अश्रु पात होने लगता है।

माताओ और भाईयो! प्राचीन काल के योग्य माता पिता भावी संतान को राष्ट्र की उन्नति करने के योग्य बनाने के लिए आश्रमों का निर्माण करते थे तथा अपने बच्चों को ब्रह्मचर्याश्रम में इसी उद्देश्य से भेजते थे कि जिससे हमारी सन्तान वंश का गौरव बढ़ाने वाली हो।

भगवान वृषभदेव ने अपने पुत्र के लिये यही कामना की थी।

रथेनाद्घातस्तिमित गतिना तीर्णजलधिः।
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम प्रतिरथः॥
इहायं सत्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः।
पुनर्यस्मित्याख्यां भरत इति कोपस्यभरणात्॥

मेरा पुत्र भविष्य में चक्रवर्ती सम्राट बने, बाधा रहित स्थिर गति वाले रथ पर बैठकर समुद्र कोपार करे, कोई महारथी इसका सामना न कर सके, पहले २ सात द्वीपों सहित संपूर्ण पृथ्वी को जीते जिससे यह अप्रतिरथी वीर कहलाये, सभी हिंसक जीवों का बलपूर्वक दमन करने वाला हो जिससे इसका

नाम सर्व दमन भी हो जाय। संपूर्ण लोक का भरण पोषण करते हुये वह भरत नाम से प्रसिद्ध हो।

भाईयो! अगर तुम राष्ट्र की सच्ची उन्नति तथा भारतीय पौराणिक इतिहास स्थिर रखना चाहते हो तो आप लोगों को भी उन्हीं के कदम पर कदम रख कर चलना होगा तभी तुम्हें सुख शांति मिल सकती है, अन्यथा तुम्हारे लिये सुख का कोई भी स्थान नहीं है और थोड़े दिनों में तुम भारत को गारत कर डालोगे।

तरुण तरुणियों की सह शिक्षा और शिक्षा पद्धति—

भारत के सज्जन मानवो! अगर तुम्हें अपनी संतान को सच्चा मानव, अपनी कन्या को सती सावित्री, दमयन्ती, अंजना तथा सीता आदि महान् सतियों के समान सच्ची जगमाता, भगवान वृषभदेव, महावीर, पार्श्वनाथ, भरत चक्रवर्ती, भगवान नेमिनाथ, राम, लक्ष्मण तथा अन्य महान् २ नेताओं के समान बनाना है तथा सत्यवादी, सज्जन सदाचारी प्रजा को उत्पन्न कराना है तो अपनी कन्याओं व बालकों पर जो पड़े हुये गंदे संस्कारों को हटाकर उच्च कोटि की सच्ची मानवता से भगवान की प्राप्ति के लिये घोर नैतिक धार्मिक तथा पौराणिक प्रणाली अपनाओ।

विद्याभ्यास में आने वाले कुसंस्कार—

बालक बालिकाओं के माता पिता तथा अभिभावकों को चाहिये कि वे बालकों को विषय सुखों में आसक्त होने का अवसर न दें

क्योंकि बालकों का विषयों में सुख की इच्छा उत्पन्न हो जाने पर वे यथार्थ विद्या के लाभ से बंचित रह जाते हैं। बुद्धिमान् तरुण तरुणियों को भी ऐसा ही समझना चाहिये तथा करना चाहिये। इस समय अनेक प्रकार की भाषा और लिपि के ज्ञान की परमावश्यकता है। सिंधी, संस्कृत, बंगला इत्यादि अनेक भाषाओं और लिपिओं का जितना भी ज्ञान हो उतना ही अच्छा है।

कालिज और स्कूलों की सहशिक्षा—

कालिज और स्कूलों की सहशिक्षा अर्थात एक साथ पढ़ना बालक और बालिकाओं दोनों को ही हानिकारक है। अर्थात् पूर्णता खतरनाक है। इससे चारित्र नाश की बहुत ही आशँका है। सहशिक्षा के बहुत अधिक दुष्परिणाम हो चुके हैं। इसलिये सहशिक्षा को सर्वथा बंद करके कन्याओं को पृथक २ पाठशालाओं में पढ़ाना चाहिये और उस कन्या पाठशाला में पढ़ाने वाली विदुषी, शीला, चारित्रवान, नैतिक तथा धार्मिक सँस्कार के योग्य स्त्री को ही अध्यापिका रखनी चाहिये। जिससे कि हमारी बालिकाएँ योग्य महिला बनकर महान् राष्ट्र की उन्नति करने वाली सँतान को उत्पन्न कर सकें।

आधुनिक कालिज स्कूलों में शास्त्र अभ्यास की शिक्षा का अभाव है अतः माता पिता को अपनी कन्या को योग्य शिक्षा देने के लिये घर में ही उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध करके धार्मिक, नैतिक तथा स्त्रियों के योग्य गृह कार्य में कुशल बनाकर पाक शास्त्र हस्तकला, शिशु पालन तथा अन्य और भी योग्य व्यवहार की शिक्षा देना चाहिये।

शृंगार से हानि—

बालक बालिकाओं को ऐसा शृंगार कभी नहीं करना चाहिये जिसे देखकर मनमें विकार उत्पन्न हो, सौन्दर्य, सजावट आदि शृंगार की भावनाओं के उत्पन्न होने से मनो विकार बढ़ता है और चरित्र का नाश हो जाता है।

अश्शीलता का त्याग—

पाठ्यक्रम में भी शृगांर, अश्शीलता, अभक्ष्यभक्षण तथा नास्तिकता का वर्णन करने वाली यानी इसको प्रोत्साहित करने वाली पुस्तकें नहीं रखनी चाहिये। इससे सभी प्रकार की बड़ी भारी हानि है। अतः जिन पुस्तकों के अध्ययन से बालिकाओं की भौतिक, व्यवहारिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक उन्नति हो, उनमें सभ्यता शिष्टाचार विनय, सेवासंयम, बल, सदाचार विबेक और ज्ञान की वृद्धि हो तथा बुद्धि तीक्ष्ण हो ऐसी उत्तम शिक्षा से युक्त पुस्तकें ही पढ़नी चाहिये।

जो बालक बाल्यवस्था से विद्याभ्यास नहीं करता है उसको सदा के लिये पश्चात्ताप करना पड़ता है। शास्त्र में विद्या की महीमा गाई गई है—

विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पुज्यते न हि धनं विद्या विहीनः पशुः॥

विद्या ही मनुष्य का जीवन है, विद्या ही अधिक से अधिक

रूप है और ढका हुआ गुप्त धन है, विद्या ही भोग, यश और कीर्ति सुख को देने वाली है तथा विद्या गुरुओं का भी गुरु है। विदेशगमन करने पर विद्या ही बन्धु के समान सहायक है। विद्या परा देवता है राजाओं के यहाँ भी विद्याकी ही पूजा होती है, धन की नहीं। इसलिये जो मनुष्य विद्या से हीन है वह पशु के समान है।

माता पिता की सेवा—

बालकों के लिये अपने माता पिता की सेवा करना परम कर्तव्य है और आज्ञा मानना भी एक प्रकार की सेवा है। इनकी सेवा करने से महान लाभ और न करने से महान हानि है। जिनके माता पिता जीवित हैं, उनकी चाहे कितनी ही आयु क्यों न हो परमात्मा पिता के सामने वे बालक ही हैं। इसके बारे में किसी विद्वान ने कहा भी है कि :—

पितरौ विकलौ दीनौ वृध्दौ दुःखितमानसौ।
महागदेन संतप्तौ परित्यजनि पापधीः॥
स पुत्रो नरकं याति दारूण क्रमिसंकुलं।
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरूभ्यामिह सांप्रतम्॥
न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम्॥
विष्ठाशी जायते मूढो ग्रामघोनी न संसयः।
या जन्य सहस्त्रतु पुनः श्वाचाभि जायते।
पितरौ कुत्सिते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि।
सच पापी भवेद् व्याघ्रः पश्चादृक्षः प्रजायते।
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः॥

जो किसी अंग से हीन, दीन, वृद्ध दुःखी तथा महान् रो
से पीड़ित माता पिता को त्याग देता है वह पापात्मा पुत्र की
से भरे हुए दारुण नरक में पड़ता है। जो पुत्र होकर बूढ़े मां बा
के बुलाने पर भी उनके पास नहीं जाता वह मूर्ख विष्टा खा
वाला ग्राम का सूकर होता है तथा फिर हजारों जन्मों तक उ
कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो पुत्र कड़वे वचन
द्वारा माता पिता की भर्त्सना करता है वह पापी बाघ की यो
में जन्म लेता है। तत्पश्चात् रीछ होता है। जो पाप बुद्धि से पु
माता पिता को प्रणाम नहीं करता वह हजार युगों तक नरक
निवास करता है इसलिये सज्जन तथा कुलीन पुत्र को माता पि
की सेवा मनः पूर्वक करनी चाहिये।

भगवान महावीर के उपदेश—

(१) हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करन
परस्त्री के प्रति नजर उठाकर नहीं देखना और परिग्रह में अधि
लालच नहीं रखना भगवान का मुख्य उपदेश है। प्राणी मा
दया करो किसी जीव को अन्याय से मत सताओ तथा जै
अपनी आत्मा है वैसी ही दूसरों की आत्मा भी समझो।

(२) प्रातकाल सूर्य उगने से पहले उठो, दांतों को नित
दातुन करके स्वच्छ रक्खो। दातुन न हो तो मंजन करो। नित
भली प्रकार स्नान करो। साफ वस्त्र पहन कर भगवान का दर्श
पूजन करने जाना तथा समय के अनुसार शास्त्र अभ्या
करो अर्थात् स्वाध्याय करो।

(३) पानी छानकर काम में लेना चाहिये क्योंकि पानी

हमेशा छोटे २ सम्मूर्च्छन जीव रहते हैं जो कि बहुत सूक्ष्म होते है। कहा भी है कि—

ते आशादनुयातेन, श्वासेनैकेन जन्तवः।
हन्यन्ते शतशो ब्रह्मन्नणुमात्राचर वादिनः॥

सांख्य गुरु, जल के मध्य में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की रक्षा करने के लिये अपने पास पानी छानने के लिये छनना अर्थात कपड़ा रखते हैं और अपने भक्तों को पानी छानने के लिये तीस अंगुल प्रमाण चौड़े गाढ़े छलने को पास में रखने का उपदेश करते हैं। क्योंकि सूक्ष्म पानी की एक बूँद में इतने जीव रहते हैं कि अगर उन जीवों की संख्या बढ़ाई जाय तो वे जीव तीनों लोकों में न समायें।

(४) पेट साफ रहे इसका ध्यान रक्खो। जो वस्तुएँ सरलता से न पच सकें उन्हें मत खाओ। कब्ज होने पर हरड़ या त्रिफला सोते समय खाकर गरम दूध पीलो।

(५) खुली वायु में कुछ दूर रोज टहल आया करो।

(६) मांस, मछली, अण्डे, प्याज, लशून तथा बासी और सड़ा भोजन बुद्धि को निश्चय ही मलीन बनाकर स्वास्थ्य को नाश करता है इसलिये इनका अवश्य त्याग करना चाहिये।

(७) होटल में मत खाओ, लाल मिर्च खटाई, तेल के बने पदार्थ, बाजार की पूड़ी, मिठाई और चाट स्वास्थ्य के लिये बहुत ही हानिकारक है।

(८) तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, चाय काफी आदि सब प्रकार

को नशीली वस्तुएँ तथा द्राक्षासव, दारु इत्यादि वस्तुएँ स्वास्थ्य को नष्ट करती हैं।

(९) भोजन सात्विक हल्का तथा ऋतु के अनुकूल स्वास्थ्य वर्द्धक होना चाहिये।

(१०) बहुत गरम भोजन, चाय, दूध पीना अथवा बहुत ठण्डा भोजन, बरफ या बरफ में पड़े हुए पदार्थ खाना पेट को तो खराब करता ही है बल्कि इससे दांत भी शीघ्र ही गिर जाते हैं। सोडा वाटर लेमन कभी भी नहीं पीओ। वह जूठी तो होती ही है पर साथ ही साथ स्वास्थ्य नाशक भी होती है।

(११) खड़े २ भोजन मत करो, चलते फिरते भोजन मत करो तथा भोजन करते समय बातें करना हानिकारक हैं। बैठकर मौन से भोजन करो।

(१२) कुल्ला करके हाथ पैर धोकर गीले पैरों भोजन करने से भोजन ठीक पचता है। भोजन के बीच २ अवश्य पानी पीओ। भोजन समाप्त करके तुरन्त जल मत पीओ। आधे घण्टे के बाद पीओ।

(१३) ग्रास इस तरह उठाओ कि पात्र से भूमि पर या वस्त्र पर जूठन न गिरे।

(१४) एक पत्तल में या थाली में अनेक जनों का एकत्रित बैठ करके खाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। छोटे बच्चों को भी परस्पर जूठ नहीं खाना चाहिये। अतः किसी का जूठ मत खाओ।

(१५) भोजन के पश्चात भली प्रकार कुल्ला करके शुद्ध जल से हाथ मुह और पैर धो डालो।

(१६) भोजन करते समय शरीर पर कुर्ता कमीज आदि नहीं होना चाहिये। शरीर खुला रहना चाहिये, किन्तु केवल धोती पहन कर भोजन करना भी उत्तम नहीं है। कन्धे पर एक चद्दर या गमछा अवश्य रखना चाहिये।

(१७) बिना देखे जल मत पीओ। पहले देख लो कि कुछ पड़ा तो नहीं है तब पीओ। इसी प्रकार बिना देखे इलायची पान आदि मुख में मत डालो और बिना देखे तथा बिना धोये फल मत खाओ।

(१८) कहीं से चलकर आने पर तुरन्त जल मत पीओ, हाथ पैर मत धोओ और स्नान मत करो। क्योंकि इससे बड़ी हानि का भय रहता है। पसीना सूखने दो। कम से कम पन्द्रह मिनट विश्राम कर लो। तब पहले हाथ पैर धोकर कुल्ला करके जल पीओ।

(१९) श्वास सदा नाक से ही लो। मुख खोलकर मत सोवो मुख खोलकर सोने से दुर्बलता होती है तथा चारित्र और फेफड़ों का नाश होता है।

(२०) शौच जाकर हाथ सदा शुद्ध मिट्टी से धोओ, खराब मिट्टी से मत धोओ।

(२१) शौच या लघु शंका बैठने के पहले उस जगह को चींटी या और सूक्ष्म जीवों से देख भाल कर बैठो यानी उस जगह पर पड़े हुये जीव को वहाँ से हटाकर बाद में पेशाब या टट्टी करने बैठो।

(२२) किसी के पहने हुये कपड़े या जूते मत पहनो।

(२३) सूर्योदय के पश्चात तक सोते रहने वाले का तेज बल

आयु एवं लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। ब्रह्ममुहूर्त में ही निद्रा त्या
गने वाले उत्तम स्वास्थ्य एवं सुखी जीवन प्राप्त करते हैं।

(२४) सिनेमा देखना नेत्र ज्योति को नष्ट करता है त
उसमें और भी बहुत से भयानक दोष हैं। नेत्रों की रक्षा के लि
तेज प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिये। इस प्रकार नहीं पढ़ना चाहि
कि प्रकाश सीधा पुस्तक के पृष्ठों पर पड़े। लेटे लेटे नहीं पढ़
चाहिये और न झुककर या पुस्तकों को नेत्रों के बहुत पास कर
पढ़ना चाहिये।

(२५) अगर तुम मन से स्वस्थ रहना चाहते हो तो तु
सिनेमा कभी भी नहीं देखना चाहिये। स्त्रियों से हँसी दिल्ल
नहीं करनी चाहिये, उनके नंगे चित्र नहीं देखने चाहिये और
गन्दे पत्र पत्रिका तथा पुस्तकें पढ़नी चाहिये। इन उत्तेजना दे
वाले साधनों से अनेक अनर्थ होते हैं।

आज सिनेमा से नबयुवक या नवयुवतियां अपने शी
सदाचार से बिलकुल नष्ट भ्रष्ट होती जा रही हैं, उतना ही न
इस सिनेमा ने बल्कि आर्य भमि की तरुणियों को वेश्या औ
तरुणों को भांड़ बनाकर उन्हें सदाचार से बिलकुल पतन क
दिया है।

तरुण भाईयो और बहनों !

यद्यपि ऊपर बच्चों के शरीर व स्वास्थ्य के योग्य बातें भ
वान महावीर के शासन के अनुसार हम संक्षेप में कह आये
परन्तु फिर भी बालक को स्वस्थ रखने या उसकी बुद्धि में प
त्रता लाने की जिम्मेदारी माता पिता के हाथ में है। माता पि
यदि बच्चे को हानि पहुँचाने वाले या उनके पवित्र जीवन

नष्ट करने वाले आचरण की तरफ ध्यान रक्खो तो उसका जीवन सुधरकर बच्चे सच्चे मानव तथा लड़की सच्ची साध्वीसी बनकर अपने आचरण यानी पुनीत धर्म नीति से उन्नत मार्ग पर पहुँच कर इस भारत में पवित्र इतिहास का पात्र बन जायेंगे।

अब सँक्षेप में कुछ ऐसी बुराइयों पर विचार किया जाता है जिनका त्याग करना समाज के लिये धार्मिक, नैतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से परमावश्यक है।

चारित्र गठन और स्वास्थ्य—

असंयम के साथ असमर्यादित खान पान और गन्दे साहित्य आदि के कारण समाज के चारित्र और स्वास्थ्य का बुरी तरह से ह्रास होता जा रहा है। बीड़ी, सिगरेट, पीना दिन भर पान खाते रहना, दिन में पांच सात बार चाय पीना, भांग तम्बाकू, गांजा, चरस आदि का व्यवहार करना उत्तेजिक पदार्थोंका सेवन करना, विज्ञापनीबाजीकरण दवाएँ खाना, मिर्च मसाले चाट मिठाइयां खाना तथा अरुचि उत्पन्न करने वाली गन्दी वस्तुओं को सर्वथा त्याग देना चाहिये।

अश्लील कहानियों उपन्यास तथा नाटकों का पढ़ना, शृंगार रस के काव्य और कोकशास्त्रादि के नाम से प्रचलित पुस्तकों को पढ़ना, गन्दे समाचार पत्र पढ़ना अश्लील चित्रों को देखना, पुरुषों को स्त्रियों में और स्त्रियों को पुरुषों में असमर्यादित रूप से जाना आना, शृंगार वर्द्धक गाना सुनना औ प्रमादी, विषयी व्यभिचारी तथा नास्तिक पुरुषों का संग करना आदि दोष समाज में

छाये हुये हैं। काल के नाम पर कितने भी अनर्थ हो जाँ
पर सभी क्षम्य माने गये हैं। प्राचीनसभ्यता के नाम पर समा
में नयी सभ्यता आ घुसी है, जो समाज रूपी शरीर में घुन
तरह लगकर उसका धर्म, नीति या सदाचार सर्वस्य का नाश
रही है।

काम सम्बन्धी साहित्य पढ़ना, सिनेमा देखना, सिनेमा
युवक युवतियों के शृंगार का अभिनय करना और निःसंको
होकर एक साथ रहना तो आज कल सभ्यता का एक निर्दोष अं
माना जाता है।

गन्दी प्रथा—

जैसे जूता पहने घरों में घूमना, एक साथ खाना, खाने
कांटे छुरी का उपयोग करना टेबल पर बैठ कर खाना, जूते पह
कर खाना, भक्ष्य अभक्ष्य का विचार न करना, खड़े २ मूतना
चर्बी मिश्रित साबुन लगाना, खाने पीने चीजों में संयम न रख
जैन शास्त्र की पद्धति के अनुसार बिना छाने पानी प्रयोग
लाकर त्रस जीवों की रक्षा न करना, बासी खाना, कच्ची रो
दाल भात इत्यादि रात को खाना तथा उसमें त्रस जीवों के हों
वाली हिंसा का ख्याल नहीं करना, भोजन करने के बाद कुल्ल
न करना, मलमूत्र त्यागने के बाद पानी से शुद्धि न करके का
या कागज से साफ कर लेना, मलमूत्र त्यागने के पश्चात् मिट्ट
के बदले साबुन से हाथ धोना या बिलकुल ही न धोना, फैश
के पीछे पागल रहना, बहुत अधिक कपड़ों का संग्रह करना, बा
बार पोशाक बदलना आदि २ बुरी आदतों को त्याग देना प्रत्ये
मनुष्य व माता का परम कर्तव्य है।

रहन सहन—

समय वातावरण तथा स्थिति के अनुसार रहन सहन में परिवर्तन तो होता ही है, परन्तु ऐसी कोई बात होनी नहीं चाहिये, जो समाज, चारित्र, नीति या आचारविचार आदि का घातक हो।

इस समय हम देखते हैं कि समाज का रहन सहन बहुत तीव्र गति से पाश्चात्य ढंग का होता चला जा रहा है। पाश्चात्य रहन सहन जीवन अधिक खर्चीला होने से हमारे आर्य बन्धुओं के लिये आर्थिक दृष्टि से तो घातक है ही पर हमारी सभ्यता और सदाचार के विरुद्ध होने से अध्यात्मिक और नैतिक पतन का भी हेतु है।

खान पान—

खान पान की पवित्रता रखना और संयम की तरफ अपने मन को बढ़ाने का प्रयत्न करना पवित्र आर्य जाति के मानव के जीवन का प्रधान अंग है। किन्तु खेद है कि आज इस पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। रेलों में हर किसी का जूठा सोडा वाटर लेमन पीना और जूठा भोजन खाना आम तौर पर चलता है। यह अपवित्र तो है ही ,क्योंकि इससे एक दूसरे की बीमारी और गन्दे विचारों के परमाणु एक दूसरे के अन्दर शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं। होटल, हलवाई की दुकान या चाट वाले (खोंचेवाले) के सामने जूते पहने खड़े २ खाना, हर किसी के साथ खा लेना मद्य, मांस या अण्डे का आहार करना, लहसुन प्याजयुक्त बिस्कुट, बाज़ारू चाय, तरह २ के पानी, अपवित्र आइसक्रीम

और बरफ आदि वस्तुओं के खाने पीने में आज कल बहुत ही अधिक मात्रा बढ़ गई है। शोक की बात है कि निरामिष भोजी जातियों में भी डाक्टरी दवाओं के द्वारा और होटलों तथा पार्टियों के संसर्ग दोष से अण्डे और मांस मद्य का प्रचार हो रहा है। मांस में प्रत्यक्ष हिंसा होती है। मांसाहारियों की बुद्धि तामसी हो जाती है, स्वभाव क्रूर बन जाता है और अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

ऐसे क्रूर पापी लोग देवी देवता के नाम से अपनी जिह्वा तथा अपने पेट की पूर्ति के लिये मूक पशुओं को काट काट कर अपनी रसेन्द्रिय को तृप्त कर लेते हैं ऐसे मनुष्यों को भगवान महावीर ने मनुष्य न कह कर राक्षस की उपमा दी है।

मांस खाने से शरीर तथा धर्म दोनों की हानि है—

मांस न किसी वृक्ष से, न जमीन से, न धान्य से तथा न किसी पहाड़ वगैरह से प्राप्त होकर त्रस अर्थात पचेन्द्रिय जीवों के घात करने से ही प्राप्त होता है अन्यथा नही। जैसे कि पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में अमृत चन्द्र आचार्य ने कहा भी है कि—

अर्थानाम य एते प्राणा नहिश्चराः पुंसाम्।
हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान् ॥१०३॥

संसारी जीवों के जिस प्रकार जीवन के कारण भूत इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास आदि अन्त प्राण हैं उसी प्रकार धन, धान्य, सम्पदा, बैल घोड़ा, दास दासी, मन्दिर, पृथ्वी आदि जितने पदार्थ पाये जाते हैं वे सब अनेक जीवन के कारण भत बाह्य

प्राण हैं। इसलिये उसमें एक भी पदार्थ का वियोग हो जाय तो जीवों को प्राणाघात सदृश दुःख होता है अर्थात् केवल हरण करने से ही इतना दुःख या हिंसा होता है तो क्या इन जीवों को घात करके खाने से मनुष्य दुःखी नहीं हो सकता।

मनु ने भी कहा है कि—

अनुमन्ता विशसिता सिनहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कृति चोपभोक्ता च खादकश्चेति घराका:॥

सलाह देने वाला, अंग काटने वाला, मारने वाला, मांस खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, और खाने वाला, ये सभी घातक कहलाते हैं इसी तरह महाभारत में भी कहा है कि—

धनेन क्रयिका हन्ति खादकश्चोप भोगत:।
घात को बध बंधाभ्यामित्येष त्रिविघो बध:॥
आहाति चानुमंता च बिशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कृति चोपभोक्ता च खादका: सर्व एव ते।

मांस खाने वाला धन से प्राणी की हिंसा करता है, खाने वाला उपभोग से करता है और मारने वाला मारकर और बाँध कर हिंसा करता है। इस प्रकार तीन तरह से बंध होता है। जो मनुष्य मांस खाने वाले हैं ऐसा समझना चाहिये अर्थात घातकी समझना चाहिये।

अतएव मांस भक्षण करके धर्म का हनन करने वाला महापापी है। धर्म के पालन करने वाले के लिये हिंसा का त्यागना पहली सीढ़ी है। जिसके हृदय में अहिंसा का भाव नहीं है वहाँ धर्म का स्थान ही कहाँ।

आज, यहाँ जो जिस जीव के मांस को खायेगा किसी समय वही जीव उसका बदला लेने के लिये उसके मांस को खाने वाला बनेगा। जो मनुष्य जिसको जितना कष्ट पहुँचाता है। समयान्तर में उसको अपने किए हुए कर्म के फलस्वरूप वह कष्ट और भी अधिक मात्रा में (मय ब्याज के) भोगना पड़ता है, इसके सिवाय यह भी युक्ति संगत बात है कि जैसे हमें दूसरे के द्वारा सताये और मारे जाने के समय कष्ट होता है वैसा ही सबको होता है। पर पीड़ा महा घातक है, पाप का फल सुख कैसे होगा इसलिए भीष्म पितामह कहते हैं :—

कुम्भी पाके च पच्यन्ते तां तां योनि मुपागतः।
आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्रास्यन्ते वै पुनः पुनः॥

मांसाहारी जीव अनेक योनियों में उत्पन्न होते हुए अन्त में कुम्भी पाक नरक में यन्त्रणा भोगते हैं और दूसरे उन्हें बलात्कार से दबाकर मार डालते हैं इस प्रकार वे बार-बार नाना योनियों में भटकते रहते हैं।

भगवान ने सृष्टि में जिस प्रकार के जीव बनाये हैं उनके लिये उसी प्रकार के आहार की रचना की है। माँसाहारी सिंह कुत्ते, भेड़िये आदि की आकृति और उनके दाँत जबड़े नख और हड्डी आदि से मनुष्य की आकृति और उसके दांत, जबड़े, पंजे नख और हड्डी की तुलना करके देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य का भोजन अन्न, दूध और फल ही है। जल चिकित्सा के प्रसिद्ध आविष्कारक लुइकोनी महोदय ने भी कहा है कि मनुष्य मांस भक्षी प्राणी नहीं है। वह तो माँस भक्षण

करके मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध काय कर नाना प्रकार की विपत्तियों को बुलाता है। मनुष्य की प्रकृति स्वाभाविक ही सौम्य है। सौम्य प्रकृति वाले जीवों के लिये अन्न दूध, फल आदि सौम्य पदार्थ ही स्वाभाविक भोज्य पदार्थ हैं। गौ, बकरी, कबूतर आदि सौम्य प्रकृति के पशु पक्षी भी मांस न खाकर घास, चारा, अन्न आदि ही खाते हैं। माँसाहारी पशु पक्षियों की आकृति सहज ही क्रूर और भयानक होती है। शेर, बाघ, बिल्ली, कुत्ते आदि को देखते ही इस बात का पता लग जाता है। महाभारत में कहा भी है :—

इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांस गद्धिनः।
विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षोगणा इव ॥
अपूपान् विवधाकारान् शकानि विविधानि चः।
खाण्डवान रसयोगान्न तथेच्छन्ति यथाभिषम् ॥

महा० अनु० ११६।१-२।

शोक है जगत् में क्रूर मनुष्य नाना प्रकार के पवित्र खाद्य पदार्थों को छोड़ कर महान् राक्षस की भांति मांस के लिये लालायित रहते हैं तथा भाँति-भाँति की मिठाइयों तरह-तरह के शाक, खांड की बनी हुई वस्तुओं और सरस पदार्थों को भी वैसा पसन्द नहीं करते जैसा मांस को।

इससे यह सिद्ध हो गया कि मांस मनुष्य का आहार कदापि नहीं है।

भोजन से ही शुभाशुभ मन बनता है इसकी एक कहावत भी प्रसिद्ध है कि—

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन

मनुष्य जिन पशु पक्षियों का माँस खाता है उन्हीं पशु पक्षियों जैसे गुण आचरण आदि उसमें उत्पन्न हो जाते हैं उसकी आकृति क्रम से वैसी ही बन जाती है। इससे वह इस में मनुष्योचित स्वभावसे प्रायः च्युत होकर पशु स्वभाववाला क्रूर और अमर्यादित जीवन वाला बन जाता है और मरने पर वैसी ही भावना के फल स्वरूप तथा अपने कर्मों का बदला भोगने के लिये उन्हीं पशु पक्षियों की योनियों को प्राप्त कर महान् दुःख भोगता है।

भीष्म पितामह कहते हैं कि:—

येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलनुपाश्नुते॥

महा० अनु० ११८।३७।

प्राणी जिस-जिस शरीर से जो-जो कर्म करता है उस शरीर से वैसा ही फल पाता है। इससे सिद्ध है कि मांसहारी मनुष्य जिन पशु पक्षियों का मांस खाता है वैसे ही पशु पक्षी आगे चल कर स्वयं बन जाता है।

जब हम किसी जीव के प्राणों का संयोग करने की शक्ति नहीं रखते, तब हमें उसके प्राण हरण करने का वस्तुतः कोई अधिकार नहीं है। यदि करते हैं तो वह एक प्रकार से महान् अत्याचार है। मांसा हारी ऊपर लिखे अनुसार स्वयं प्राणी बध न करने वाला हो तो भी प्राणी बध करने का दोषी है क्योंकि प्रकारान्तर से वही तो प्राणी हिंसा का कारण है।

मांसाहारी मनुष्य निर्दयी हो ही जाता है। जिसमें दया नहीं है उसके अधर्मी होने में क्या सन्देह है। मांस-भक्षी मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि मांस खाकर कितना जघन्य कार्य कर रहा हूँ। मेरी तो थोड़ी देर के लिये केवल क्षुधा की निवृत्ति होती है, परन्तु बेचारे पशु पक्ष के प्राण सदा के लिये चले जाते हैं। प्राण नाश के समान और कौन दुःख है, संसार में सभी प्राणी प्राण नाश से डरते हैं।

अनिष्टं सर्व भूतानां मरणं नाम भारत।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायते वेपथुः ॥महा० ११६॥

हे भारत! मरण सभी जीवों के लिये अनिष्ट है मरण के समय सभी जीव सहसा काँप उठते हैं।

जिस मनुष्य के हृदय में दया होती है वह तो दूसरे के दुःख को देखकर सुनकर ही काँप उठता है और उसके दुःख को दूर करने में लग जाता है। परन्तु जो क्रूर हृदय मनुष्य पापी पेट को भरने और जीभ को स्वाद चखाने के लिये प्राणियों का बध करते हैं वे तो स्वाभाविक ही निर्दयी हैं। निर्दयी मनुष्य किसी मनुष्य पर दया नहीं कर सकता।

मांसाहार में दोष—

मांसाहार में सबसे बढ़कर दोष यह है कि किसी की हिंसा किये बिना मांस मिल नहीं सकता और किसी भी जीव को किसी प्रकार से किंचित मात्र भी कष्ट पहुँचाना पाप है। उसके समूह को नष्ट कर देना तो महा पाप है। ऐसी परिस्थिति में माँसाहार को पुण्य किसी प्रकार भी नहीं मिल सकता। जो लोग मांसाहार को

पुण्य समझते है अथवा जो पाप नहीं समझते है वे भी गम्भी-
रता के साथ विचार करेंतो सम्भव हैकि बुद्धिमें भी मांसाहार पा-
मय दिखने लगे। क्योंकि जिसका मांस खाया जाता है उन जी-
को प्रत्यक्ष में ही महान कष्ट होता है और उनका नाश हो जा-
है। किसी प्रकार से किसी को दुःख पहुँचाना ही पाप है। अप-
शरीर का उदाहरण सामने रख कर इस पर विचार करना चाहि-
विवेकशील मनुष्य का कभी यह कर्तव्य नहीं हो सकता कि व-
जिस कार्य को अपने लिये महान् दुःख समझता है उसी को दूस-
के प्रति करे। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि चोट लगने प-
या मारने पर जैसी पीड़ा हम लोगों को होती है वैसी ही प-
पक्षियों को भी होती है। मारने के समय उनके रुदन, विला-
और छूटने की चेष्टा से यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। फिर अप-
शरीर पोषण के लिये या स्वाद के लिए तो दूसरे जीवों को जा-
से मार डालना किसी प्रकार भी मनुष्यत्व नहीं कहला सकता।

पशु पक्षी आदि को मार कर उनका मांसाहार करने में उन-
या अपना किसी प्रकार हित भी नहीं है, वे तो प्रत्यक्ष पीड़ि-
होते और मरते ही हैं, परन्तु मांसाहारी का भी बड़ा नुकसा-
होता है। मांसाहार से मनुष्य का स्वभाव क्रूर और तामसी -
जाता है, दया उसके हृदय से चली जाती है। वह जिस जीव -
मांस खाता है, उस जीव के रोग और दुष्ट स्वभाव के परमा-
अन्दर जानेसे नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्याधि-
हो जाती हैं, दुर्गन्ध के कारण भी मांस अखाद्य है।

इसलिये हे मानव प्राणी! तू इस प्रकारइन्द्रियों का लोलुप
होकर अनेक प्रकार के त्रस जीवों का घात कर अपने पेट को-

कबर बना रहा है। तू अपने पाप को ही पुण्य समझ करके अपनी इन्द्रियों की उत्तेजना करने के लिए पाप का उपदेश देता है। तेरे अन्दर दया भाव का नाम निशान नहीं है। तू अपने को धर्मात्मा कहला कर दूसरे को उपदेश देता है और उसी को तू धर्म समझता है। इसलिये हे मनुष्य ! वीतराग भगवान महावीर का बतलाया हुआ, जो सच्चा अहिंसामयी "आत्मधर्म" है, उसी के सन्मुके होकर जब तक नहीं देखेगा, तब तक तू अपना और पर का कल्याण नहीं कर सकता है।

आज कल की बाजार की मिठाई—

इसी प्रकार आज कल की मिठाइयों में भी बड़े अनर्थ होने लगे हैं। हमारी माताओं में, भाईयों में, तथा लड़कियों में, तथा बालकों में मानवता की शक्ति निर्माण के लिये ऊपर बतलाये हुए अनिष्ट खान पान के संसर्ग से बच्चे के अन्दर असली पुरुषत्व कहाँ से निर्माण होगा ? आज कल शक्ति बर्द्धक शुद्ध घी भी असली नहीं मिलता, उसमें भी मिलावट शुरू हो गई है। मावा, बेसन, मैदा, चीनी, आटा मसाले, तेल आदि भी शुद्ध नहीं मिलते। हलवाई लोग तो दो पैसे के लोभ से नकली चीजें बरतते ही हैं। समाज के स्वास्थ्य का ध्यान न दूकानदारों को है, न हलवाईयों को। होता भी कैसे ? जब बुरा बतलाने वाले को ही बुरी चीजों का लोभ वश प्रचार करते हैं, तब बुरी बातों से कोई कैसे परहेज रख सकता है ? आज तो लोग आप ही अपनी हानि करने को तैयार हैं वे दूसरा का कहना कैसे मानेंगे ? जब मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है तब कोई ब्रह्मा भी आकर उनको सम-

जायें तब भी उनकी बुद्धि ठीक नहीं हो सकती यही आज क
के तरुण और तरुणियों का हाल है।

कु-रिवाज को छोड़ो—

भाइयो अगर तुम अपना सच्चा हित चाहते हो, शरीर क
तन्दुरुस्त रखना चाहते हो, तो अन्याय से कमाये हुए पैसों क
अपवित्र तामसी वस्तुओं अर्थात गन्दे, सड़े हुए, बिगड़े हुए, गन्द
स्थान में रक्खे हुये, हिंसा और मादकता से युक्त, विशेष खर्ची
अस्वास्थकर पदार्थों से युक्त, व्यसन रूप, अपवित्र, और उच्छिष
भोजन को ग्रहण न करो। इससे धर्म, बुद्धि धन तथा आर्य ज
की सज्जनता सभ्यता और स्वास्थ्य सभी के लिए हानि होती है
इसलिये सज्जनो इस विषय पर सभी लोग ध्यान देंगे तो भार
की बिगड़ी हुई नीति, जल्दी सुधार जायेगी राष्ट्र की उन्न
होगी।

वेष भूषा—

वेषभूषा सादगी और कम खर्चीली सुरुचि उत्पन्न करने वाल
पवित्र और संयम को बढ़ाने वाली होना चाहिये। आज कल ज्यों
फैशन बढ़ रहा है त्यों २ खर्च भी बढ़ता जा रहा है। सादा मोट
कपड़ा तथा वस्त्र किसी को पसन्द नहीं। जो खादी पहनते हैं उन
भी एक तरह की बनावट आने लगी है। वस्त्रों में पवित्रता होन
चाहिये विदेशी और मील के बने वस्त्रों में चर्बी को माण्ड लगत
है, यह बात अच्छी तरह सभी लोग जानते हैं। देश की हाथ क
कारीगरी मिलों की प्रतियोगिता में नष्ट होती है। इससे गरी
मारे जाते हैं। इसलिये मिल के बने वस्त्र नहीं पहनने चाहिये।

विदेशी वस्त्रों का व्यवहार तो देश की दरिद्रता का प्रधान कारण है ही। रेशमी वस्त्र जीवित कीड़ों को उबाल कर उनसे निकले हुए सूत से बनता है। वह भी अपवित्र है और हिंसा युक्त है। वस्त्रों में सबसे उत्तम हाथ से काते हुए सूत की हाथ से बनी खादी है। परन्तु इसमें भी फैशन नहीं आना चाहिये। खादी हमारे संयम और स्वल्प व्यय के लिये है फैशन और फ़िजूल खर्ची के लिये नहीं। खादी में फैशन और फिजूल खर्ची आ जायगी तो इसमें भी अपवित्रता आ जायेगा। मिल के बने हुए वस्त्रों की अपेक्षा तो मिल के सूत से हाथ करघे पर बने हुए वस्त्र उत्तम हैं। क्योंकि उसकी बुनाई के पैसे गरीबों के घर में जाते हैं और उसमें चर्बी भी नहीं लगती है।

स्त्रियों के गहनों में फ़ैशन—

स्त्रियों गहनों में भी फ़ैशन का जोर है। आज कल असली सोने के सादे गहने प्रायः नहीं बनाये जाते हैं। हल्के सोने के और मोतियों के फैशनेबल गहने बनाये जाते हैं, जिसमें मजदूरी ज्यादा लगती है। बेचने के समय बहुत ही कम कीमत मिलती है पहले स्त्रियों के गहने ठोस सोने के होते थे। जो विपत्ति के समय काम आते थे। अब वह बात प्रायः चली गयी। इसी प्रकार कपड़ों में फैशन आ जाने से कापड़े ऐसे बनते हैं जो पुराने होने पर किसी काम नहीं आते और न उनमें लगी हुई जरी, सितारे, कलाबत्तू आदि के ही विशेष दाम मिलते हैं। ऐसे कपड़ों के बनवाने में अपार समय और धन व्यर्थ जाता है।

नये पढ़े लिखे बाबू और लड़कियों के फैशन—

आज कल के नये पढ़े लिखे बाबुओं और लड़कियों में तो

इतना फैशन आ गया है कि वे खर्च के मारे तंग रहने पर
वेशभूषा में खर्च कम नहीं कर सकते। साथ ही शरीर की स
वट और सौन्दर्य वृद्धि की चीजें साबुन, तेल, फुलेल, इत्र, क्री
लवेण्डर, सेन्ट, पाउडर आदि इतने बरते जाने लगे हैं कि उ
एक २ व्यक्ति के पीछे एक गरीब गृहस्थी का काम चल सकता
इन चीजों के व्यवहार से आदत बिगड़ती है, अपवित्रता आ
है और स्वास्थ्य भी बिगड़ता है। धर्म की दृष्टि से तो यह
चीजें त्याज्य हैं। जो स्त्री पुरुष अपने को सुन्दर दिखला
चाहते हैं वे काम-भावना का विस्तार करके बल, बुद्धि और वी
के नाश द्वारा अपनी समाज का बड़ा अपकार करते हैं।

रस्म-रिवाज—

रस्म रिवाजों में सुधार चाहने वाली सभाओं के द्वारा
एक ओर एक बुरी प्रथा मिटती है तो उसकी जगह दो दूसरी
आ जाती हैं। जब तक हमारा मन नही सुधर जाता तब
सभाओं प्रस्तावों से कुछ भी नहीं हो सकता हैं। खर्च घटा
के लिये सभाओं में बड़ी पुकार मची है। खर्च कुछ घटा भी
नये २ इतने रिवाज बढ़ गये कि खर्च की रकम पहले की अपे
बहुत अधिक बढ़ गई। दहेज की प्रथा बड़ी भीषण है इसको
सभी लोग मानते हैं। धारा सभाओं में इस प्रथा को बन्द क
के लिये बिल भी पेश होते हैं। चारों ओरसे पुकार भी काफी हो
है, परन्तु यह प्रथा ज्यों की त्यों बनी हुई है और इसका विस्
अभी जरा भी रुका नहीं है। साधारण स्थिति के गृहस्थ के लि
ता एक कन्या का विवाह करना मृत्यु की पीड़ा भोगने के बरा

सा है। आज मोल तोल होते हैं। दहेज़ का इकरार तो पहले ही हो जाता है, तब कहीं सम्बन्ध होता है और पूरा दहेज़ न मिलने पर सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है। दहेज़ के दुःख से व्यथित माता पिता की मानसिक पीड़ा को देखकर बहुत सी कन्याएं अर्थात् कुमारियाँ आत्म हत्या करके समाज के इस बूचड़ खाने पर अपनी बलि चढ़ा देती हैं। क्या ये अहिंसा है जैन भाइयों की या इतर सज्जन धर्मात्मा कहलाने वाले तथा सज्जन कहलाने वाले धर्म नेताओं की। भारत की आर्य जाति? क्या इससे भगवान तुम से सन्तुष्ट होगा, तुम्हारे दान धर्म या क्रिया काण्ड के रात दिन चिल्लाने से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, कदापि नहीं ? इसलिये भाइयां तुम अपने धर्म का ख्याल रखकर दया के पात्र बनो और राक्षस-वृत्ति को बन्द करो।

इतने कहने पर भी यह राक्षस-वृत्ति बन्द नहीं होती, यदि बढ़ती ही गई तो भारत की आर्य भूमि के उच्च मानव समाज का इसे दुर्भाग्य समझना चाहिये।

बहुत सी जगह कन्या का तिरस्कार भी होता है और यदि कन्या बीमार पड़ जाय तो उसका ठीक इलाज न करके बिमारी के निमित कन्या को मार दिया जाता है। उसके जीवन का मूल्य नहीं समझा जाता है। यहाँ तक कि कन्या का जन्म होते ही कई माता पिता तो रोने लगते हैं। दहेज पीड़ा ही इसका एक प्रधान कारण है। इस समय ऐसे धर्मी, साहसी सज्जनों की आवश्यकता है जो लोभ छोड़ कर अपने लड़कों के विवाह में दहेज लेने से इन्कार कर दें। लड़कों के

स्वार्थ त्याग से ही यह पाप रुकेगा। अन्यथा यदि यह चल रहा तो समाज की बड़ी ही भीषण स्थिति होनी सम्भव है।

विवाह में नौटंकी या वेश्याओं के नाच

विवाह आदि में वेश्याओं के नाच फुलवाड़ी, अतिशबाजी भंडुओं के स्वांग, गन्दे मजाक, स्त्रियों के गन्दे गाने, सिनेमा नाटक, जुआ, शराब आदि आचरण से गिराने वाली, सच्चे धर्म नीति से पतन करके कू-रूढ़ियों को अर्थात् मिथ्या रूढ़ि को बन्द करना ही अपना कल्याण करना जरूरी है। जहाँ तक हो गाँजा, भाँग, तम्बाकू, सिगरेट बीड़ी आदि मादक वस्तुओं की तथा सोड़ावाटर बर्फ की मेहमानदारी भी नहीं होनी चाहिये। विद्वान लोग अपनी इज्जत की रक्षा तथा धर्म आचार विचार कुलाचार की रक्षा के लिये बुरी रिवाजों को बिलकुल बन्द कर देना चाहिये।

मिथ्या विश्वास—

आज कल मानव प्राणियों को सच्चे धर्म, सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, तथा सच्चे गुरुओं से श्रद्धान उठ गया है तथा मन माने धर्म को ही अपना धर्म मान लिया है। इन्द्रियों की वासनाओं में रत रहने वाले अज्ञानी जीव दुनिया में अनेक प्रकार के आडम्बर द्वारा बनावटी साधु या साध्वी वेश धारण कर अपने उदर निर्वाह के लिये अनेक यन्त्र मंत्र इत्यादि के प्रलोभी धर्म के मर्म को न जानने वाले भोले भाले माता बहनों कृत्रिम आचारण प्रलोभ दिखलाकर मिथ्यात्व या पाप का प्रचार करने वाले पा

आज कल इस भारत के सारे देशों में मिथ्या विश्वास फैलाये हुए हैं।

आज कल की अनेक माताओं के अन्दर एक भ्रम फैला हुआ है बात २ में कुछ थोड़ा भी शारिरीक या मानसिक वेदना हो जाय तो तुरन्त उनको भूत प्रेत की शंका हो जाती है।

हमारी माताओं और बहिनों के अन्दर इस तरह रोग क्यों होता है और मानसिक व्यथा क्यों बढ़ती जा रही है? इसका मुख्य कारण एक आलस्य ही है। पहले जमाने में स्त्रियाँ निकम्मी नहीं बैठती थी। घर के काम काज यानी चक्की पीसना, धान कूटना, रसोई बनाना, पानी भरना, अपने हाथ से घरके काम करना तथा सारे कपड़े धोना, खान पान भी भूख लगने पर करना, यद्वा तद्वा अभक्ष्य पदार्थ का खान पान त्याग करना इत्यादि नियमित काम होने के कारण उनको बाकी लोकरंजन बातों में कान देने की फुरसत नहीं मिलती थी। इसलिये उनका शारीरिक व्यायाम होने के कारण शारीरिक सम्पति उनकी हमेशा मजबूत बनी रहती थी और उनको मिथ्या भ्रम भी नहीं होता था।

आज कल की महिलाओं में आधुनिक बिगड़ी हुई भारत की गन्दी शिक्षा तथा गन्दे संस्कार के छाप पड़ जाने के कारण पुरानी शुद्ध संस्कृति बिलकुल नष्ट हो गई, खान पीन की मर्यादा नहीं रही और आचार विचार तथा इन्द्रिय दमन का, संयम का अभ्यास न रहा शारीरिक व्यायाम न होने के कारण खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता है तथा निकम्मा बैठने से व कुटुम्ब का खर्चा

बढ़ जाने के कारण दिमाग में एक प्रकार का भ्रम रोग या मान-सिक चिन्ताएं मन के भीतर पैदा होती रहती हैं। इस भ्र से इनके मां बाप या अज्ञानी अन्धविश्वासी लोक मिथ्या विश्वा से भूत प्रेत की कल्पना करके हजारों देवियों या मिथ्या देवों उपासना के लिये रात दिन दौड़ते रहते हैं।

भूत प्रेत की योनि तो है ? भूत प्रेत नहीं है ऐसा नहीं परन्तु प्रत्येक मनुष्य के अन्दर या महिलाओं के शरीर में प्रवि करते हैं यह मानना हमारा भ्रम है। परन्तु नर नारी तो बा बात में भूत प्रेत की अशंका करते हैं, सो ठीक नहीं है। हिस्टे रिया की बीमारी हुई तो भूत प्रेत ने आ सताया, मृगी या उन्मा हो गया। न मालूम क्या २ वहम भर जाता है। इसीलिये ठ और धूर्त लोग झाड़ फूँक टोना जादू जंत्र और मंत्र तंत्र के ना पर नाना प्रकार से लोगों को ठगते हैं। पीरपूजा, कब्रपूज ताजियों के नीचे से बच्चों को निकालना; गाजी मियां की मनौ आदि पाखण्ड इसी वहम के आधार पर चल रहे हैं। इस मिथ्य विश्वास को हटाने के लिये समाज में समझदार लोगों का हो जरूरी है।

इसलिये हमारे आर्य भारत बालक बालिकाओं को उन्नतशी बनाने के लिये इस कुसंस्करों से बचाना बहुत आवश्यकता है हमने अब तक बालक और बालिकाओं के गर्भाधान से लेक ब्रह्मचर्य तक बुरे संस्कारों से बचाने के बारे में जो विवेच किया। उस विवेचन को लक्ष पूर्वक पढ़कर अगर अपने बाल बालिकाओं को इसके अनुसार संस्कार डालने का प्रयत्न करें तो उनकी सन्तान संपूर्ण विद्या की कलाओं में प्रवीन होकर

पर लोकमें अपना और माता पिता का उद्धार तथा देश का उद्धार जरूर करेंगे।

भगवान महावीर अब आगे चलकर विवाह सम्बन्धी क्रिया का वर्णन करते हैं —

भगवान महावीर के शासन में यह प्रथा चली आई है कि जो गृहस्थाश्रम ठीक प्रकार से चलता रहे वह प्रसिद्ध जैनत्व गुण ऐसे पुरुषों में कष्ट रहित होकर अनुराग करने वाला और जीवन पर्यन्त प्रसिद्ध जैनत्व गुण वाले के अग्र भाग में शोभायमान होने वाला गृहस्थ मद रहित होता हुआ ऐश्वर्य आदि के द्वारा सन्तुष्ट होकर तीनों लोकों के मोक्षपति का तिलक बन जाता है।

निस्तारकोत्तमायाथ मध्यमाय सधर्मणे।
कन्याभूहेमहस्त्यश्च-रथरत्नादि निर्वपेत् ॥५६॥

जिनकी क्रिया मंत्र व्रतादिक अपने समान हैं उनको साधर्मी कहते हैं। उनमें से जो प्रधान हैं उनको कन्या और उसके साथ दिये जाने वाले दहेज में भूमि, सोना, हाथी, घोड़े देने चाहिये। यदि उत्तम पात्र न मिल सकता हो तो उक्त गुण विशिष्ट मध्यम के लिये उक्त चीजें अर्पण करनी चाहिये। यहाँ अथ शब्द पक्षान्तर सूचक व अधिकार वाचक है। उसका अर्थ यह है कि गृहस्थ अधिक गुणी हो तो भी मुनि की अपेक्षा वह मध्यम है। इससे यहां यह अर्थ निकलता है नामतः स्थापनातो पि इत्यादि जो वर्णन किया गया है वह अधन्य समदत्ति है। यह कन्यादादिक मध्यम समदत्ति है।

कन्या और कन्या के योग्य वर—

निर्दोषांसुनिमित्तसूचित शिवां कन्यां बराहैगु णैः ।
स्फूर्जन्तं परिणाय धर्म्यविधिना यः सत्करोत्यन्जसा ॥५७॥
दम्पत्योः स तयोस्त्रिवर्गघटनात्त्रैवर्गिकेष्वग्रणी ।
भूत्वा सत्समयास्तमोहमहिमा कार्ये परे च्यूजीति ॥५८॥

(निर्दोषां) इस पद का प्रकरणवश सामुद्रिक शास्त्र में अतिमोदि दोषों से रहित यह अर्थ है। (सुनिमितसूचितशिवां) इस पद क सामुद्रिक ज्योतिष दूत आदि निमित्तों से अर्थात् भविष्यतकालीन अवस्था के सूचक कारणों से दर्शाया है वर आदि को कल्याण जिसने ऐसी कन्या के यह अर्थ है। कुल, शील, सनाथपन बिद्या, धन, सौरूप्य, योग्यपथ और अर्थित्व इन गुणों से युक्त वलको धर्मविधि से विवाह कर श्रद्धा में तत्पर होकर जो अपने साधर्मी का सत्कार करता है वह सत्समागम से चारित्र मोह को मन्द करके वरवधू को धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ का दाता होने से उसके फलस्वरूप गृहस्थों में श्रेष्ठ होकर ईह और परलोक साधन के समर्थ होता है। (परे पि) शब्द में अपि शब्द आया है उससे इहलोक का भी ग्रहण होता है। (सत्समयास्तमोहमहिमा) यहां सत्समय शब्द के दो अर्थ ग्रहण किये हैं—एक जिनशासन, दूसरा सत्संगति। अतः आर्षपद्धति से विवाह करने के कारण मंद किया है, चारित्रमोह कर्म जिसने ऐसा अर्थ होकर अथवा सत्संगति मंद किया है चारित्रमोह की महिमा को जिसने ऐसा अर्थ होकर यहां दो अर्थ लगाने चाहिये। धर्म्यविवाह, आर्ष, प्राजापत्य, ब्राह्म, देव के भेद से ४ प्रकार के हैं। जब आर्ष विवाह की पद्धति नीचे के पथ में बताई है।

साधर्मी सत्कन्या से लाभ—

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः ।
गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुड्यकटसंहतिम् ॥५६॥

तप के स्थान को आश्रम कहते हैं। घर रूपी तपस्थान को गृहस्थाश्रम कहते हैं। धर्म, अर्थ और काम का मूल स्त्री है। इस लिये जिसने साधर्मी को कन्यादान किया उसने उसे गृहाश्रम दिया। कारण कुलपत्नी का नाम घर है। दीवालें छप्पर आदि का नाम असली घर नहीं है। योग्य स्त्री के कारण स्वदार संतोषादि संयम पलते हैं, देव पूजा बनती है, सत्पात्र को दान देते बनता है। ये तीन प्रकार के धर्म गृहस्थ को योग्य स्त्री के कारण बनते हैं। इसलिये धर्म पुरुपार्थ की सिद्धि होती है। योग्य स्त्री के कारण वेश्यादि व्यसनों से व्यावृत्ति होती है। अतः धन की रक्षा होती है। अथवा स्त्री के कारण एक प्रकार आकुलता का अभाव होता है। इसलिये गृहस्थ निराकुल होकर धन कमाता है, बढ़ता है। इस तरह अपने दैवानुसार सुवर्णादि संपत्ति का अधिकारी होता है, और संकल्प रमणीय पतिसंभोग से शोभा वाली जो हानि अभिवापक है उसी को काम कहते हैं। इन तीनों से सहित कन्या को देने वालों ने गृहस्थाश्रम दिया यह सिद्ध होता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाले को आर्ष विवाह करना ही योग्य है।

धर्मसन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्तकुलोन्नतिम् ।
देवादिसत्कृतिं चेच्छन्सत्कन्यां यत्नतो वहेत् ॥६०॥

धर्म, संतान, निर्विघ्न भोगविलास आचार और कुल की उन्नति तथा देव द्विज, अतिथि और बांधवों का सत्कार, विना स्त्री के नहीं बनता। इसलिए इन बातों के चाहने वालों को समीचीन कन्या व सज्जनों की कन्या के साथ विवाह करना चाहिये। धर्म की सन्तति अथवा धर्म पुत्र परस्पर ये दो अर्थ धर्म संतति शब्द के हैं। कारण सतान पैदा न होगी तो धर्म को कौन पालेगा ? अतः धर्म विवाह करना चाहिए। अथवा वंश परम्परा चलाने के लिए विवाह की जरूरत है। अतः कामवासना की पूर्ति धर्माविरुद्ध चाहने तथा योग्य अतिथिसत्कारादि चाहने वालों को आचारकुल की वृद्धि चाहने वालों को कन्या से विवाह करना चाहिये।

कन्या सुशील हो तो उससे होने वाली सतान भी सुशील और गुणवान होती है। पहले कन्या को सुशिक्षण मिलने के कारण सुशील तथा लज्जावती होती थी। आज कल कुशिक्षण से कन्या निर्लज्ज बन कर कुशील होती हैं। इसलिये उससे होने वाली संतान भी माता के समान ही आचार विचार वाली देखने में आती है।

विवाह—

व्रतावरण क्रिया समाप्त होने के पीछे पिता की आज्ञानुसार विवाह के योग्य कुल में जन्मी हुई कन्या का विवाह कर स्वीकार करने वाले को वैवाहिक क्रिया कहीं है। उसकी विधि यह है कि प्रथम ही सिद्धाचीन विधि अर्थात् विधिपूर्वक सिद्ध परमेष्ठी की आराधना अच्छी तरह करे। पीछे गार्हपत्य दाक्षिणाग्नि और

आवहनीय ऐसी तीन अग्नियों की स्थापना कर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और विवाह की समस्त क्रियाएँ इन अग्नियों के समक्ष ही करे (जो वेदी तीन कटनी की बनाई जाती हैं उनमें से प्रथम द्वितीय तृतीय कटनोंगत अग्नि की स्थापना इन तीन अग्नियों से कही जाती है) किसी-किसी पवित्र प्रदेश में सिद्ध प्रतिमा के सन्मुख अथवा सिद्धप्रतिमा न होने पर सिद्ध यंत्र के सन्मुख उन दोनों वर कन्या के पाणिग्रहण उत्सव बड़े ठाठबाठ से करे। वधू और वर दोनों ही वेदी पर सिद्ध की गई तीन दो अथवा एक अग्नि की प्रदाक्षिणा दे और फिर बदलकर बैठ जाय अर्थात् वर के आसन पर वधु और वधू के आसन पर वर बैठे। जिनको पाणिग्रहण दीक्षा दे दो गई है। अर्थात् जिनकी विवाह-विधि समाप्त हो गई है ऐसे वे दोनों ही वर वधू देव और अग्नि के समक्ष सात दिन तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करें। तदनन्तर उनके विहार करने योग्य किसी भूमि का (किसी देश वा नगर का) देशाटन कराकर तथा किसी तीर्थ स्थान के दर्शन करा कर उन दोनों वर वधुओं को बड़ी विभूति के साथ घर में प्रवेश करावें। घर जाकर वे दोनों ही अपना कंकण छोड़े और भोगोपभोग सामग्री से शोभायमान ऐसे घर में अपनी शय्या पर शयन करें।

ससुराल जाते समय माता पिता का योग्य उपदेश—

शुश्रूषस्व गुरून् करू प्रिय सखी वृत्तिं सपत्नीजने।
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः॥
भूयिष्टं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी।
यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

अपनी सुसराल में जाकर अपने पतिदेव, सास सुसर आदि बड़ों की सेवा श्रद्धापूर्वक करना, पतिदेव एवं सभी कुटुम्बियों के साथ सरल एवं मधुर वाणी बोलना, कड़वी वाणी बोलकर किसी के हृदय को भूल कर भी न दुःखाना, यदि पतिदेव के द्वारा कभी तिरस्कार हो जाय, तो क्रोध के वशीभूत होकर उनके प्रतिकूल आचरण कदापि न करना, दास-दासी नौकर चाकरों के साथ सदा दया का भाव बनाये रखना तथा अत्याधिक भोग सामग्री प्राप्त होने पर अभिमान से फूल न जाना। उपरोक्त आचरण करने से ही युवतियां सम्मान सूचक गृहिणी पद को प्राप्त करके प्रतिष्ठित होती है।

आज कल का बुरा रिवाज—

आज कल की परिपाटी के अनुसार जात पात का कोई ख्याल नहीं करते हैं। पैसे और फैशन के भूखे आज कल लोग यह चाहते हैं कि लड़की को सुख मिले लड़का चाहे जात का हो या गैर जात का, पर बी० ए० या एम० ए० पास अवश्य हो। खान पान और आचार विचार का कोई ठिकाना नहीं है। प्राचीनकाल में पंच साक्षी, गुरू साक्षी, देव साक्षी, अग्नि साक्षी पूर्वक विवाह होता था और उस समय पति पत्नी आपस में यह प्रतिज्ञा करते थे कि आपके अतिरिक्त किसी पर पुरुष के ऊपर नजर उठाकर भी नही देख सकती। मेरा शरीर आपके चरणों में समर्पित हो चुका है अतः मैं मन वचन काय से सर्वथा आपकी अनुगामिनी हूँ और धर्म अर्थ तथा काम तीनों पुरुषार्थों में सदा साथ रहूँगी। पुरुष यह प्रतिज्ञा करते थे कि मैं देव गुरू साक्षी पूर्वक स्वीकार की हुई अपनी धर्म पत्नी के अतिरिक्त किसी भी पर स्त्री पर

कुदृष्टि नहीं डालूंगा धर्म पत्नी के सिवाय सभी स्त्रियां मेरी माता और बहिन के समान होंगी। इस प्रकार दोनों दम्पत्ति परस्पर में प्रतिज्ञा करके प्रेम भाव से धर्म पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करके जब वर वधू वापिस आते थे तो पहले देव गुरु शास्त्र का दर्शन किसी मन्दिर या तीर्थस्थान में जाकर करते थे तत्पश्चात् अपने गृहस्था-श्रम में प्रविष्ट होते थे। किन्तु आज कल पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से अधिकांश में नव युवक अपनी नव वधुओं को धर्म स्थान के विपरीत सिनेमा व थीयेटर गृहों में जाकर मनोरंजन करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझते है। चित्र पट गृहों के गंदे गाने सुनने तथा बुरे चित्रों को देखने से जो कुसंस्कार पड़ जाता है उससे होने वाली संतान भी सदाचार व धर्म कर्म से शून्य होकर स्वच्छाचारिणी होती है। अभद्र चित्रों के देखने से अधिकतर दोनों के मन में विकार उत्पन्न हो जाने के कारण पति पत्नी भी कुमार्गगामी हो जाते हैं। जो घर धर्मसाधन के लिए मुख्य माना गया है वहाँ दम्पतियों का कलह अहरनिश हुआ करता है परस्पर में मेल न होनेके कारण स्त्री अपने विवाहित पति तथा पुरुष अपनी विवाहित पत्नी को छोड़ने में तैयार देखे जाते है। दूसरे आज की सरकार जो कोड बिल पास करने के लिए तत्पर है, फिर किस प्रकार से पति पत्नि में प्रेम तथा धर्म कर्म स्थिर रह सकता है ? कदापि नहीं।

किन्तु महावीर स्वामी ने संसारिक जीवों को सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये उपदेश दिया है कि हे जीवों तुम इन बुरी आदतों को छोड़कर हमारे कहे हुए वचनों का पालन करो।

श्रावक श्रेणी में प्रवेश—

भगवान महावीर के अनुसार आर्य भूमि के आर्य मानव के लिए श्रावक श्रेणी में प्रवेश करने की प्रारम्भिक श्रेणी को बतलाते है। सोलह संस्कार उपनय संस्कार, तथा विवाह संस्कार होने के बाद गृहस्थ घर में रहता हुआ परम्परा मोक्ष रूपी सर्वोत्तम पुरुषार्थ की सिद्धि प्राप्त करने योग्य अपने अन्तरंग से चाहता हुआ धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ को पालन करना चाहिये। धर्म अर्थ, और काम पुरुषार्थ सेवन करे बिना मोक्ष पुरुषार्थ बन नहीं सकता क्योंकि मोक्ष की सिद्धि साक्षात् मुनि लिंग धारण करने पर ही हो सकती है, अर्थात् दिगम्बर मुद्रा धारण किए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जैन सिद्धान्त में हिंसा दो प्रकार की बताई गई है।

(१) सकंल्पी हिंसा (२) आरम्भी हिंसा।

(१) संकल्पी हिंसा :—जो हिंसा के सकल्प या अभिप्राय से हिंसा की जावे। वह बिना प्रयोजन होती है और गृहस्थी हर्ष पूर्वक उसका त्याग कर देता है जो हिंसा धर्म के नाम से पशुवध करने में होती है, शिकार खेलने में होती है, मांसाहार के लिए व चमड़े के लिए कराई जाती है वह सब संकल्पी हिंसा है। उसका विशेष वर्णन आगे करेंगे।

(२) आरम्भी हिंसा :—जो गृहस्थी को लाचार होकर जरूरी कामो के लिए करनी पड़ती है। इसका त्याग गृहस्थी नहीं कर सकता है। तो भी बिना प्रयोजन आरम्भ से बचने की चेष्टा करता है। गृहस्थी उसेही कहते हैं जो घर में पत्नी सहित वास करे उसकी सन्तानें हो जो धर्म अर्थ काम तीन पुरुषार्थों का साधन

मोक्ष पुरुषार्थ के ध्येय को सामने रखकर करे। आत्मा कर्म के बन्धनों से छूटकर मुक्त हो जावे। यह ऊँचा उद्देश्य सामने रख कर गृहस्थी को अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। गृहस्थी को व्यवहार धर्म जैसे पूजा, पाठ, जप, तप, दान, धर्म स्थान निर्माण आदि काम करने ही पड़ते हैं। वह साधुओं को दान देता है तब साधु मोक्ष का मार्ग साधन कर सकते हैं। घर में मन क्षोभित होता है, इसलिए धर्म सेवन के लिए निराकुल स्थान बनाता है। मन को जोड़ने ने लिए जल, चन्दन, अक्षतादि द्रव्यों को लेकर पूजन व भक्ति करता है। इस तरह व्यवहार धर्म के पालन में कुछ थोड़ा या बहुत आरम्भ करना ही पड़ता है, जिससे क्षुद्र प्राणियों की हिंसा होना सम्भव है। अथ परुषार्थ में गृहस्थी का धन कमाना पड़ता है। धन कमाने के लिए उसको न्यायपूर्वक उद्योग (धन्धा) करना पड़ता है। यह जगत विचित्र है। सज्जन और दुर्जन् दोनों से भरा है। दुर्जनों से रक्षा करते हुए जीवन बिताना है, इसी लिए आजीविका के साधन जैन सिद्धान्त में छः प्रकार के बताए हैं—

(१) असिकर्म—शस्त्र धारकर सिपाही का काम करना। पुलिस की जरूरत रोज चोर व डाकुओं से बचने के लिये है। सैना की जरूरत भूमि के लोभी राजाओं के हमले से बचाने के लिए है। शस्त्रों से कष्ट पाने का भय मानवों को दुष्ट कर्म से रोक देता है। अपने प्राणों की रक्षा सब चाहते हैं। यदि असि कर्म को उठा दिया जावे तो जगत की दुष्टों से रक्षा न हो। तब कोई आराम से रहकर गृहस्थ व साधु धर्म का पालन नहीं कर सकते। असिकर्म में दृष्टि रक्षा की तरफ है, हिंसा करने की तरफ नहीं

है। रक्षा में बाधक की हिंसा करनी पड़ती है।

(२) मसिकर्म—हिसाब किताब बही खाता लिखने का क
लेनदेन में व्यापार में लिखा पढ़ी की जरूरत पड़ती है। प
पत्र भेजने पड़ते हैं। इस काम में भी कुछ आरम्भी हिंसा
सम्भव है।

(३) कृषि कर्म—खेती का काम—इसकी तो प्रजा को ब
बड़ी जरूरत है। अन्न फल, शाक की उत्पत्ति के बिना उदर भ
नहीं हो सकता है। खेती के लिए भूमि हल से नर्म की जाती
पानी से सींची जाती है, बीज बोया जाता है, अन्नादि का
एकत्र किया जाता है। खेती की रक्षा की जाती है, खेती के
में थोड़ी या बहुत आरम्भी हिंसा करनी पड़ती है।

(४) वाणिज्य कर्म—व्यापार की भी जरूरत है। भिन्न
स्थानों में भिन्न २ वस्तुएँ पैदा होती हैं व बनती हैं कच्ची वस्तु
से पक्की तैयार करानी पड़ती हैं। जैसे रुई से कपड़ा। वस्तु
को कहीं से इकट्ठा करके व पक्का माल तैयार करके स्व
में व परदेश में विक्रय करना व माल का खरीदना व्या
है। व्यापार में वाहन पर ढोते हुए, उठाते धरते हुए आर
हिंसा होना सम्भव है।

(५) शिल्प कर्म—कारीगरी के काम की जरूरत है।
मकान बनाते हैं, लुहार लोहे के बर्तन व शस्त्र बनाते हैं, सु
गहने गढ़ते हैं, जुलाहे कपड़ा बुनते हैं, बढ़ई लकड़ी की
बनाते हैं, नाना प्रकार की वस्तुएँ गृहस्थी को चाहियें।
कुर्सी, मेज, कागज कलम वस्त्र, बर्तन परदे, चटाई, बिछौनें

इन सबको बनाने का काम करते हुए थोड़ी या बहुत आरम्भी हिंसा होनी सम्भव है।

(६) विद्या कर्म—गृहस्थियों के मन बदलाने के लिये कला चतुराई के काम भी होते हैं। जैसे गाना, बजाना, नाचना, चित्रकारी आदि। कुछ लोग इसी प्रकार की कलाओं से आजीविका करते हैं। इस कर्म में भी थोड़ी या बहुत आरम्भी हिंसा लाचार होकर करनी पड़ती है वह सब आरम्भी हिंसा है। जो आदमी इन छः प्रकार के काम करने वालों की सहायता करते हैं वे सेवा का काम करते हैं। सेवा से भी पैसा कमाया जाता है। सेवकों को भी उन आरम्भी हिंसा में अपने को लगाना पड़ता है। काम पुरुषार्थ में—गृहस्थियों को भोजनपान आराम व न्यायपूर्वक विषय सेवन करना पड़ता है। योग्य संतान को जन्म देना पड़ता है। उसे स्त्री व पुरुषरत्न बनाकर उत्तम जीवन बिताने योग्य करना पड़ता है। इन कार्यों के लिए भी कुछ आरम्भी हिंसा करनी पड़ती है।

धनसम्पत्ति व भोगोपभोग की रक्षा करना भी जरूरी है। दुष्टों से व लुटेरों से व शत्रुओं से धन माल राज्य की रक्षा करने में पहले तो ऐसे अहिंसामय उपाय काम में लेने चाहिये जिससे अपनी रक्षा हो जावे व दूसरे का घात न करना पड़े। यदि कोई उपाय अहिंसामय न चल सके तो गृहस्थ को शस्त्र का उपयोग करके रक्षा करनी पड़ती है, उसमें भी हिंसा होती है परन्तु प्रयोजन अपनी २ सम्पत्ति की रक्षा है, उसकी हिंसा करनी नहीं हैं। जब वह विरोध को बंद कर दे तो यह तुर्त प्रीति कर ले। इस तरह आरम्भी हिंसा के तीन भेद हो जाते हैं।

विरोधी हिंस —

यह विरोधी हिंसा अपने धर्म पर या अपने कुटुम्ब पर
शत्रु अन्याय पूर्वक या अत्याचार पूर्वक आकर लूटमार करके
पर अत्याचार करता है, तब राजा उस समय साम दाम के
उनको रोकने की चेष्टा करता है। कदाचित यदि
शत्रु नहीं माने तो राजा अपनी प्रजा के ऊपर वा धर्म के
आयी हुई आपत्ति को दूर करने के लिए शस्त्र द्वारा प्रति
करने के लिए युद्ध करता है। राजा संकल्पी हिंसा कभी भी न
करता है। निःस्वार्थ बुद्धि से अपनी प्रजा की पुत्र वत्सल पू
रक्षा करता है। जैसे राजा को राजकुमार के प्रति लाड
रहता है और अपने राज महल में राजकुमार स्वतन्त्रता पू
खाया पीया करता हैं। राजा को कभी उस पर
नही आता है, प्रेम करता है और हमेशा पुत्र के बलशा
बनाने की चेष्टा करता है, लेकिन राजा डाट इत्यादि के द्वा
उसे हमेशा भय दिखलाता रहता है। उसी प्रकार प्रजा के प्रति
राजा अपने पुत्रवत् प्रजा पालन तथा प्रजा उन्मत्त या
माग में विचरने न देकर उन्हें भी ताडन दण्ड इत्यादि शिक्षा
के द्वारा उन्मार्ग से बचाकर उस प्रजा को न्यायमार्ग पर लगा
की हमेशा चेष्टा करता है, धर्म वृद्धि के प्रति प्रजा को नी
मार्ग की शिक्षण देता है और धर्म कोक राता है। प्रजा
योग्य शस्त्र और धर्म शास्त्र, नीति शास्त्र अनेक कलाओं
सिखाने में राजा दत्त चित्त रहता है और प्रजा को बलशाली त
शूरवीर बनाने की चेष्टा करता है।

अगर राजा ही धर्म भ्रष्ट,नीति भ्रष्ट, आचार भ्रष्ट, दुराचार इत्यादि या पाप की वृद्धि करने वाला होगा तब प्रजा भी उन्ही का अनुकरण करती है।

राजा के पांच यंत्र होते हैं—

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च सम्प्रवृद्धि।
अपक्षापातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पन्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्॥

दुष्टों को दण्ड देना, सज्जनों की पूजा सत्कार और रक्षा करना, न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना तथा निष्पक्षपात भाव से धन और राष्ट्र की रक्षा करना ये पांच प्रकार के यँत्र राजा के लिये कहे गये हैं।

राजा हमेशा धर्मात्मा व सदाचारी होना चाहिये—

धर्म शीलः सदा न्यायी पात्रे त्यागी गुणादरः।
प्रजानुराग संपन्नश्चिरं नदति राह क्षिती॥

राजा धर्म शील, सदाचारी, न्यायी, सत्पात्र में अनुरागी अर्थात् दाता,त्यागी तथा सज्जनों में विनम्रता, व्यवहार गुणग्रही प्रजा वत्सलता इत्यादि भावनाओं से प्रजा तथा राज्य चिरकाल तक आनन्दपूर्वक अर्थात सुख पूर्वक चलता रहता है।

इस मर्यादा की रक्षा करने के लिए राजा को युद्ध करना पड़ता है। अगर राजा अपने धर्म की, प्रजा की, राष्ट्र की, न्याय की रक्षा के लिए शत्रु का विरोध करने के लिए युद्ध नहीं करेगा तो राज्य और राष्ट्र नष्ट होगा और धर्मकी अवनति होगी पापाचार फैल जायगा और राज्य शासन नष्ट होगा। इसलिए राजा को विरोधी हिंसा में पाप का बंध कम होता है।

मर्यादा रक्षा के लिए युद्ध की आवश्यकता पड़ती थी—

भारत की वीर क्षत्राणियाँ प्राचीन काल में अपनी सन्तान को इसी प्रकार धर्म युद्ध के लिए प्रेरित किया करती थी।

मार्कंडेय पुराण की कथा—

माता विदुला ने अपने पुत्र संजय को कुन्ती देवी के पांडवों को इसी प्रकार उनके क्षात्रोचित कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरणा की थी। तभी ऐसे वीर पुरुष के निर्माण तथा धर्म की रक्षा होती थी। इसलिए भारत की शोभा अर्थात् इज्जत थी। जब वीर रमणीय का अभाव तथा धर्म युद्ध का पुत्रों के प्रति उपदेश तथा आदेश देना ही बन्द हुआ और वीर महिला का भी अभाव और वीर बालक और बालिकाओं का भी अभाव हुआ तब भारत गारत हो गया।

जब से धार्मिक परिपाटी भारत से उठ गई है तब से दुष्ट पापी अधर्मीयों के द्वारा किए जाने वाले पाप अपने तथा अपनी संतानों पर किये गये अत्याचारों का बदला लेने की शक्ति नहीं रही। एक सीता सती की शील रक्षा करने के लिये अर्थात् राक्षस रूपी रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिये मर्यादा पुरूषोत्तम लक्षमण ने सम्पूर्ण राक्षस कुल संहार कर डाला तथा एक द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए पांडवों ने कौरव वंश का उच्छेद कर दिया। परन्तु आज हमारी आंखों के सामने न जाने कितनी अबलाओं पर दुष्टों द्वारा अत्याचार एवं बलात्कार किये जाते है, न जाने हमारी कितनी माता बहिनें आज विधर्मियों के चंगुल में पड़ी हुई अपने भाग्य को कोस रही है न जाने कितने

वृद्ध एवं बालकोंको निर्दयता पूर्वक काटे जाने की बातें हम सुनते हैं। परन्तु हमारे कानो पर जूं भी नहीं रेंगती. हमारे खून में जरा भी गरमाहट नहीं जाती। मानो कुछ हुआ ही नहीं।

आजकल के राज्य से प्रजा निराश्रित है। क्योंकि कहा भी है कि:—

राज्यं निःसचिवं गतप्रहरणं सैन्यंविनेत्रं मुखम्।
वर्षा निर्जलदा धनी च कृपणो भोज्यं यथाऽऽज्य बिना ॥
दुःशीला गृहिणि सुहृन्निकृतिमान् राजा प्रतापोज्झितः।
शिष्यो भक्तिविवर्जितो नहि विना धर्मं नरः शस्यते ॥

मंत्री रहित राज्य, न प्रहार करने वाली सेना, नेत्रों के विना मुख, बादल रहित वर्षाकाल, धनवान कंजूस, भोजन घी के विना बुरे शील वाली गृहिणी, अपमान करने वाला मित्र, प्रताप रहित राजा, भक्ति रहित शिष्य, धर्म रहित शिष्य, धर्म रहित मनुष्य, ये शोभा नहीं पाते हैं।

राजा का लक्षण :—

यस्तेस्वी यशस्वी शरणगतजनत्राणकर्मं प्रवीणः।
शास्ता शश्वत् खलानां क्षतरिपुनिवहः पालकश्च प्रजानाम् ॥
दाता भोक्ता विवेकी नयपथपथिकः सुपांतेज्ञः कृतज्ञ।
प्राज्यं राजा स राज्यं प्रथयति पृथिवी मण्डले खण्डिताज्ञः ॥

जो तेजस्वी हो, यशस्वी हो, शरणागतजनों की रक्षा करने में प्रवीण हो, शत्रुओं का दमन करने वाला हो, प्रचा का पालक हो,

दान देने वाला हो, भोग भोगने वाला हो, ज्ञान वाला हो, नीति मार्ग पर चलने वाला हो, दृढ़ प्रतिज्ञा वाला हो, किये हुए की कदर करने वाला हो, वह राजा अखण्डित आज्ञा वाला होकर इस पृथ्वी मण्डल पर अपने बड़े राज्य को विख्यात करता है।

प्रजा के प्रति राजा का कर्तव्य कर्म—

जिस प्रकार ग्वाला आलस्य रहित होकर बड़े प्रयत्न से अपनी गायों की रक्षा करता है उसी प्रकार राजा को बड़े प्रयत्न से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। अर्थात यदि अपनी गायों के समूह में से कोई गाय अपराध करती है तो वह ग्वाला उसका अंग छेदन कठोर दण्ड नहीं देता हुआ अनुरूप दण्ड से नियन्त्रण कर जिस प्रकार उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। यह निश्चय है कि कठोर दण्ड देने वाला राजा अपनी प्रजा को अधिक उद्विग्न कर देता है इसलिए प्रजा ऐसे राजा को छोड़ देती है। मंत्री आदि ऐसे राजा से विरक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार ग्वाला अपनी गायों के समूह में से मुख्य पशुओं के समूह की रक्षा करता हुआ पुष्ट अर्थात् सम्पतिशाली होता है क्योंकि गाय की रक्षा करके ही यह मनुष्य विशाल गौ धन का स्वामी हो सकता है। उसी प्रकार राजा भी अपने मनुष्य वर्ग की मुख्य रूप रक्षा करता हुआ अपने और दूसरे राज्य में पुष्टि को प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ राजा अपने २ मुख्य बल से पुष्ट होता है वह इस समुद्रांत पृथ्वी के विना किसी यत्न के जीत लेता है। यदि कदाचित प्रमाद से किसी गाय का पैर टूट जाय तो

ग्वाला बाँधना आदि उपाय से उस पैर को जोड़ता है, गाय को बाँध कर रखता है। बँधी हुई गाय के लिए घास देता है और उसके पैर को मजबूत करने के लिए प्रयत्न करता है। इसी प्रकार उन पशुओं पर अन्य उपद्रव आने पर भी वह शीघ्र ही उनका प्रतिकार करता है। जिस प्रकार अपने आश्रित गायों की रक्षा करने के लिए ग्वाला प्रयत्न करता है उसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह अपनी सेना में घायल हुए योद्धा को उत्तम वैद्य से औषधि रूप सम्पदा दिला कर उसकी विपत्तिका प्रतिकार करे अर्थात् उसकी रक्षा करे। वह वीर जब अच्छा हो जावे तो राजा को उसकी उत्तम अजीविका कर देने का विचार करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से भृत्यवर्ग को सदा आनन्द प्राप्त होता रहता है। कदाचित् किसी गाय को कोई कीड़ा काट लेता है तो जिस प्रकार ग्वालिया योग्य औषधि देकर उसका प्रतिकार करता है उसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह अपने सेवक को दरिद्र अथवा खेदखिन्न जानकर उसके चित्त को संतुष्ट करे। क्योंकि जिस सेवक को उचित आजीविका प्राप्त नहीं है वह अपने स्वामी के इस प्रकार के अपमान से विरक्त हो जायगा इसलिए राजा को चाहिये कि वह कभी अपने सेवक को विरक्त न करे। सेवक की दरिद्रता को घाव के स्थान में कीड़े उत्पन्न होने के समान जानकर राजा को शीघ्र ही उसका प्रतिकार करना चाहिये। सेवकों को अपने स्वामी से उचित सन्मान पाकर जैसा संतोष होता है वैसा संतोष बहुत धन देने पर भी नहीं होता है। जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओं के झुण्ड में किसी बूढ़े बैल को अधिक भार धारण करने में समर्थ जान

कर उसके शरीर की पुष्टि के लिए नस्य कर्म आदि करता है अर्थात् उसकी नाक में तेल डालता है और उसे खली आदि खिलाता है उसी प्रकार चतुर राजा को भी चाहिये कि वह अपनी सेना में किसी योद्धा को अत्यन्त उत्तम जानकर उसे अच्छी आजीविका देकर सम्मानित करे। जो राजा अपना पराक्रम प्रकट करने वाले वीर पुरुष को उसके योग्य सत्कारों से संतुष्ट रखता है उसके भृत्य उस पर सदा अनुरक्त रहते हैं और कभी भी उसका साथ नहीं छोड़ते हैं। जिस प्रकार ग्वाला अपने पशुओं के समूह को कांटे और पत्थरों से रहित तथा शीत और गरमी आदि की बाधा से शून्य बन में चराता हुआ बड़े प्रयत्न से उनका पोषण करता है उसी प्रकार राजा को भी अपने सेवक लोगों को किसी उपद्रवहीन स्थान में रखकर उनकी रक्षा करनी चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो अन्य राजा लोग उसके सेवकों को पीड़ा देने लगेंगे। राजा को चाहिये कि वह ऐसे चोर डाकू आदि की आजीविका नष्ट कर दे क्योंकि कांटों को दूर करने से ही प्रजा का कल्याण हो सकता है। जिस प्रकार ग्वाला हाल के उत्पन्न हुए बच्चे को एक दिन माता के साथ रखता है दूसरे दिन दयाबुद्धि से मुक्त हो उसके पैर में धीरे से रस्सी बांध कर खूंटी से बाँधता है, उसकी जरायु तथा नाभि के नाल को बड़े यत्न से दूर करता है, कीड़े उत्पन्न होने की शंका होने पर उसका प्रतिकार करता है; और दूध पिलाना आदि उपायों से उसे प्रतिदिन बढ़ाता है। उसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह आजीविका के अर्थ अपनी सेवा करने के लिए आये हुए सेवक को उसके योग्य आदर सम्मान से स्वीकृत करे और जिन्हें स्वी-

कृत कर लिया है तथा जो अपने लिए क्लेश सहन करते हैं ऐसे सेवकों की प्रशस्त आजीविका आदि का विचार कर उनके साथ योग और क्षेम का प्रयोग करना चाहिये अर्थात् जो वस्तु पास नहीं है वह उन्हें देनी चाहिये और जो उनके पास है उसकी रक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार शकुन आदि के निश्चय करने में तत्पर रहने वाला ग्वाला जब पशुओं को खरीदता है उसी प्रकार राजा को भी परीक्षा किये हुए उच्चकुलीन पुत्रों को खरीदना चाहिये। आजीविका के मूल्य से खरीदे हुए उन सेवकों को समयानुसार योग्य कार्य में लगा देना चाहिये क्योंकि वह कार्यरूपी फल सेवकों के द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। जिस प्रकार पशुओं के खरीदने में भी किसी को जामिनदार बनाया जाता है उसी प्रकार सेवकों का संग्रह करने में भी किसी बलवान् पुरुष को जामिनदार बनाना चाहिये। जिस प्रकार ग्वाला रात्रि के प्रहरमात्र शेष रहने पर उठकर जहाँ बहुत सी घास और पानी होता है ऐसे किसी योग्य स्थान में गायों को बड़े प्रयत्न से चराता है तथा बड़े सबेरे ही वापिस लाकर बछड़े के पीने से बाकी बचे हुए दूध को मक्खन आदि प्राप्त करने की इच्छा से दुह लेता है। उसी प्रकार राजा को भी आलस्य रहित होकर अपने आधीन ग्रामों में बीज देना आदि साधनों द्वारा किसानों से खेती करानी चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने समस्त देश में किसानों द्वारा भली भांति खेती करावे और धान्य का संग्रह करने के लिए उनसे न्यायपूर्ण उचित अंश लेवे। ऐसा होने से उसके भँडार आदि में बहुत सी सम्पत्ति इकट्ठी हो जावेगी और उससे उसका बल बढ जायेगा तथा संतुष्ट करने वाले

उन अनाजों से उसका देश भी पुष्ट अथवा समृद्धिशाली हो जावेगा। अपने आश्रित स्थानों में प्रजा को दुःख देने वाले अक्षरम्लेच्छ फिर उपद्रव नहीं करेंगे। यदि राजाओं से उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं होगा तो वे प्रतिदिन कुछ न कुछ उपद्रव करते ही रहेंगे। जो कितने ही अक्षरम्लेच्छ अपने ही देश में संचार करते हों उनसे भी राजा को सामान्य किसानों की तरह कर अवश्य लेना चाहिये। जो वेद पढ़कर अपनी आजीविका करते हैं और अधर्म करने वाले अक्षरों के पाठ से लोगों को ठगा करते हैं उन्हें अक्षरम्लेच्छ कहते हैं। क्योंकि वे अज्ञान के बल से अक्षरों द्वारा उत्पन्न हुए अहंकार को धारण करते हैं इसलिए पाप सूत्रों से आजीविका करने वाले वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते हैं। हिंसा और मांस खाने में प्रेम करना, बल पूर्वक दूसरे का धन हरण करना और धूर्तता करना (स्वेच्छाचार करना) यही मलेच्छों का आचार माना गया है। क्योंकि यह सब आचरण इनमें है और जातिके अभिमान से ये नीच, द्विज, हिंसा आदिको प्ररुपित करने वाले वेद शास्त्र के अर्थ को बहुत कुछ मानते हैं इसलिए इन्हें सामान्य प्रजा के समान ही मानना चाहिये अथवा उससे भी कुछ निकृष्ट मानना चाहिये। इन सब कारणों से इनकी कुछ भी मान्यता नही रह जाती है। जो द्विज अरहन्त भगवान के भक्त हैं वही मान्य गिने जाते हैं। हम ही लोगों को संसार सागर से तारने वाले हैं, हम ही देव ब्राह्मण हैं और हम ही लोक सम्मत हैं अर्थात् सभी लोक हम ही को मानते हैं इसलिए हम राजा को धान्य का उचित अंश नहीं देते इस प्रकार यदि द्विज कहें तो उनसे पूछना चाहिये कि आप लोगों में अन्य वर्णवालों से विशे-

पता क्यों है ? कदाचित यह कहो कि हम जातिकी अपेक्षा विशिष्ट हैं तो आपका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जाति अपेक्षा विशिष्टता अनुभव में नहीं आती हैं, कदाचित यह कहो कि करने वाले हो, जो व्रतों को धारण करने वाले जैन ब्राह्मण हैं वे ही गुणों से अधिक है। आप लोग व्रतरहित, नमस्कार करने के अयोग्य दयाहीन, पशुओं का घात करने वाले और म्लेच्छों के आचरण करने में तत्पर हो इसलिए आप लोग धर्मात्मा द्विज नहीं हो सकते। इन सब कारणों से राजाओं को चाहिये कि वे इन द्विजों को म्लेच्छों के समान समझे और उनसे सामान्य प्रजा की तरह ही धान्य को योग्य अंश ग्रहण करें। अथवा इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है ? जैन धर्म को धारण करने वाले उत्तम द्विजों को छोड़कर प्रजा के समान आजीविका करने वाले अन्य द्विज राजाओं के पूज्य नहीं हैं !

छंदोग्य उपनिषध में भी कहा है—

छन्दोग्य उपनिषद में महाराज अश्वपति की कथा आती है। उनके पास एक बार अरुण के पुत्र उद्दालक के भेजे हुए कुछ मुनि वैश्वानर (आत्म विद्या) सीखने के लिए आये। उनका राजा ने बड़ा सत्कार किया और उन्हें धन की इच्छा से आया हुआ जानकर बहुत सा धन देना चाहा। मुनियों ने, जो कि दूसरे ही प्रयोजन से आये थे, धन लेने से इन्कार किया। इस पर राजा ने सोचा कि मेरे धन को निषद्ध समझकर ये लोग स्वीकार नहीं कर रहे हैं अतः अपने धन की पवित्रता को सिद्ध करने के लिए कहने लगा हे मुनियो ! मेरे राज्य में कोई चोर

दूसरे का धन हरण करने वाला नहीं है, न कोई कदर्य सम्पत्ति रहते हुए दान न करने बाला है, न कोई मद्यपान करने वाला है न अनाहिताग्नि है, न अविद्वान है, न कोई शहरी परस्त्री गमन करने वाला है, न मेरे राज्य में कोई कुलटा स्त्री हो सकती है। हे भारत के आर्य सज्जनों ! आप लोग इस उपदेश के द्वारा थोड़ा विचार करो कि हम राजनीति का वर्णन करते आ रहे हैं, धन्य है उनकी स्त्री, धन्य है उनके आचरण केवल उनका स्मरण मात्र से ही हमारा हृदय गद्गद हो करके पुनित हो जाता है क्या आज कल कोई राजा इस प्रकार दावा कर सकता है। कहा भी है कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यमः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

सब लोग अपने अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए वेदमार्ग पर चलते थे और सुख पाते थे। उन्हें न किसी बात का भय था न रोग ही सताता था। इसी लिये धार्मिक राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिकता किसी को नहीं व्यापते थे। सब मनुष्य परस्पर प्रेम रखते और धर्म शासन में बतलाई नीति के अनुसार अपने धर्म में लगे रहकर उसका आचरण करते थे। धर्म अपने चारों (सत्य, सौच, दया और दान) से जगत में परिपूर्ण हो रहा था। स्वप्न में पाप का नाम नहीं था। पुरुष और स्त्री सभी धर्म साधन में परायण थे और सभी मोक्ष के अधिकारी थे। छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती थी, न किसी को कोई पीड़ा होती थी। सभी के शरीर सुन्दर और निरोग थे। न कोई दरिद्र था, न कोई दुःखी था, न कोई दीन था, न कोई मूर्ख था, न शुभ लक्षणों से हीन था, सभी लोग कपट रहित धर्म

परायण, और पुण्यात्मा थे सभी पुरुष और स्त्री चतुर और गुणवान थे, सभी गुणों का आदर करने वाले पंडित और सभी पुरुष ज्ञानी थे दूसरे के लिए हुए उपकार को मानने वाले थे, सभी कृतज्ञ थे श्री रामचन्द्र, वृषभनाथ भगवान, राजा खारवेल, इत्यादि महान २ पुरुष जब राज्य करते थे तब उसी समय जगत में काल, कर्म और स्वभाव कर्म से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते थे।

परोपकार—

सभी नरनारी उदार, सभी परोपकार और सभी सज्जनों के या अतिथियों के चरणों के सेवक थे। सभी पुरुष एक पत्नी व्रति थे। इसी प्रकार स्त्रियां भी मन, वचन, काय से पति का हित चाहने वाली थी इनके शील के प्रताप से ही या इनके पुण्य प्रताप से जंगलों में वृक्ष सदा फूलते और फलते थे, हाथी सिंह ये सब परस्पर अपने बैर भाव छोड़ देते थे और एक साथ रहते थे। शीतल, मन्द सुगन्धित पवन कौने २ में चलती थी। लताएं और वृक्ष मांगने से मीठे२ फल टपका देते थे, गाय मनों दूध देती थी पृथ्वी सदा धान्य से भरी रहती थी, समुद्र अपनी लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते थे, जिन्हें मनुष्य उठा लिया करते थे। सूर्य भी उतना ही तपता था जितना आवश्यक होता था। मेघ मांगने से जितना ही चाहा उतना ही जल देते थे ये सभी राजनीति और धर्मात्मा राजाओं के प्रताप थे। इसी प्रकार नीचे जैमिनीयश्वेमेध नामक ग्रंथ में कथा आती है कि राजा कितने सदाचारी थे उनकी प्रजा उनके कर्मचारी कितने सदाचारी थे। हे आर्य बन्धुओं! अगर इसकी कथा सुनोगे तो तुम्हारी बुद्धि

ठिकाने पर आ जायेगी, तुम्हारी आत्मा का सुधार हो जायेगा। जब इसकी कथा संक्षेप कहते हैं। जिसमें सुधन्यवा के पिता राजा हंसध्वज के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि उनके राज्य में पुरुष एक पत्नी व्रती थे, तथा देश के सभी नर नारी धर्म परायण थे। राज्य में नौकरी के लिए बाहर से कोई आदमी आता था तब राजा सबसे पहले कह देता था कि—

एक पत्नीव्रतं तात यदि ते विद्यते नघ।
ततस्त्वां धारयिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमिते॥
न शौर्य न कुलीनत्वं न च कापि पराक्रमः।
स्वदाररसिकं वीरं विष्णुभक्ति समन्वितम॥
वासयामि गृहे राष्ट्रे तथान्येऽपि हि सैनिकाः।
अनगंवेग स्वान्ते ये धारयन्ति महाबलाः॥

हे निष्पाप! यदि तुम एक पत्नी व्रत का पालन वाले हो, तो मैं तुम्हें अपने यहाँ रख सकता हूँ। भाई! मैं सत्य कहता हूँ कि निकम्मी शूरता, कुलीनता, और पराक्रम मैं नहीं चाहता। जो वीर केवल अपनी एक ही पत्नी में प्रेम करने वाला है और भगवान की भक्ति से सम्पन्न होगा मैं उसको अपने घर में अथवा राष्ट्र में स्थान दे सकता हूँ। तथा दूसरे भी जो सैनिक कामदेव के प्रबल वेग को धारण कर सकते है, वे ही वास्तव में महाबली सैनिक हैं। (अतः उन्हें ही मैं आश्रय दे सकता हूँ) राजा की सेना में सभी योद्धा, भगवत भक्त, रणवीर, दोनों पर दया करके उन्हें दान देने वाले एक पत्नी व्रती, सम्मान्य और प्रिय बोलने वाले थे—

सर्वे ते वैष्णव वीराः सदा दानपरायणाः ।
एक पत्नीव्रतयुताः समतास्ते प्रियंवदाः ॥

राजा स्वयं पक्के एक पत्नी व्रती थे इसी से वह अपनी प्रजा से भी इस नियम का पालन करा सके ।

श्री रामचन्द्र का एक पत्नी व्रत तो प्रसिद्ध ही है । अश्व मेघ यज्ञ में स्त्री का होना आवश्यक है । परन्तु वहाँ भी उन्होंने भगवती सीता की स्वर्णमई प्रतिमा को पास बिठाकर ही काम निकाला । किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया । इस प्रकार अपने अखण्ड, एक पत्नी व्रत का परिचय दिया ।

जिस प्रकार सन्तान के सुधरने और बिगड़ने की सारी जिम्मेदारी माता पिता के ऊपर होती है, उसी प्रकार प्रजा की भलाई बुराई का सारा भार राजा के ऊपर होता है । कहा भी है कि :—

राजा राक्षस रूपेण व्याघ्ररूपेन मंत्रिणः ।
लोकाश्चित्ररूपेण यः पलाति स जीवति ॥

जहाँ पर राजा राक्षस रूप से है, मंत्री व्याघ्र रूप से है और प्रजा के लोग चित रूप से है, वहां से जो भाग जाता है वही जीवित रहता है । यदि राजा धर्मात्मा सदाचारी एवं न्यायाशील होता है तो प्रजा में भी ये सारे गुण क्रमशः उतर आते हैं । इसके अतिरिक्त यदि राजा दुराचारी, अन्यायी, एवं प्रजापीड़क होता है, तो प्रजा में भी उच्छृंखलता, अनाचार, पापाचार एवं प्रतिहिंसा फैल जाती है, इस प्रकार राजा और प्रजा दोनों ही अधोगति को प्राप्त होते हैं ।

जिस प्रकार पिता को अथवा गुरु को अपने आचरण सम्बन्ध में सदा सतर्क रहना चाहिये उसे कोई ऐसी चेष्टा न करनी चाहिये जिसका प्रभाव उसकी सन्तान पर अथवा शिष्य पर अच्छा न पड़े, जिसके कारण उसकी सन्तान अथवा शिष्य के बिगड़ने का डर हो उसी प्रकार राजा के लिए भी यह आवश्य है कि वह प्रजा को धर्म मार्ग पर चलाने के लिए स्वयं तत्परता साथ त्याग पूर्वक धर्म का आचरण करे। साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा नेताओं, धर्म गुरु, अध्यापकों और राजाओं की जिम्मेवा कही अधिक होती है। साधारण व्यक्ति तो केवल अपने त अपनी सन्तान के ही आचरण के लिए उत्तरदायिक होते हैं कि नेता, गुरु, अध्यापक और राजा क्रमशः अपने अनुयायी, शिष्य तथा प्रजाजनों के आचरण के लिए भी उतरदायिक होते हैं। शिष्य बिगड़ता है उसके लिए लोग गुरु अध्यापक को ही दोष देते हैं अनुयायियों का दोष उनके नेता पर मढ़ा जाता है और प्रजा अधर्मचरण के लिए लोग राजा को ही दोषी ठहराते हैं। इस लि राजाओं को विशेष चरित्रवान एवं धर्मात्मा होना चाहिये, जि से प्रजाजन भी चरित्रवान एवं धर्मात्मा बन सकें।

राजा के प्रति सम्बोधन मा० भा०—

वर्त्तमानाश्प्राचीनाधर्माः केलोक संश्रिताः।
शास्त्रेषु के समुद्दिष्टा विरूध्यंते च के घुना॥
लोक शास्त्रविरुद्धाः के पंडितस्तान्विचिंत्य च।
नृपंसबोधश्चेत्तैश्चपरत्रेंद्र सुख प्रदैः॥१७८॥

वर्त्तमान और प्राचीन धर्म में क्या है। लोक के, संश्रित धर्म कौन हैं, शास्त्र के उद्देश्य क्या हैं, वर्त्तमान में उनके विरुद्ध क्या धर्म हैं, और लोक और शास्त्र दोनों से विरुद्ध क्या हैं। इन सब बातों को पंडित बिचार करके इस लोक तथा परलोक के सुख के निमित्त राजा को समझावे ॥१७८॥

A Pundit should point out to the king the rituals conducive to happiness in both the worlds, consistent with the present age and also those with the past, which of them ore enjoined by the Shastras and which are opposed to them, as well as the obligations which militate against both the prevailing custom and the Shastras.

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वे भूतानि यः पश्यति स पंडित ॥१७६॥

जो पर स्त्रियों को माता के समान, पराये द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, और सब जीवों को आत्मवत् देखता है वही पंडित है ॥१७६॥

He who looks upon another's wife as if she were his mother, another's money as he would do a clod of earth and, on all creatures, as upon himself, is a Pundit.

यस्यसर्वेसमारंभाः काम संकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहु पंडितं बुधाः ॥१८०॥

ज्ञानी पुरुष उसी को पंडित कहते हैं कि जिसके सभी समारंभ अर्थात उद्योग, फल की इच्छा से रहित होते हैं और जिसके कर्म ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाते हैं।

The wise call that man a Pundit whose all undertakings are free from desire and who has consumed all the actions in the fire of knowledge.

A Pundit is therefore the man who, besides his learning, is endowed with above qualities. "Intellectual culture" says Smiles in his Character, has no necessary relation to purity and excellence of character. In the New Testament appeals are constantly made to the heart of man and to the spirit' we are of, whilst allusions to the intellect are of very rare occurrence.' A handful of good life, says George Herbert, is worth a bnshel of learning.

Not that learning is to be despised, but that it must be allied to goodness. Intellectual capacity is sometimes found associated with the meanest moral character—with abject servility to those in high places, and arrogance to those of low estate. A man may be accomplished in

art, literature and science, and yet, inhonesty, virtue, truthfulness, and the spirit of duty be entitled to take rank after many of poor and illiterate peasant...... . when some one, in Sir walter Scott's hearing, made a remark as to the value of literary talents and accomplishments, as if they were above all things to be esteemed and honoured, he obterved, ! God help us ! what a poor world this would be if that were the true doctrine ! I have read books enough and observed and conversed with enough of eminent and splendidly cultured minds too, in my time; but I assure you I have heard higher sentiments from the lips of poor uneducated men and women, when exerting the spirit of severe yet gentle heroism under difficulties and afflictions, or speaking their simple thoughts as circumstances in the lot of friends and neighbours, then I ever met with out of the Bible. We shall never learn to feel and respect our real calling and destiny unless we have thought ourselves to consider everything as moonshine compared with the education of the heart."

कच्चिद्दुर्गाणिसर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः ।
यंत्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥३६॥

क्या तुम्हारे किले, धन, धान्य, आयुध, जल और यन्त्रों से शिल्प विद्या के जानने वाले धनुर्धारियों ने भरपूर रक्खे हैं या नहीं ?

Are all your fortresses kept well furnished with riches, grain, arms, water and implements by warriors versed in the mechanical arts ?

एको ष्यामात्योमेधावी शूरोदांतोविचक्षणः
राजानं राजपुत्रंवा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥३७॥

एक ही बुद्धिमान, शूरवीर, जितेन्द्रिय, चतुर मंत्री राजा तथा राजपुत्रों को बहुत लक्ष्मी प्राप्त कराता है. क्या तुम्हारे यहाँ ऐसा मंत्री है या नहीं ?

A single minister alone who is wise, brave, selfcontrolled, skilful, causes great riches to fall into the hands of king or the princes. Have you got such a minister ?

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षेदशपंच च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सिर्धानिचारकै ॥३८॥

अष्टादशानतीर्थानि, Nilkantha, the annotator, says तीर्थानि मंत्रि प्रभृतीन्यष्टादश यान्यवगाह्य राजा कृतकृत्यो भवति । तानिचोक्तानि नीतिशास्त्रे, Eighteen officials beginning with the minister or whom a king should well sound in order to triumph over his

enemy. They are eighteen on the enemies' side and fifteen on one's own, and are as follows :—

मंत्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः ।
पंचमी द्वारपालश्चपश्ठों तर्तशिकस्तथा ॥१८१॥
कारागाराधितारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा ।
कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥१८२॥
प्रदेष्टा नगराध्यक्षा कार्यनिर्माणकृत्तथा ।
धर्माध्यक्षः समाध्यक्षो दण्डपालस्त्रिपंचमः ॥१८३॥
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रांतपालकः ।
अटवी पालकांतानि तीर्थान्यष्टादशैवतु ॥१८४॥
चारान्विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्चपरस्य च ।
पाखडादीनविज्ञातानन्योन्यमितरेष्वपि ।
मंत्रिणं युवराजं च हित्वा स्वेषु पुरोहितम् ॥१८५॥

परेषामष्टादशसु स्वस्य मंत्रिपुरोहित युवराजवर्जं पंचदशसु च तीर्थेषु चारानन्यैः परस्परं चाविज्ञातांस्त्रींस्त्रीन्प्रयुज्य तत्रत्यां वार्तां सर्व चार संवादे तथ्यां जीनायात् ज्ञात्वाच स्वप्रजानामनुरजनेन परप्रजानां दुःखितानामभयदानादिना आकर्षणेन च स्वराष्ट्रं वर्धयेदित्युक्तं भवति ।

१ मंत्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति, ५ द्वारपाल, ६ महल के अन्दर जाने वाला ७ जेल दरोगा ८ तहसीलदार या खजांची, ९ करने तथा न करने योग्य कामों का विचार करने वाला अर्थात कानूनगोय, १० ज्योतिषी, ११ नगराध्यक्ष, १२ इमारतों का बनवाने वाला ओवरसियर, १३ धर्माध्यक्ष,

१४ सभाध्यक्ष, १५ दण्डपाल, १६ दुर्गपाल, १७ सरहद का रक्षक, १८ जंगल का अफसर।

क्या तुम शत्रु के इन अठारहों को अपने इनमें से तीन अर्थात् १–मंत्री, २–पुरोहित और ३–युवराज को छोड़कर, पन्द्रहों मुलाजिमों के भेद को तीन २ जासूसियों द्वारा जिनको कि कोई न जानता हो और वे वापस में भी एक दूसरे को न जानते हों जान लेते हो न ? और जान कर अपनी प्रजा के सुख को बढ़ाते हुये और शत्रु की प्रजा के दुःख का उनको अभय दान देकर निवारण करते हुये तथा उनको मिलाते हुए अपने राज्य की वृद्धि करते हो न ?

1. The minister; 2. The family priest; 3. The Heir apparent; 4. The general or the Commander in-chief; 5. The gate keeper; 6 The servant privileged to enter the inner apartments; 7. The jailor, 8. The revenue collector or the treasurer; 9 The legal adviser, 10. The astrologer, 11. The mayor of the city, 12. The building overseer, 13 The judger, 14. The master of ceremonies, 15 The magistrate, 16. The keeper of the fort, 17. The Governor of the frontier, 18. The forest officer.

The above eighteen officials are called Tirthas. A king should employ three secret emissaries

or spies to sound the doings or the above eigh-teen, on the enemy's side, and the same save the first three on that of his own, and having ascertained their secrets (through the secret emissaries) a king should enhance the well-being of his subjects and remove the distress of those of the enemy, by allaying their fears or winning then over to his own side and he should thus improve his kingdom.

The following quotation from the Penchat-antra (Chay. III) over this verse, in the form of a dialogue between the king of crows, Megh-averna, and his trustworthy minister named Sthirajivi will emplain, at greater length, the substance of the original verse and describe the body of officals comprised under the torn Tirtha :—

"उक्तं चात्रविषये ।

यस्तीर्थानि निजे पक्षे परमपक्षे विशेषतः ।
गुप्तैश्चारैर्नृपोवेत्ति न स दुर्गति माप्नुयात् ॥ ६८ ॥

जो अपने पक्ष के तीर्थों के भाव को और विशेष कर शत्रु के पक्ष वाले तीर्थों के भाव को गुप्तचरों के द्वारा जान लेता है वह राजा दुर्गति को नहीं प्राप्त होता ।

मेघवर्ण ने कहा—हे तात! तीर्थ किन को कहते हैं, उनकी संख्या कितनी हैं? गुप्त चर कैसे होते हैं? यह सब बतलाइये।

इस विषय में भगवान नारद जी ने राजा युधिष्ठर से कहा है। जो शत्रु पक्ष के अष्टादश तीर्थ हैं और निज पक्ष के पंचदश तीर्थ हैं उनके भावों को तीन २ गुप्त चरों द्वारा राजा को जान लेने से अपने पक्ष वाले तथा शत्रु के पक्ष वाले तीर्थ निज वश हो जाते हैं नारद जी ने राजा युधिष्ठर से पूछा कि :—

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दशपंच च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः॥

क्या तुम शत्रु के पक्ष वाले अष्टादश तीर्थों को और प्रथम तीन अर्थात् मंत्री पुरोहित युवराजको छोड़ कर अपने पक्ष वाले पंचदश तीर्थों के चरित्र को तीन २ गुप्त जासूसियों के द्वारा मालूम कर लेते हो या नहीं?

तीर्थ शब्द से मंत्री या कर्मचारी का अर्थ होता है। यदि वे कुत्सित अर्थात दुष्ट हो तो स्वामी का नाश होता है और यदि प्रधान अर्थात् सुकर्मी हो तो उनसे राज्य की वृद्धि होती है। वे ये हैं। १—मंत्री, २—पुरोहित, ३—सेनापति, ४—युवराज, ५—द्वारपाल, ६—भितरिया, (महल के अन्दर आने जाने वाला) ७—प्रशासक, ८—तहसीलदार, ९—चौबदार, १०—न्यायाधीश, ११—ज्ञापक १२—वकील, १३—गजाध्यक्ष, १४—कोशाध्यक्ष, १५—दुर्गपाल, १६—कर तहसील करने वाला, १७—सीमापाल १८—निकटवर्ती भृत्य, इन लोगों के भेद से शत्रु शीघ्र वश में आ जाता है। अपने पक्ष के पंचदश:—

१—देवी, २—जननी, ३—कुन्चुकी ४—माली, ५—शय्यापालक, ६—चार अर्थात् जासूसी, ७—ज्योतिषी. ८—वैद्य, ९—जल पिलाने वाला, १०—पान खिलाने वाला, ११—आचार्य १२—अंग रक्षक, १३—स्थान चिन्तक, १४—छत्रधर, १५—विलासिनी इन लोगों में बैर होने से अपने पक्ष की हानि कहा है।

वैद्यसांवत्सरिकाचार्य्याः स्वपक्षे धिकृताश्चराः।
यथाहितुण्डिकोन्मत्ताः सर्वं जानन्तिशत्रुषु ॥

वैद्य, ज्योतिषी, आचार्य जासूसी अपने पक्ष की तथा सपेरा और मतवाले शत्र के पक्ष की सब बातें जान लेते हैं।

तीर्थो के द्वारा जासूसी लोगों से शत्रु के भेद को इस तरह जान ले जैसे सीढ़ियों से जल की गहराई जान ली जाती है।

On this subject it has been said that the king who sounds the minds of his own Tirthas as will as of those of the enemy through the employment of secret spies never comes to harm. Meghavarna said "O Sir! who are the Tirthas? What is their number? who are the secret spies? Tell me all."

He (the minister) replied: "In this respect the sage Narad said to the king Yudhisthira that a king should know the minds of the eighteen Tirthas on the enemy's side and of the

fifteen on his own, through (the employment of)three secret spies deputed on each side. By this plan the Tirthas of one's own side and those of the enemy are overpowered, Narad says to Yudhis-hira :—

"Do you not learn through secret emissaries, three in number, the minds of the eighteen Tirthas of the enemy and of the same number of your own with the exception of the first three (the minister the family priest and heir apparent).

By the word Tirtha are meant ministers, officebearers; if they are false then their master is ruined and if they are true,then thnt means The prosperity of their master. They are: 1. The prime-minister, 2. The family priest, 3. The Commander-in-chief, 4. The heir-apparent; 5, The gate-keeper, 6. The one who has access to the seraglio, 7, The preceptor, 8. The collector, 9. The usher, 10. The chief justice, 11. The master of ceremonies, 12. The legal adviser, 13. The supervisor of elephants, 14. The treasurer, 15. The keeper of the fort, 16. the tax-gatherer,

17. The guard of the frontiers, 18. The constant attendants. Through estrangement among these an enemy is soon vanquished.

The Tirthas of one's own sideare: 1. The queen, 2. The dowagerx mother, 3. The chamberain, 4. The gardener, 5. The officer of the bed chamber, 6. The spies, 7. The physician, 8. The watergiver or the cupbearer, 9. The betel man, 10. The family priest, 11. The body-guard, 12. The quarter master, 13. The umbrella-bearers 14. The mistress.

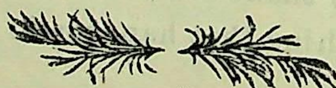
A physician, an astrologer, a preceptor and pies employed in one's own side, as also (those, disguised as) snake-charmers and drunkards, know everything that happens in the enemy's camp.

"Let the spies, who know their duty, and have made an entrance in to the enemies secrets by means of officials (तीर्थः) sound the bottom of their secrets in the same manner as the bottom of water is sounded by the help of flights of stepsleading in to it (तीर्थः)"

O harasser of foes ! do you not, ever circumspect, and intent, glean the movements and secrets of your enemies, unknown to them ?

कच्चिद्द्विषामविदितः प्रतिपन्नश्च सर्वदा ।
नित्ययुक्तो रिपून्सर्वान्वीक्षसे रिपुसूदन ॥ ३९ ॥

हे रिपुसूदन ! क्या तुम सदा सावधान, नित्य उपयोगी, पराये नौकरों से बताये हुए शत्रु के उद्योगों को और उनके मन की बातों को जान लेते हो या नहीं ?



श्री महावीरा प्रिंटिंग प्रेस, बारा टोटी, सदर बाजार, देहली ।

भाग दूसरा

शिकार के लिये पशु वध निषेध--

शिकार या मृगया के लिये दयाहीन मानव निरपराध पशु-पक्षियों को मारकर आनन्द मानता है। इस में हेतु केवल मन को प्रसन्न करना है। पशुगण कष्ट पावें, तड़फड़ावें, भागें, यह मानव पीछा करे, उनको मार डाले तब यह अपनी वीरता मान कर राजी होता है। यह कैसी मनुष्यता है ? जगत में जैसे मानवों को जीने का हक है वैसा ही हक पशु पक्षी व मच्छादिकों को है। सर्व ही अपने प्राणों की रक्षा चाहते हैं। बिना उपयोगी प्रयोजन के केवल मौज, शौक के लिये पशु घात करना मानवों की दया के क्षेत्र के बाहर एक बड़ी निर्दयता है। प्रयोजन उचित होने पर यदि पशुओं को कष्ट मिले, उनसे अपना कुछ जरूरी काम निकले तो ऐसा क्षम्य हो सकता है। जैसा आरम्भी हिंसा में गृहस्थी को खेती व्यापार शिल्पादि करते हुए कष्ट देना पड़ता है परन्तु हमारा दिल बहलाव हो और पशुओं के कीमती प्राण जावें, यह कोई बात नहीं है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासन में कहते हैं:—

अप्येतन्मृगयादिकं यदि तव प्रत्यक्षदुःखास्पदम् ।
पापैराचरितं पुरातिभयदं सौख्याय संकल्पतः ॥
संकल्पं तमनुज्झितेन्द्रियसुखैरासेविते धीधनै ।
धर्मे (र्म्ये) कर्मणि किं करोति न भवान् लोकद्वयश्रेयसि ।२८
भीतमूर्तीर्गतत्राणा निर्दोषा देहवित्तिका ।
दन्तलग्नतृणा घ्नन्ति मृगीरन्येषु का कथा ॥२९॥

भावार्थ—हे भाई ! तूने तुझे प्रगट आकुलित करने वाले शिकार आदि कर्मों को अपने मन के संकल्प से या मन माने सुखकारी मान लिया है। जिस काम को पापी हिंसक अज्ञानी करते हैं व जिसका बहुत बुरा फल भयकारी आगे होने वाला है, तू इंद्रियों के सुखों में आधीन होकर ऐसा खोटा विचार करता रहता है। तू ऐसा विचार या संकल्प इस लोक तथा परलोक में सुख देने वाले व कल्याणकारी धर्म कार्यों के करने में क्यों नहीं करता ? शिकार के शौकीन उन गरीब हिरणों तक को मार डालते हैं जो भयभीत रहते हैं, दोष रहित हैं, शरीर मात्र धन के धारी हैं, दांतों से तृण को ही लेते हैं, जिनका कोई शरण नहीं है तो और की क्या रक्षा करेंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि शिकार क्षत्रियों का धर्म है। यह बात ठीक नहीं है। क्षत्रियों का धर्म क्षति या हानि से रक्षा करना है। देश के भीतर मानव व पशु दोनों रहते हैं दोनों की रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है। वृथा मौज शौक से पशुओं को सताना धर्म नहीं हो सकता है। शिकार की क्रूरता को विचार कर अमेरिका की जीवदया सभाओं ने शिकार के विरुद्ध बहुत आन्दोलन कर रखा है। समाचार पत्र निकालते हैं, चित्र प्रगट करते हैं। एक दफा उन्होंने दो प्रकार के चित्र प्रगट किये थे (१) एक तो ऐसा चित्र था कि मानव भागता जा रहा है और भेड़िये पीछे दौड़ रहे हैं। अर्थात् मानव का शिकार पशु कर रहे हैं। इससे यह बात समझाई है कि जैसा कष्ट व घबराहट मानव को शिकार किये जाने पर होती है वैसा ही कष्ट व आकुलता उस पशु को होती है जिसका शिकार किया जा रहा है।

(२) दूसरे चित्र में दिखाया था कि एक पक्षी माता अपने चार बच्चों के लिये दाना ढूंढ रही थी। चारों बच्चे उड़ नहीं सकते

थे। दाना पाने की राह देख रहे थे। इतने में एक शिकारी आता है, और गोली से पक्षी माता को मार डालता है। बेचारे बच्चे अधमरे हो जाते हैं। फिर वे सब मर जाते हैं। कितनी निर्दयता है कि पांच जीव बड़े दुःख से प्राण गंवाते हैं। एक मानव का चित्त बहलाव हो व उसके बदले में पशुओं के प्राण जावें। ऐसी शिकार क्रिया किसी तरह करने योग्य नहीं है। कुछ लोग मछलियों को पानी से निकालकर जमीन पर डाल देते हैं, और उनकी तड़फ देखकर खुशी मनाते हैं। कितनी निर्दयता है ?

शिकार खेलना, हिंसक खेल है। संकल्पी हिंसा का एक भेद है। हर एक गृहस्थ को परहेज करना चाहिये। पक्षियों को वृथा गोली से नहीं मारना चाहिए। मानव को दयावान होकर जीवन बिताना चाहिये।

मांसाहार के लिये पशुवध

मानव को स्वभाव से दयावान होना चाहिए। दयाभाव से वर्तते हुए अपना भोजन-पान ऐसा रखना चाहिए जिससे शरीर की तंदुरुस्ती बढे व रोग न होवें व अन्य प्राणियों की हिंसा बहुत कम हो। प्रकृति में पानी, हवा, अन्न, फलादि पदार्थ हमारे लिए बहुत हैं। हम इन को खाकर स्वास्थ्ययुक्त रह सकते हैं व बहुत ही थोड़ी आरम्भी हिंसा के भागी होते हैं। हम पहले बता चुके हैं कि जलकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, एकेन्द्रिय जीवों में चार प्राण होते हैं, जब कि बकरे, मुर्गे, गाय, भैंस आदि में दस प्राण होते हैं। जब थोड़ी हिंसा से काम चल जावे तब बुद्धिमान को अधिक हिंसा न करनी चाहिए। जो लोग मांस खाते हैं, उनके लिए कसाईखानों में बड़ी निर्दयता से पशु मारे जाते हैं। यदि

कोई उनको मारते हुए उनकी तड़फड़ाहट को देख ले तो अवश्य ऐसे मांस का त्याग कर दे। मानवों ने अपनी आदत बना ली है जिस से मांस खाते हैं। मांस की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारा शरीर उन पशुओं से मिलता है जो मांस नहीं खाते हैं और खूब काम करते हैं। बैल, घोड़े, ऊंट, हाथी मांसाहारी पशु नहीं हैं और बोझा ढोने का व सवारी का बहुत बड़ा काम देते हैं। भेड़िया, शेर, चीता मांसाहारी पशु हैं, इन से कोई काम नहीं निकलता है। वे क्रूर व हिंसक जातिवाले डरावने होते हैं। स्वभाव से देखा जावे तो विदित होगा कि अन्न फलादि वृक्षों में पककर खुद उनका भोग नहीं करते हैं, वे दूसरों के लिए हैं। मानवों के लिए अन्न फल हैं, तब पशुओं के लिए घास व पत्ते व चारा व भूसा हैं।

प्रकृति का यही नियम दीखता है तथा हमारे लिए गाय, भैंस आदि का दूध उपयोगी है। दूध देने वाले पशुओं को पालें, उनके बच्चों को दूध लेने दें। जब वे चारा खाने लायक हो जावें, हम उनको पालने के बदले में उन से दूध लेकर पीवें व उसका घी बना कर खावें व मलाई या खोया बनाकर मिठाइयां बनाकर खावें। मांस, मछली, अण्डों के खाने की कोई जरूरत नहीं है। अण्डे गर्भ के बालक के समान हैं। अण्डे को खाना गर्भस्थ बालक को खाना है। यदि कोई कहे कि मांस के लिए किसी पशु को न मार कर स्वयं मरे हुए पशु का मांस खाने में क्या दोष है, इसे जैनाचार्य बताते हैं कि मांस में पशु की जाति के सम्मूर्च्छन जंतु हर समय पैदा होते रहते हैं व मरते हैं, इसी से मांस की दुर्गन्ध कभी मिटती नहीं। मांस खाने से कठोर चित्त भी हो जाता है। खाने योग्य पशुओं पर दयाभाव कैसे हो सकता है? अतएव हिंसा का कारण मांसाहार है। कोई कहे कि हम पशु को न मारते हैं न मारने को

कहते हैं। न मारने की सलाह देते हैं, हमें बाजार में मांस मिलता है हम खरीद कर लाते हैं, तो कहना होगा कि बेचने वाला खाने वालों के लिए ही पशुओं को मार कर मांस तैयार करता है। यदि मांसाहारी न हों तो कसाईखाने में पशु न मारे जावें। इसलिए मांस खाना पशुघात का कारण है। मांस खरीदने वाले मांस की तैयारी को अच्छा पसंद करते हैं। इससे पसंदगी की हिंसा तो बन नहीं सकती। यह मांसाहार परम्परा हिंसा का कारण है। संकल्पी हिंसा है। व्यर्थ है। मानवों को मांस से बिल्कुल परहेज करना चाहिए। शुद्ध भोजन ताजा अन्न फलादि का करके तंदुरुस्त रहना चाहिए।

जर्मनी के डाक्टर लुईस कोहनी Lois kohne डाक्टर ने अपनी बनाई हुई किताब New sceince of healing न्यूसाइन्स आफ हीलिंग में बहुत वादानुवाद के बाद दिखाया है कि मांस मानव के लिए खाद्य नहीं है। मनुष्य के शरीर में दांत ऐसे होते हैं जो मांस खाने वाले पशुओं से नहीं मिलते हैं। किन्तु फल खाने वाले पशुओं से मिलते हैं। बंदर के दांत व पेट मनुष्य के दांत व पेट से मिलता है। जैसे फ़ल खाने वाले पशु बंदर आदि फलदार वृक्षों ही की तरफ जाकर फल खाना पसंद करते हैं, वैसे ही मनुष्यों का भी स्वभाव है। जिस बालक ने कभी मांस नहीं खाया है वह कभी मांस को पसंद नहीं कर सकता है, वह सेब के फल को लेने दौड़ेगा। छोटे बच्चे माता का दूध पीते हैं। मांसाहारी स्त्रियों में दूध कम होता है। जर्मनी में बच्चों को पालने के लिए शाकाहारी धाएँ बुलाई जाती हैं। समुद्र दाना में धायों को जव के आटे की पकी हुई कृपानी दी जाती है। वास्तव में बात यह है कि मांस माता को दूध बनाने में कुछ भी मदद नहीं देता। उक्त डाक्टर ने यह भी जांच की है कि जो बच्चे बिना मांस के भोजन से पाले गये उनके शरीर की

ऊंचाई मांसाहारी बच्चों से अच्छी रही। मांसाहार इन्द्रियों की तृष्णा के बढ़ाने में उत्तेजना करता है। मांसाहारी लड़के इच्छाओं को न रोककर शीघ्र दुराचारी हो जाते हैं। मांसाहार से अनेक रोग होते हैं व मांसाहार के त्याग से अनेक रोग मिटते हैं। मियोर्ड बरहान साहब २६ वर्ष की आयु में मरण किनारे हो गए थे, परन्तु मांस त्यागने से व फलाहार करने से ३० वर्ष और जीए।

वास्तव में मांस का भोजन मनुष्य के लिए निरर्थक नहीं, किन्तु महान् हानिकारक है।

मांसाहार निषेध में डाक्टरों का मत---

Order of Golden age आर्डर आफ गोल्डन एज नाम की सभा (पता-१५३-१५५ ब्रोम्प्टन-रोड लंदन-No.153-155 Brompton Road London S.W.) है जो मांसाहार के विरुद्ध साहित्य प्रगट किया करती है, अपनी प्रसिद्ध की हुई पुस्तक दी टेष्टिमनी आफ साइन्स इन फेवर आफ दी नेचरल एंड ह्युमेन डाइट (The Testimony of science in favour of natural and human diet) इस पुस्तक में मांसाहार के विरुद्ध बहुत से विद्वानों की सम्मतियां हैं।

Dr. Josiah oldfield D. C. L. M. A. M. R. C. S. S. L. R. C. P. senior Physician Margaret Hospital Bombay.

डाक्टर जोजिया आल्डफील्ड ब्रोमले हस्पताल के लिखते हैं-

To-day, there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh eaters, but to

the fruit-eaters. To-day there is the chemical fact in hands of all, which none can gain say, that the products of the Vegetable Kingdom contain all that is necessary for the fullest sustenance of human life. Flesh is an un-natural food, and therefore, tends to create functional distrurbance. "As it taken in modern civilization it is affected with such terrible diseases (readily communicable to man) as cancer, consumption fever, intestinal worms etc, to an enormous extent. There is little need for wonder that fles eating is one of the most serious causes of the diseases that carry off ninety nine out of every hundered people that are born."

भावार्थ—आज यह विद्वानों के द्वारा निर्णय हो गया है कि मानव शाकाहारियों में होकर फलाहारियों में है । आज सबके हाथ में यह परीक्षा की हुई बात सिद्ध है कि वनस्पति जाति में वह सब है जो मनुष्य के पूर्ण से पूर्ण जीवन के स्थिर रखने के लिए आवश्यक है ।

मांस अप्राकृतिक भोजन है और इसीलिए शरीर में अनेक उपद्रव पैदा कर देते हैं । आजकल की सभ्य समाज इस मांस को खाने से केन्सर, क्षय, ज्वर, पेट के कीड़े आदि भयानक रोगों से जो फैलने वाले हैं, बहुत अधिक पीड़ित है । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मांसाहार सारे भयानक रोगों में से एक रोग

है जो सौ मानवों में से ९९ बीमारों की जान लेता है।

Mr. Samuel Saunders (Hereld of the Golden age July 1904).

मि० सेमुअल सांडर्स (हेरल्ड आफ गोल्डन एज जुलाई १९०४) में कहते हैं—

I have abstained from fish & fowl for 62 years, and I have been observant of the rules of health, I have never had a headacke, never been in bed a whole day from illness or suffered pain except from trivial accidents. I have had a very happy, and I hope somewhat useful life, and now in my 88th years I am as light and blossom and as capable of receiving a new idea as I was 20 years ago.

भावार्थ—मैं बासठ वर्ष से मछली, मांस, मुर्गी नहीं खाता हूँ तथा तन्दुरुस्ती के नियम से चल रहा हूँ। मुझे कभी सिर में दर्द नहीं हुआ। कभी मैं दिन भर बिछोने पर नहीं पड़ा रहा, न साधारण अकस्मातों के सिवाय दर्द सहन किया। मैंने बहुत हर्ष पूर्वक जहां तक मैं समझता हूँ, कुछ उपयोगी जीवन बिताया है। और अब मैं ८८ वें वर्ष में इतना ही हल्का प्रफुल्लित व नया विचार ग्रहण करने को समर्थ हूँ, जैसा मैं २० वर्ष की आयु में था।

Professer G. Sims woodhead, M. D. F.R.C.

P. F. R. S. Professor of pathology cambridge University, May 12th 1905.

प्रोफेसर जी. सिम्स वुड्हेड़ केम्ब्रिज यूनि० ता० १२ मई १६०५ को कहते हैं—

Meat is absolutely unnecessary for perfectly healthy existence and the best work can be done on a vegitarion diet.

भावार्थ-पूर्ण स्वास्थ्य युक्त जीवन बिताने के लिये मांस बिल्कुल अनावश्यक है, केवल शाकाहार पर ही बसर करने से सब से अच्छा काम हो सकता है।

इसी पुस्तक से प्रगट है कि प्राचीन काल में बड़े-बड़े पुरुष हो गये हैं व अब हैं जिन्होंने बिल्कुल मांस न खाया, उनके कुछ नाम ये हैं। (१) यूनान के पैथेगोरस, (२) प्लेटो, (३) अरिष्टाटल, (४) साक्रटीज, पार्सियों के गुरु जोराष्टर, क्रिश्चियन पादरी जैम्स, मैथ्यू पेटेर, अनेक विद्वान जैसे मिल्टन, इजाक, न्यूटन, बेनजामिल, फ्रैंकलिन, शेल्ली, एडिसन।

मांसाहारियों से शाकाहारी शरीर की वीरता दिखाने में व देर तक बिना थके काम करने में अधिक चतुर पाए गए हैं।

मांसाहार से मदिरा पीने की चाह बढ़ जाती है। जिन देशों में मांस का कम प्रचार है वहां मदिरा भी कम है। बहुत से लोग समझते हैं कि मांस, मछली आदि में शक्ति बढ़ाने वाले पदार्थ अन्नादि से अधिक हैं। यह बात भी ठीक नहीं है। The toiler and his food by Sir William Earnshaw Cooper,

C. I. E. टाइलर एण्ड हिज फुड पुस्तक में जिस को सर विलियम कूपर ने लिखा है, भिन्न-भिन्न भोजनों के शक्ति वर्द्धक अंश देकर दिखा दिया है कि मांस ग्रहण से बहुत कम शक्ति आती है। उसी में से कुछ सार नीचे दिया जाता है।

मांस में शक्ति भाग।

पदार्थ	शक्ति वर्द्धक अंश कितना १०० में से
(१) बादाम आदि गिरियां	६१ अंश
(२) सूखे मटर चने आदि	८७ अंश
(३) चावल	८७ अंश
(४) गेहूँ का आटा	८६ अंश
(५) जौ का आटा	८४ अंश
(६) सूखे फल किसमिस खजूरादि	७३ अंश
(७) घी शुद्ध	८७ अंश
(८) मलाई	६६ अंश
(९) दूध	१४ अंश
परन्तु इसमें ८६ अंश पानी भी लाभदायक है।	
(१०) अंगूर आदि ताजे फल	२५ अंश
परन्तु इन में पानी भी लाभकारक है।	
(११) मांस	२८ अंश
पानी भी हानिकारक है।	
(१२) मछली	१३ अंश
(१३) अंडे	२६ अंश

विचारवानों को अधिक शक्ति वर्द्धक पदार्थ खाने चाहिएं। यह मांसाहार वास्तव में निरर्थक है। वृथा ही पशुघात का कारण है।

जिनराज दास का मत--

इस मांसाहार की निरर्थकता पर मिस एनी बेसेन्ट के अनुयायी थियोसोफिस्ट श्री० सी० जिनराज दास (कैंटब) एम० ए० बंबई जीवदया सभा (३०६ सराफा बाजार) के वार्षिक उत्सव ता० २ सितम्बर १६१८ को सभापति के नाते से कह चुके हैं--"मांसाहार स्थूल बुद्धि से होता है। यूरुप के महायुद्ध के पहले पश्चिमीय देशों में मांसाहार का विरोध उतना नहीं था जितना अब हो गया है। लड़ाकू लोगों को शाकाहारी होना पड़ा है, क्योंकि शाकाहार से स्वभाव अच्छा रहता है। शाकाहार के विरुद्ध एक भी युक्ति नहीं है। पश्चिमीय देशों में दौड़ लगाने, बाइसिकिल पर चढ़ने, कुश्ती लड़ने आदि में शाकाहारियों ने मांसाहारियों पर बाजी मार ली है। ठंडे देशों में भी मांसाहार की जरूरत नहीं है।

पश्चिम के देशों में हजारों शाकाहारी रहते हैं। मैं इंगलैंड में १२ वर्ष शाक भोजन पर रहा। अमेरिका के चिकागो व कैनेडा में मैंने जाड़े शाकाहार पर काटे हैं तथा मांसाहारियों की अपेक्षा भले प्रकार जीवन बिताया है। जहां कहीं मानवों की उत्पत्ति है वहां प्रायः कोई न कोई वनस्पति फल आदि अवश्य पैदा होते हैं। क्योंकि जहां भूमि, जल, पवन अग्नि और सूर्य के आताप का संबंध होगा वहां पर वनस्पति न हो यह असंभव है। इसलिये यदि बच्चों को व मानवों को मांस खाने की आदत न डलवाई जावे और उनको शाकाहार पर रक्खा जावे तो वे अवश्य शाकाहार पर

ही अपना जीवन बसर कर सकेंगे।

बहुत से उपयोगी पशु जो खेती करने वाले व दूध देने वाले हैं मांसाहार के कारण मारे जाते हैं।

इस तरह निर्मल बुद्धि से विचार किया जायगा तो विदित होगा कि मांसाहार वृथा ही घोर संकल्पी हिंसा का कारण है।

(१) जैनाचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखते हैं—

श्री अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखते हैं—

न विना प्राणविधातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मांसं भजतस्तस्मात्प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥
यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥६६॥
आमास्वपि पक्कास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥६७॥
आमां वा पक्कां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम् ॥६८॥

भावार्थ—बिना प्राणघात के मांस की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिये मांस खाने वाले के लिये अवश्य हिंसा करनी पड़ती है। यद्यपि स्वयं मरे हुए भैंस, बैलादि का भी मांस होता है परन्तु ऐसे मांस में भी उसके आश्रय से उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छन त्रस जीवों का घात करना पड़ेगा।

मांस की डलियां चाहे कच्ची हों, या पक गई हों, या पक रही हों उनमें निरन्तर उसी जाति के सम्मूर्च्छन त्रस जंतुओं की उत्पत्ति होती रहती है। इसलिए जो कोई मांस की डली को कच्ची हो या पक्की हो खाता है या छूता है वह निरंतर इकट्ठे होने वाले करोड़ों जंतुओं का घात करता है।

(१) श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरंडश्रावकाचार में कहते हैं—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

भावार्थ—गणधरादि आचार्यों ने बताया है कि गृहस्थियों को आठ मूलगुण जरूर पालने चाहिएं।

१. मदिरा का पीना—इससे भाव हिंसा होती है व शराब के बनने में बहुत जन्तु मरते हैं। २. मांस का त्याग। ३. मधु का त्याग—शहद के लेने में बहुत जन्तुओं का घात करना पड़ता है। ४. स्थूल या संकल्पी हिंसा का त्याग। ५. स्थूल झूठ का त्याग। ६. स्थूल चोरी का त्याग। ७. स्व-स्त्री में सन्तोष, पर-स्त्री त्याग। ८, परिग्रह या सम्पत्ति का प्रमाण।

(२) हिन्दू शास्त्रों में भी बहुत जगह मांस का निषेध है।

मनुस्मृति—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

भावार्थ—प्राणियों की हिंसा के बिना मांस उत्पन्न नहीं

होता और न प्राणीवध स्वर्ग का कारण ही हो सकता है। इसलिए मांस का त्याग करना चाहिए।

(३) बौद्ध शास्त्रों में—प्राचीन संस्कृत लंकावतार सूत्र में आठवें अध्याय में मांस की मनाही हर एक बौद्ध-धर्म मानने वाले के लिये है। कुछ श्लोक हैं—

मद्यं मांसं पलाण्डुं च न भक्षयेयं महामुने।
बोधिसत्वैर्महासत्वैभाषद्भिर्जिनपुंगवैः ॥ १ ॥
लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसाथ दीयते धनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्यते रौरवादिषु ॥६॥
योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशाय दीक्षितः शाक्यशासने ॥१०॥
त्रिकोटिशुद्धं मांसं वै अकल्पितमयाचितं।
अचोदितं च नैवास्ति तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥१२॥
यथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत्।
तथैव मांसमद्याद्य अन्तरायकरो भवेत् ॥२०॥

भावार्थ—जिनेन्द्रों ने कहा है कि मदिरा, मांस व प्याज किसी बौद्ध को न खाना चाहिये। जो लाभ के लिये पशु मारते हैं, जो मांस के लिये धन देते हैं दोनों ही पापकर्मी हैं, नरकों में दुःख पाते हैं। जो कोई मूर्ख मुनि के वचनों को न मानकर मांस खाता है वह शाक्यों के शासन में दोनों लोक के नाश के लिये दीक्षित हुआ है। बिना कल्पना किया हुआ, बिना भोगा हुआ व बिना प्रेरणा किया हुआ मांस हो नहीं सकता इसलिए मांस न

खाना चाहिये। जैसे राग मोक्ष में विघ्नकारक है वैसे मांस मदिरा का खाना भी अन्तराय करने वाला है।

(४) ईसाई मत में भी मांस का निषेध है।

Romans ch. 14-20. For meat destory not the work of God. All things indeed are pure, but it is evil for that man who eateth with offence.

21. It is good neither to eat flesh, nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is offended or is made weak.

भावार्थ—रोमंस (अ० १४-२०) मांस के लिये परमात्मा के काम को मत बिगाड़ो। सब वस्तुएं वास्तव में पवित्र हैं। यह मानव के लिये पाप है जो अपराध करके भोजन करता है। यही उत्तम है कि कभी मांस न खाओ, न मदिरा पीओ, न ऐसी चीज खाओ जिससे तेरा भाई दुःखी हो या निर्बल हो।

Genasis ch. 129.

Behold I have given you every best bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a true yeilding seed, to you it shall be meat.

भावार्थ—देखो ! मैंने तुमको पृथ्वी पर दिखने वाली घास दी है, जिस हर एक से बीज पैदा होता है व बीज देने वाले फलदार वृक्ष दिये हैं, वही तुम्हारे लिये भोजन होगा।

(५) मुस्लिम धर्म में भी फलादि के खाने की आज्ञा है। कुरान का अंग्रेजी उल्था रोडवेल कृत। (१६२४)

(24) S. 80—Let man look at his food. It was we who rained down the copious rains....... and caused the upgrowth of grain, and grapes and healing herbs and the alive and the palm and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage, for the service of yourselves and your cattle. (20-40)

भावार्थ—मानव को अपने भोजन पर ध्यान देना चाहिए। हमने बहुत पानी बरषाया। अनाज, अंगूर, औषधियें, खजूर आदि उगवाए, उनके चारों तरफ वृक्षों से, फलों से व वनस्पति से घने भरे हुए बाग लगवाए, तुम्हारी और तुम्हारे पशुओं की सेवा के लिए।

(54) S. 50—And we send down the rain from heaven with its blessings, by which we cause gardens to spring forth and the grain of the harvest, and the tall palm trees with date bearing branches one over the other for man's nourishment.

भावार्थ—हमने पानी बरसाया जिससे बाग फलें, फल लगें लम्बे वृक्ष खजूरों से भरे रहें, ये सब मानव के पोषण के लिये।

(55) S. 20—He hath spread the earth as a

bed and path traced out paths for you therein and hath sent down rains from heaven and by it we bring forth the kinds of various herbs eat ye and feed your cattle.

भावार्थ—उसने पृथ्वी के बिछौने के समान बिछाया है। तुम्हारे लिये मार्ग के चिन्ह बताए हैं। पानी बरसाया है जिससे नाना प्रकार के वनस्पति पैदा हों, तुम खाओ और अपने पशुओं को खिलाओ।

इन ऊपर के वाक्यों से सिद्ध होगा कि हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान सर्व ही धर्म के आचार्य कहते हैं कि मानव फल अन्नादि खाएं, मांस न खावें। खेद है इन सब धर्म के मानने वालों में बहुत लोग मांस खाते हैं। यह नहीं विचार करते हैं कि जब अन्न, फल, शाकादि मिलते हैं तब हम ऐसी वस्तु को क्यों खाएं, जिससे मन भी कठोर हो, तन्दुरुस्ती न बढ़े, रोग पैदा हो, व जिसके लिये कसाईखाने में पशुओं का घात किया जावे।

हिन्दू व बौद्धों में तो अहिंसा की बड़ी महिमा है। मांसाहार घोर हिंसा का कारण है। जिनको अहिंसा प्यारी है उनको मांस का त्याग ही करने योग्य है। ईसाई व मुसलमान धर्म वाले भी यदि अपने धर्म गुरुओं के दयाभाव व प्रेममय सदुपदेशों पर ध्यान देंगे तो उनका भी दिल यही कहेगा कि मांस खाना हमारे छोटे भाई गरीब पशुओं के वध का कारण है, इसलिए नहीं खाना चाहिए।

धर्मों में पशुबलि निषेध—

गृहस्थी को संकल्पी इरादापूर्वक (Intentonal) हिंसा का

त्याग करना तो जरूरी है। जिस हिंसा से गृहस्थी का कोई जरूरी न्याय व धर्मपूर्वक जीवन का मतलब सिद्ध न हो, व जो बेमतलब हो, व मिथ्या मान्यता श्रद्धा या रुचि से हो या केवल मौज व शौक से हो, वह सब संकल्पी हिंसा है। इसके धर्मार्थ पशुबलि, शिकार के लिये पशुवध, मांसाहार के लिये पशुबध, मौज शौक के लिये हिंसा आदि अनेक प्रकार हो सकते हैं।

धर्मार्थ पशुबलि का रिवाज इस असत्य मान्यता पर चल पड़ा है कि धर्म के लिये किसी देवी देवता को या किसी परमात्मा को प्रसन्न करना जरूरी है। इससे हमारा भला होगा, हमारी खेती फलेगी, हमें धन मिलेगा, पुत्र का लाभ होगा, शत्रु का क्षय होगा, रोग दूर होगा। इत्यादि लौकिक प्रयाजन की सिद्धि विचार करके धर्म के नाम से किसी ईश्वर या किसी देवी देवता का प्रसन्न करने का मनोरथ रखके या स्वर्ग प्राप्ति का हेतु रखकर दीन, अनाथ, मूक पशुओं की बलि करना, उनका वध करना, यज्ञों में होमना या काटना, उनका रक्त बहाना, मांस को चढ़ाना आदि धर्मार्थ पशुबलि निरर्थक हिंसा है, बड़ी भारी निर्दयता है।

यह पशुबलि अज्ञान व मिथ्या श्रद्धान पर होती है। यह विश्वास गलत है कि कोई देवी देवता या ईश्वर पशुबलि से राजी होकर हमारा काम कर देगा।

देवी को जगन्माता, जगद्धात्री, जगत् रक्षिका कहते हैं। देव भी जगरक्षक, जगत्त्राता प्रसिद्ध हैं। ईश्वर दयासागर रहीम कहलाता है। जगत् में पशु-पक्षी भी गर्भित हैं। पशु-पक्षियों की भी माता देवी है उनका पिता व रक्षक देव है। पशु-पक्षियों का

भी दयासागर ईश्वर है। खुदा इन पर भी रहीम है। तब यह कैसे माना जा सकता है कि कोई देवी देवता या ईश्वर अपने रक्षा के पात्र पशु पक्षियों के वध से प्रसन्न हो? कोई पिता अपने बच्चों के वध से प्रसन्न नहीं हो सकता है। क्या देवी देवता या ईश्वर मानवों का ही रक्षक या पिता माता है? क्या उसकी दया मानवों पर ही रहती है, यह मानना मानवों का पक्षपात है। जब वह जगत् की माता है, जगत् का पिता है, विश्व पर दयालु है, तब वह पशु समाज की भी माता है, उनका पिता है, उनका दया-कारक है। प्राण पीड़ा करना, कष्ट देना पाप है, अपराध है। बलि होने वाले प्राणी जब मारे जाते हैं, तड़फड़ाते हैं, चिल्लाते हैं, घोर वेदना सहते हैं। यहाँ हिंसा करने का ही मिथ्या संकल्प है। परको पीड़ा देकर पुण्य चाहना, भला चाहना, उसी तरह मिथ्या विचार है जैसे विष खाकर जीना चाहना, अग्नि में जलकर ठण्डक चाहना, सूर्य का उदय पश्चिम में चाहना। कोई २ ऐसा कहते हैं कि जिन पशुओं को यज्ञ में होमा जाता है व जिनकी बलि की जाती है वे स्वर्ग में जाते हैं, तब यह विचार होगा कि इसी तरह यज्ञ में अपने कुटुम्ब की या आपकी बलि क्यों न कर दी जावे। जब पशुबलि से पशु स्वर्ग जाता है तो पशुबलि करने वाला यदि अपने को, अपने पिता को, भाई को, पुत्र को बलि पर चढ़ादे तो वे भी स्वर्ग चले जायेंगे। सा ऐसा कोई नहीं करता है इसलिये पशु स्वर्ग जाते हैं यह मान्यता भी खोटी है। यदि पशुबलि से या पशु पीड़ा से पुण्य हो तो पाप फिर किससे हो?

वास्तव में आपको या परको बध करना, पीड़ा देना या दुःख पहुँचाना ही पाप का कारण है। पुण्य तो प्राणों की रक्षा से, कष्ट निवारण से होगा। कष्ट देने से तो पाप ही होगा। पशुबलि से

पुण्य होना मानना भी मिथ्या है। जगत् में संसारी सुख पुण्य के फल से व दुःख पाप के फल से होते हैं। पुण्य मन्द कषाय से, या शुभ राग से, परके कष्ट निवारण, परमात्मा के गुणों का चिन्तवन परोपकार आदि से होता है। तब पुण्य के चाहने वाले को पशुबलि न करके पशुरक्षा करनी चाहिये। पशुओं के प्राण बचाने चाहियें। वे भूखे प्यासे हों तो भोजन दान देना चाहिये। जैसे अपने शरीर में कोई शस्त्र तो क्या सुई भी चुभावे तो महान कष्ट होता है। कांटा लगने पर चित्त घबड़ाता है, वैसे ही किसी पशु-पक्षी पर शस्त्र घात होगा तो उसे भी कष्ट, पीड़ा व आकुलता होगी। वह महान् संकट में पड़ जायगा। यदि कोई पशु यज्ञ में या देवी देवता के सामने खुशी से प्राण दे देता हो तो शायद उसका कष्ट न माना जावे, परन्तु ऐसा नहीं है। कोई पशु मरना नहीं चाहता है। उनको बांध करके जबरदस्ती वध किया जाता है। जो धर्म के नाम से या देवी देवता या ईश्वर के नाम से ऐसा पशुबध करते हैं वे धर्म को, देवी देवता को व ईश्वर को बदनाम करते हैं, उसकी अपकीर्ति करते हैं। धर्म अहिंसा है। देवी देवता जगत् के रक्षक दयालु हैं। ईश्वर दयासागर है। ऐसा होते हुए भी हिंसा को धर्म मानना, देवी देवता व ईश्वर को हिंसा से राजी होना मानना वृथा ही उनको दोष लगाना है।

धर्म अहिंसा तथा दया को कह सकते हैं। जहां क्रूरता से प्राणी की बलि हो वह धर्म नहीं हो सकता है। इसलिये धर्मार्थ पशुबलि अज्ञान है। किसी भी बुद्धिमान प्राणी को भूलकर भी इस अपराध को न करना चाहिये। कोई भी धर्म का नेता ऐसी आज्ञा नहीं दे सकता है। जहां कहीं भी ऐसा कथन हो वह हिंसा के प्रेमियों के द्वारा व मांसाहारियों के द्वारा ही लिखा हुआ

माना जायगा । जैन शास्त्रों में इसका अत्यन्त निषेध है। यह संकल्पी हिंसा वृथा है । हिन्दू शास्त्रों में भी निषेध के बहुत वाक्य हैं। कुछ यहां दिये जाते हैं—

(१) यजुर्वेद १८-३

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूं ।

(२) महाभारत अनुशासन पर्व १३ अध्याय ।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदयः ।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः ॥१४॥

भावार्थ—अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही बड़ा इन्द्रिय दमन है, अहिंसा ही बड़ा दान है तथा अहिंसा ही बड़ा तप है।

महाभारत शान्तिपर्व—

कण्टकेनापि विद्धस्य महती वेदना भवेत् ।
चक्रकुंतासियष्टयाद्यैस्मार्यमाणस्य किं पुनः ॥५॥

भावार्थ—कांटा चुभने से ही जब महान् दुःख होता है तब चक्र, भाला, तलवार, लकड़ी आदि से मारे जाने वाले को कितना कष्ट होगा ?

महाभारत शांतिपर्व उत्तरार्द्ध मोक्ष धर्म अ० ६२—

सुराः मत्स्याः पशोर्मांसं द्वीजी दानां बलिस्तथा ।
धूर्तः प्रवर्तितं हेयं तन्न वेदेषु कथ्यते ॥४०॥

भावार्थ—मदिरा, मछली, पशु का मांस तथा बलिदान धूर्तों ने बताया है, वेदों में इनका निषेध कहा गया है।

(३) भागवत स्कंध ३ अ० ७—

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥

भावार्थ—हे अकलंक ! सर्व वेद, यज्ञ, तप, दान उस मनुष्य के पुण्य के लिये अंशमात्र भी नहीं हैं, जो जीवों को अभयदान देकर रक्षा करते हैं।

(४) हिंदू पद्मपुराण—शिवं प्रति दुर्गा—

मदर्थं शिव कुर्वीत तामसा जीवघातनं ।
आकल्पकोटिनिरये तेषां वासो न संशयः ॥
यज्ञे यज्ञपशुं हत्वा कुर्यात् शोणितकर्दमं ।
स पचेन्नरके घोरे यावद्रोमाणि तस्य वै ॥
देवतान्नरमन्नाम त्यागेन स्वेच्छयाऽथवा ।
हत्वा जीवांश्च यो भक्षेत् नित्यं नरकमाप्नुयात् ॥
मम नाम्ना तु या यज्ञे पशुहत्यां करोति यः ।
कापितन्निष्कृतिर्नास्ति कुंभीपाकमवाप्नुयात् ॥

भावार्थ—हे शिव ! (दुर्गादेवी कहती है) मेरे लिये जो कठोर भाव वाले तामसी मानव जीवों का घात करते हैं वे करोड़ों कल्पों तक नरक में रहेंगे, संशय नहीं। जो कोई यज्ञ में यज्ञ के पशु को

मारकर रुधिर की कीच करता है वह घोर नरक में तब तक रहेगा जितने रोम उस पशु में हैं। जो कोई मेरे नाम से या अन्य देवता के नाम से या अपनी इच्छा से जीवों को मारकर खाता है वह नित्य नरक को पावेगा। मेरे नाम से या यज्ञ में जो पशु की हत्या करता है वह नरक में पड़ेगा। उसका निकलना कठिन है।

विश्वसार तंत्र में—

सा माया प्रकृती देवी यद्धि माता च कथ्यते।
यद्धि माता इमे सर्वे येमे स्थावरजंगमाः॥
मम नाम्नि पशुं हत्वा वधभागी भवेन्नरः।
एतत्तत्वं न जानाति माता किं भक्षयेत्सुतान्॥
धर्ताकर्ता ततो सृष्टा सप्तजन्मानि शूकरः।
गृद्धिनी पंच जन्मानि दशजन्मानि छागलः॥

भावार्थ—देवी माया स्वभाव वाली है, वह माता है और ये सब स्थावर त्रस जंतु इसके पुत्र हैं। जो मानव मेरे नाम से पशु को मार कर हिंसा का भागी होता है वह नहीं जानता है कि क्या माता अपने पुत्रों का भक्षण करेगी?

जो कोई पशु को पकड़ने वाला, मारने वाला व लाने वाला है वह सात जन्म शूकर, पांच जन्म गिद्ध व दस जन्म बकरा होगा।

अगस्त्य संहितामें दुर्गा प्रति शिवः।

अहम् हि हिंसको अतो हिंसा. मे प्रियः इत्युक्त्वा

आवाभ्यां पिहितं रक्तं सुराश्च वर्णाश्रमोचित्तंधर्ममवि-चार्यर्पियन्ति ते भूतप्रेतपिशाचाश्च भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥

भावार्थ—शिव जी दुर्गा से कहते हैं कि मैं हिंसक हूँ, हिंसा मुझ को प्यारी है, ऐसा कहकर हम दोनों के नाम से जो कोई मांस, खून व मदिरा वर्णाश्रम के उचित धर्म को न विचार कर अर्पण करते हैं, चढ़ाते हैं, वे मर के भूत, प्रेत, पिशाच व ब्रह्म-राक्षस होते हैं।

परमहंस परिव्राजक शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं—

ता० २७ सितम्बर १६१६ को माधवबाग बम्बई में बम्बई जीवदया मण्डल की सभा हुई थी, तब जगद्गुरु शंकराचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। वहाँ पर यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से प्रसार हुआ था—

जो धार्मिक पशु हिंसा किसी राज्य में या जाति में प्रचलित हो तो उसको कायदे से या जाति की सत्ता से राज्य में व प्रजा में बन्द कर दी जावे। ऐसी विशेष आज्ञा गुरुस्थान से की जाती है।

ईसाई मत में भी धर्म के नाम से पशुबलि की मनाई है—

Hebrews Ch. 9-12

Neither by the blood of goats and calves but by his own blood he entered at once into the holy place, having obtained enternal redem-ption.

Ch. 10-4-For it is not possible that the blood of bulls and goats should take away sins.

भावार्थ—हेबरू कहते हैं कि बकरों व बछड़ों के खून से नहीं किन्तु अपने ही परिश्रम से वह पवित्र स्थान में गया है और नित्य मुक्ति को पा लिया है। क्योंकि यह संभव नहीं है कि बैलों का या बकरों का रुधिर पापों को धो सकेगा।

पारसी मत में भी पशु घात की मनाई है—

Jartusht Namas P. 415

He will not be acceptable to God, who shall thus kill any animal. Angel Asfundarmad says:

"O holy man, such as the commands of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth and carrior."

भावार्थ—इस तरह जो कोई किसी पशु को मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगंबर एसफंदर मद ने कहा है - ऐ पवित्र मानव ! परमात्मा की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल व मांस से पवित्र रक्खा जावे।

(जुर्तस्तनामां द्र + ६५)

(३) मुसलिम धर्म में भी पशुबलि की मनाई है, देखो कुरान अंग्रेजी उल्था —

The Koran translated from the Arabic by Rev. James Rodwell M. A. London 1924.

(607) S -22-By no means can this flesh reach into God neither their blood but piety on your part reaches there.

भावार्थ--किसी भी तरह बलि किये ऊँटों का मांस परमात्मा को नहीं पहुँचता है न उनका खून। परन्तु जो कुछ धर्म तुम पालोगे वही वहां पहुँचता है।

सर्व ही धर्मों के नेताओं का मत जीवदया है, हिंसा नहीं। इसलिये धर्म के नाम से कभी पशुबलि न करनी चाहिए। यह संकल्पी हिंसा है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है—

धर्मो हि देवताभ्यः प्रभवति ताभ्यः प्रदेयमिह सर्वम्।
इति दुर्विवेककलितां धिषणां न प्राप्य देहिनो हिंस्याः।८०।

भावार्थ—धर्म देवताओं से बढ़ता है, उनको सब कुछ चढ़ा देना चाहिये। ऐसी खोटी बुद्धि को धार कर प्राणियों का घात न करना चाहिए।

आरम्भी उद्योगी और विरोधी में होने वाली हिंसा का परिहार—

गृहस्थ संसार में रहते हुए आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा से बच नहीं सकता, परन्तु संकल्पी हिंसा से पूर्ण त्यागी होता है। और साधु संकल्पी और आरंभी, उद्योगी तथा विरोधी चारों हिंसाओं से विरक्त रहता है।

इस संकल्पी हिंसा के बिना जो उद्यमी, गृहारंभी, और विरोधी इन तीन हिंसा के द्वारा होने वाले पाप समूह को नाश करने के लिये गृहस्थ अपने परिणामों को शुभकर्म के संचय करने के लिये प्रतिदिन षट्कर्म क्रिया को अपना कर्त्तव्य समझ कर रोज भगवान् जिनेन्द्र की पूजा, दर्शन, शास्त्र स्वाध्याय, शक्ति के अनुसार संयम, तप, दान, गुरु की उपासना अर्थात् सत्पात्र दान इत्यादि क्रिया को करते हुए अपने द्वारा तीनों हिंसाओं से किये हुए पापों के प्रति भगवान् के सामने ग्लानि या आलोचना प्रायश्चित लेकर क्षमा याचना करता है कि हे भगवन् ! इस संसार में ऐसे पाप मेरे हाथों से पुन: २ न हों, ऐसे प्रार्थना करके किये हुए पापों के प्रति क्षमा मांगता है ।

भावना कैसी होनी चाहिये ।

अर्हन्त परमात्मा की प्रतिमा का दर्शन, पूजन, ध्यान करते हुए अपने मन के विचार उस वीतराग प्रतिमा के अनुसार राग, द्वेष, मोह, ममता रहित अपने आत्मा को शुद्ध करने का बाहर साधन है ।

वीतराग. शान्त मूर्ति का दर्शन, पूजन, विचार करने से जो परिणाम निर्मल होते हैं, उनसे अशुभ (दुःखदायक) कर्म छूट जाते हैं, या वे बदल कर शुभ (सांसारिक सुखदायक) हो जाते हैं, अशुभ कर्मों की शक्ति क्षीण होती है और शुभ कर्मों का बल बढ़ जाता है । इस ढंग से आत्म शुद्धि के साथ साथ सांसारिक सुख, शान्ति की विधि भी बन जाती है, क्योंकि शुभ कर्मों के उदय से ही सुखदायक पदार्थों का समागम हुआ करता है ।

आत्मा के परिणामों को शुद्ध या (मंद कषाय रूप) शुभ

करने के सिवाय भगवान् की मूर्ति और कुछ नहीं देती, न दे सकती है। इस कारण वीतराग भगवान् का दर्शन, पूजन, चिंतवन, भक्ति करने का लक्ष्य आत्मा को शुद्ध शान्त निर्विकार वीतराग बनाने का ही रखना चाहिये।

सांसारिक सुख की प्राप्ति--

जिस प्रकार किसान अन्न उत्पन्न करने के लक्ष्य से बहुत परिश्रम करके खेती करता है तदनुसार उसको गेहूं, चना आदि अन्न तो खेती से मिल ही जाता है, परन्तु साथ ही अनचाहा बहुत सा भुस भी प्राप्त हो जाता है इसी तरह अर्हन्त परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन पूजन का मुख्य लक्ष्य उन जैसा पूर्ण शुद्ध परमात्मा बनने का होता है, परन्तु सांसारिक राग भाव घटने से और धार्मिक राग होने से शुभ कर्मों का बन्ध बिना चाहा भी स्वयं हो जाता है, उस शुभ कर्म के उदय से सांसारिक सुख के साधन स्वर्ग, धन, परिवार, मित्र आदि सामग्री स्वयं मिल जाती है।

अतः भगवान् के दर्शन, चिन्तवन आदि का उद्देश्य अपने आत्मा के ज्ञान, दर्शन सुख, शांति, संतोष, निर्भयता, धीरज आदि गुणों से विकसित करने का ही रखना चाहिये। क्योंकि आत्मा को सच्चा सुख और शान्ति अपने गुणों के विकास होने से ही मिलती है। भक्त स्त्री पुरुषों की आत्मा में उन गुणों का ज्यों २ विकास होता जायगा त्यों २ मन्द कषाय होने से सांसारिक सुख साधन देने वाले शुभ कर्म बंधते जावेंगे।

मन्दिर क्या है ?

तीर्थंकर जब अर्हन्त (वीतराग सर्वज्ञ) हो जाते हैं उस समय

उनका दिव्य उपदेश कराने के लिये देवों द्वारा समवशरण नामक एक बहुत विशाल और बहुत सुन्दर सभा मण्डप बनाया जाता है। उस समवशरण के बीच में दिव्य सिंहासन पर (उससे चार अंगुल ऊँचे अधर) भगवान् बैठ कर उपदेश देते हैं। देव भक्ति वश उनके सिर पर तीन छत्र लगाते हैं, चमर ढोरते हैं, मंगलीक बाजे बजाते हैं, उनकी पीठ के पीछे भामण्डल होता है। प्रायः उसी के अनुकरण (नकल) रूप में मंदिर बनाया जाता है। वीतराग प्रतिमा को विराजमान करने के लिये सिंहासन तथा उनके ऊपर छत्र, पीछे भामण्डल, चमर आदि की योजना की जाती है।

अर्हन्त प्रतिमा बनाने की विधि के अनुसार सिंहासन, छत्र, चमर (ढोरते हुए दोनों ओर यक्ष), भामण्डल आदि प्रातिहार्य प्रतिमा के साथ ही उसी धातु के बनने चाहियें, जैसा कि प्राचीन प्रतिमाओं के साथ अनेक स्थानों पर है। उस दशा में अलग सिंहासन आदि की योजना नहीं की जाती। जिन प्रतिमाओं के साथ उकेरे हुए छत्र आदि नहीं होते, उनके लिये छत्र, चमर, भामण्डल, सिंहासन आदि की योजना पृथक् रूप से की जाती है।

इस तरह मन्दिर समवशरण का बहुत कुछ अनुकरण है और छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल आदि प्रातिहार्यों का अनुकरण है। परमात्मा का परम महत्व प्रकट करने के लिये तथा भगवान् के ऊपर (छत पर) जन साधारण का पैर न पड़ने पावे इस अभिप्राय से मन्दिर का ऊँचा शिखर बनाया जाता है। जिसको दूर से देखते ही पूज्य पवित्र स्थान मन्दिर का पता लग जाता है, और हृदय में पवित्र भाव उदय होने लगते हैं।

मन्दिर की विनय –

परमशुद्ध अर्हन्त प्रतिमा के विराजमान होने से मन्दिर एक पवित्र स्थान होता है, उसको नव देवताओं (५ परमेष्ठी, जिनप्रतिमा जिनमंदिर, जिन वाणी, और जिनधर्म) में से एक देवता माना गया है, अतः मन्दिर का भी सन्मान करना चाहिये उसको पवित्र रखना चाहिये। जिस तरह तीर्थंकरों, मुनियों आदि के तपस्या करने के तथा मुक्त होने के स्थान पवित्र और वंदनीय तीर्थ स्थान माने जाते हैं, उन स्थानों की बन्दना करते समय उन तीर्थंकरों तथा तपस्वियों का चिन्तवन बन्दना करने से मन पवित्र होता है, ठीक वैसी ही बात मन्दिरों के विषय में है। मन्दिर भी भगवान् की मूर्ति तथा जिनवाणी विराजमान होने से पवित्र स्थान होते हैं, आत्मा को पवित्र करने के लिये धर्म स्थान हैं। अतः मन्दिर का भी सन्मान विनय करना चाहिये।

मन्दिर का विनय यही है कि स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहन कर पवित्र भावना से मन्दिर में आवें। भगवान् के सामने जाने से पहले पैरों को भी जल से धो लेवें। हर्ष और विनय के साथ भीतर प्रवेश करें और वहाँ जब तक रहें, भगवान् का दर्शन, स्तवन, पूजन, सामायिक, स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्य करते रहें, जब अपनी सुविधा (फुर्सत) के अनुसार इन धर्म कार्यों को कर चुकें तब मन्दिर से बाहर आ जावें। शान्ति के साथ वहाँ से चले जावें।

मन्दिर में घर गृहस्थाश्रम की चर्चा करना, किसी व्यक्ति की निन्दा प्रशंसा करना, असत्य बोलना, चोरी करना, किसी स्त्री, पुरुष को कुदृष्टि से देखना, व्यर्थ बकवाद करना, थूकना, भोजन

करना, खेलना, आदि कार्य कभी न करने चाहियें। ऐसे कार्य करने से बहुत पाप बन्ध होता है, धर्म साधन के लिये मन्दिर में आये हुए अन्य स्त्री पुरुषों को भी क्षोभ होता है, अतः मन्दिर की पवित्रता सुरक्षित रखने के लिये वहाँ कोई अनुचित बात न करनी चाहिये।

हमारा लक्ष्य—

जो स्त्री पुरुष संसार की अशान्ति, व्याकुलता, वेदना, अज्ञान से छूटना चाहते हैं, उनका लक्ष्य वह परमात्मा ही होता है क्योंकि पूर्ण आत्मशुद्धि होकर ही जन्म, मरण, अज्ञान, दुःख, क्लेश दूर हो सकते हैं, अतः अपने आपको पूर्ण शुद्ध, निर्विकार, वीतराग, परमात्मा बनाना ही बुद्धिमान स्त्री पुरुष का लक्ष्य हो सकता है।

लक्ष्य प्राप्त करने का साधन—

अपने आत्मा को पूर्ण शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा बनाने के लिए अपनी दृष्टि बाहर से, यानी संसार की ओर से हटा कर अन्तरंग यानी आत्मा की ओर करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही शरीर, पुत्र, मित्र, धन आदि से मोह ममता दूर होती है।

इस कार्य को सिद्ध करने के लिए एक तो आत्मा और अनात्मा (जड़ पदार्थ, शरीर, धन, मकान आदि) तथा महात्मा, परमात्मा का, कर्म बन्धन करने, मुक्ति होने आदि बातों का आवश्यक ज्ञान होना चाहिये। उस ज्ञान के अनुसार अपनी श्रद्धा (विश्वास) अटल हो जानी चाहिये। आत्म श्रद्धा ही सत्यज्ञान

को स्थिर रखने की भूमि है, और आत्मश्रद्धा हो जाने पर उसके अनुरूप ही आत्मा को संसार से छुटाने के लिये क्रिया (चरित्र) होने लगती है।

किन्तु आत्म श्रद्धा को अटल बनाने के लिये बाहरी साधन या आश्रय (अवलम्बन-सहारा) होना भी आवश्यक है क्योंकि जो मन सदा बाहरी वस्तुओं में भटकता है उसको आत्ममुख (आत्मा की ओर) करने के लिये साधन भी बाहर का ही ठीक रहता है। यह बाहरी साधन है वीतराग परमात्मा की मूर्ति।

प्रतिमा की आवश्यकता—

मन को बाहरी पदार्थों में उलझाने का कार्य स्पर्शन इन्द्रिय अन्य पदार्थों (वस्त्र, भूषण, तेल तथा स्त्री पुरुष के शरीर आदि) को छूकर, रसना इन्द्रिय भोजन-पान आदि का स्वाद लेकर नासिका इन्द्रिय सूंघ कर, नेत्र इन्द्रिय अन्य पदार्थों का रूप रंग देखकर और कान अच्छे स्वर गीत शब्द सुन करके करते हैं। मन भी इन्द्रियों के विषय भोगों में सदा उलझा रहता है।

इस उलझाने का काम सब से अधिक नेत्र इन्द्रिय करती है क्योंकि अन्य इन्द्रियों को तो अपनी विषय वस्तु कभी २ मिला करती है परन्तु नेत्रों को तो अपने लिये देखने के पदार्थ सदा मिलते रहते हैं। जागते समय तो आँखें संसार की बाहरी वस्तुओं को देखती हैं किन्तु सो जाने पर भी शरीर के बाहरी नेत्र बन्द रह कर भी जीवके सोते हुए भीतरी नेत्र काम करते हैं जिसके प्रभाव से स्वप्न दोष आदि कार्य हो जाते हैं। उस कारण मन को सुलझाने केलिए विशेष रूप से नेत्र इन्द्रिय को सुलझाना चाहिये।

नेत्र जिस तरह जीवित सुन्दर स्त्री पुरुष को देखने के लिये लालायित रहते हैं इसी तरह निर्जीव सुन्दर स्त्री पुरुषों के चित्र मूर्ति आदि देखने के लिये भी आकर्षित (खिंचते) हुआ करते हैं। चलचित्र (सिनेमा) में जड़ छाया चित्र ही दीख पड़ते हैं। उस सिनेमा को देखकर ही मन में अनेक तरह की तरंगें उठा करती हैं। कामी स्त्री पुरुष अपनी काम वासना जाग्रत रखने के लिये कामातुर स्त्री पुरुषों के चित्र अपने यहाँ सजा कर रखते हैं, त्यागी विरागी अपने यहाँ साधु महात्माओं के चित्र सजाते हैं, सरकार अपने देश के नेताओं तथा वीरों की मूर्तियां सर्वसाधारण स्थानों पर स्थापित करती है।

तदनुसार मन को अन्तर्मुख (आत्मा की ओर) करने के लिए शुद्ध बुद्ध परमात्मा की मूर्ति नेत्रों के लिए कार्यकारी है। क्योंकि आत्मा का जो स्वरूप (धीर, वीर, गम्भीर, शान्त, राग-द्वेष रहित, स्वात्म लीन) शास्त्रों में पढ़ा जाता है उसको समझने के लिए वैसी मूर्ति भी तो आँखों के सामने आनी चाहिए। जैसे कि भूगोल का ज्ञान मानचित्र (नक्शे) के बिना देखे नहीं हुआ करता। हाथी, सिंह आदि की शक्ल सूरत का ज्ञान कराने के लिये तथा पूर्वज (मृतक) पुरुषों का बोध कराने के लिए तथा सिंह, व पूर्वज स्त्री पुरुषों के चित्र मूर्ति आदि दिखलाने आवश्यक होते हैं। इसी तरह अपने लक्ष्य परमात्मा का ज्ञान कराने के लिए परमात्मा की वीतराग मूर्ति की आवश्यकता है।

वीतराग प्रतिमा को देखकर ही मन में यह भावना जगती है कि अपने आप को बाहरी वस्तुओं के सम्पर्क से अलग रखकर इस

अर्हन्त परमात्मा की मूर्ति की तरह शान्त, धीर, निर्भय होने के लिये आत्मा को लीन होना चाहिये। ऐसा हुए बिना सांसारिक व्याकुलता दूर न हो सकेगी।

इन क्रियाओं को करने वाले पुरुष को सप्त व्यसन का भी त्याग कर देना चाहिए। यह सातों व्यसन हमेशा पाप की तरफ खींचते वाले हैं इनके त्याग बिना मनुष्य सच्चे अहिंसा धर्म का अधिकारी नहीं बन सकता है।

सातों व्यसनों के त्याग का वर्णन

जूआ खेलना, मांस भक्षण करना, शराब पीना, वेश्या सेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और पर स्त्री सेवन करना ये सातों महा पाप 'व्यसन' कहलाते हैं। बुद्धिमान विद्वानों को इन सातों व्यसनों का त्याग अवश्य कर देना चाहिये।

जूआ त्याग—

जिस क्रिया में खेलने के पासे डाल कर धन की हार जीत होती है वह सब जूआ कहलाता है अर्थात हार जीत की शर्त लगाकर तास खेलना, शतरंज खेलना, नक्कीमूठ खेलना आदि सब जूआ कहलाता है। यह जूआ खेलना संसार भर में प्रसिद्ध है। उसी समय महा अशुभ कर्मों का बंध करने वाला है और समस्त आपत्तियों को उत्पन्न करने वाला है ऐसा समझ कर धर्म में प्रेम करने वाले श्रावकों को इसका त्याग अवश्य कर देना चाहिये। जो लोग इस जूआ में लीन हुए हैं वे सब नष्ट हुए हैं। राजा युधिष्ठिर को इस जूए खेलने के ही कारण अनेक आपत्तियां

उठानी पड़ी थीं। जूआ खेलने वालों को अनेक आपत्तियां उठानी पड़ीं और अनेक दुःख भोगने पड़े। इन सब चरित्रों को कहने वाली बहुत सी कथाएं हैं। इस जूआ खेलने का फल प्रति दिन सुना जाता है और प्रति दिन देखा जाता है। इस जूआ खेलने से लोग दरिद्र हो जाते हैं। उनके अंग उपांग काटे जाते हैं तथा और भी अनेक प्रकार के दुःख उन्हें भोगने पड़ते हैं। इस जूआ खेलने को एक ही व्यसन नहीं समझना चाहिये और न इसे छोटा सा व्यसन समझना चाहिये। किन्तु यह जूआ खेलने का व्यसन चोरी आदि सब व्यसनों का स्वामी है इसमें किसी प्रकार संदेह नहीं है। इस जूआ खेलने के त्यागरूप व्रत के कितने ही अतिचार हैं जो कि जूआ खेलने के ही समान हैं। इस लिए सम्यग्दर्शन के मार्ग में लगे हुए तीव्र बुद्धि श्रावकों को इन अतिचारों का त्याग भी अवश्य कर देना चाहिये। जैसे अपने अपने व्यापार के कार्यों के सिवाय कोई भी दो पुरुष परस्पर एक दूसरे की ईर्ष्या से किसी भी कार्य में एक दूसरे को जीतना चाहते हों तो उन दोनों के द्वारा उस कार्य का करना भी जूवा खेलने का अतिचार कहलाता है। व्यापारी लोग जो एक दूसरे से बढ़-चढ़कर व्यापार करना चाहते हैं वा करते हैं वह तो अतिचार नहीं है परन्तु व्यापार को छोड़कर अन्य किसी भी काम में हार-जीत की इच्छा रखकर परस्पर की ईर्ष्या से उस काम को करना जूआ खेलने का अतिचार है। जैसे—मैं यहाँ से इस स्थान में दौड़ना प्रारम्भ करता हूं तू भी मेरे साथ दौड़ लगा। हम दोनों में से जो मैं आगे निकल जाऊँगा तो तुझ से अपनी यह इच्छा पूरी कर लूँगा। तुझ से इतने रुपये ले लूंगा या यह पदार्थ ले लूंगा, इसी प्रकार

यदि तू आगे निकल जायगा तो मैं तुझे इतने रुपये दूंगा या यह पदार्थ दे दूंगा। इस प्रकार की शर्त लगाकर दौड़ना या और कोई ऐसा ही काम करना जूआ का अतिचार है।

मांस त्याग---

अब आगे मांस खाने से क्या फल मिलता है उसको बतलाते हैं सो सुनो। सिद्धान्त शास्त्रों से यह बात सिद्ध है कि मांस का एक अंशमात्र भी भक्षण करने से समस्त जीवों के भाव सब ओर से संक्लेश रूप हो जाते हैं। मांस भक्षण करने वालों के परिणाम सदा क्रूर और संक्लेशरूप रहते हैं उनके परिणामों में स्वाभाविक क्रूरता आ ही जाती है और फिर वे हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापों के करने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। क्रूर और संक्लेश परिणाम होने के कारण उन परिणामों में फिर व्रत धारण करने योग्य कोमलता कभी नहीं रह सकती तथा उन परिणामों में तीव्र कर्मरूप शक्ति के बनने का उल्लंघन कभी नहीं होता है। मांस भक्षण करने वाला व्रत कभी धारण नहीं कर सकता क्योंकि उसके परिणाम कभी कोमल व दयारूप हो ही नहीं सकते। मांस भक्षण करने से परिणामों में सदा क्रूरता बनी रहती है। तथा उदयरूप और कठोर परिणाम होने से उसके सदा तीव्र कर्मों का बंध होता रहता है। इसलिये श्रावकों को मांस त्याग के सब दोष छोड़ देने चाहियें। कदाचित् यहाँ पर कोई यह शंका करे कि मांस में ऐसी क्या बात है जो उसके भक्षण करने से परिणामों में सदा संक्लेशता बनी रहती है? सो इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक पदार्थ की शक्तियां अचिन्त्य हैं और वे अनादिकाल से चली आ

रही हैं और अनन्तकाल तक बराबर बनी रहेंगी । इसमें किसी भी कुतर्की को किसी प्रकार का कुतर्क नहीं करना चाहिये क्योंकि जो जिसका स्वभाव है उसमें किसी का तर्क चल नहीं सकता। जिस प्रकार गिलोय कड़वी होती है अथवा ईख मीठी होती है। इसमें किसी का तर्क चल नहीं सकता कि ईख मीठी ही क्यों होती है, गिलोय कड़वी क्यों होती है। इस क्यों का संसार में कोई उत्तर नहीं है क्योंकि गिलोय का कड़वा होना और ईख का मीठा होना उसका स्वभाव है। जो जिसका स्वभाव है उसमें किसी का कोई तर्क नहीं चल सकता। इसी प्रकार मांस का ऐसा ही स्वभाव है अथवा मांस भक्षण करने वालों का ऐसा स्वभाव हो ही जाता है। अथवा जिस प्रकार चुम्बक पत्थर और सूई दोनों अलग २ पदार्थ हैं परन्तु दोनों के मिलने से एक ऐसी विभाव रूप शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे कि चुम्बक पत्थर सूई को अपनी ओर खींच लेता है अथवा सूई चुम्बक पत्थर की ओर खिचकर चली जाती है। उसी प्रकार जीव अलग पदार्थ है और मांस अलग पदार्थ है परन्तु जीव में एक वैभाविक नाम की ऐसी शक्ति है जो उस जीव के साथ मांस का संयोग होने पर (मांस भक्षण कर लेने पर) तीव्र बंध का कारण होती है। कदाचित् यहाँ पर कोई यह शंका करे कि शुभ अशुभ बंध करने वाले परिणाम जीव के ही होते हैं उसमें बाह्य वस्तु कोई कारण नहीं है। बाह्य पदार्थ तो अकिंचित्कर हैं वे कुछ नहीं कर सकते, इस का भी अभिप्राय यह है कि मांस के भक्षण करने से जीव के परिणाम में कोई अंतर नहीं पड़ना चाहिये। मांस तो बाह्य पदार्थ है और बाह्य पदार्थ जीव के परिणामों में कारण नहीं होना चाहिये परन्तु यह शंका करना ठीक नहीं है। क्योंकि धतूरा आदि खा

लेने से जीव की इन्द्रियों में विकार हो ही जाता है। जिस प्रकार धतूरा बाह्य पदार्थ है उसके खा लेने से इन्द्रियों में विकार हो ही जाता है यह बात प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है उसी प्रकार मांस भक्षण करने से जीव के परिणामों में तीव्र बंध करने योग्य क्रूरता आ ही जाती है। लिखा भी है—गुण दोषों के उत्पन्न होने में जो बाह्य पदार्थ निमित्त कारण पड़ते हैं वे अभ्यन्तर मूल कारण के होने से ही निमित्त कारण होते हैं अर्थात् अभ्यन्तर कारण मुख्य कारण है और बाह्य पदार्थ गौण कारण है। तथा कहीं कहीं पर केवल अन्तरंग कारण से ही कार्य सिद्धि हो जाती है। अतएव आत्मा जो आत्मा में लीन होती है उसका कारण केवल अन्तरंग कारण हैं। उसके लिए बाह्य कारण की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार मांस भक्षण करने से इस जीव के परिणाम संक्लेशरूप अवश्य होते हैं तथा संक्लेश परिणाम होने से असाता वेदनीय का बंध होता है। असाता वेदनीय का बंध होने से संसार में परिभ्रमण होता है और संसार में परिभ्रमण होने से दुःख उत्पन्न होता है। इस प्रकार मांस भक्षण करना अनन्त काल तक अनन्त दुःखों का कारण है।

इस प्रकार ऊपर जो कुछ मांस भक्षण के दोष बतलाये हैं उनको जानकर और उन पर बार २ श्रद्धान कर धर्म का स्वरूप जानने वाले अनेक श्रावकों को उन अतिचारों का त्याग अवश्य कर देना चाहिये।

मद्यत्याग—

अब आगे जिसने मद्य का त्याग कर दिया उसके लिये उसके अतिचार छोड़ने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार सुवर्ण की कालिमा हटा देने से सुवर्ण शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार मद्य

के अतिचारों का त्याग कर देने से श्रावक अत्यन्त शुद्ध होजाता है। जिन अल्पज्ञानी जीवों के इन्द्रिय जन्य ज्ञान है वे जीव मद्यपान करने से उन्मत्त रूप हो जाते हैं अर्थात् मद्यपान (नशीली चीजों का खाना पीना) इन्द्रियों को धारण करने वाले संसारी जीवों को उन्मत्तता का कारण है इसीलिये वह मद्य कहलाता है। तथा मद्यपान करने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि अशुभ कर्मों का बंध होता है इसलिये वह पाप का कारण है। भांग, अहिफेन (नागफेन), धतूरा, खसखस के दाने आदि (चर्स गांजा) जो जो पदार्थ नशा उत्पन्न करने वाले हैं वे सब मद्य के समान ही कहे जाते हैं। ये सब पदार्थ तथा इनके समान और ऐसे पदार्थ जो कि मद्य के समान नशा उत्पन्न करने वाले हैं वे सब पदाथ अपने आत्मा का कल्याण करने के लिये बुद्धिमान् गृहस्थ को छोड़ देने चाहियें। भंग, धतूरा, चर्स, गांजा आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना मद्य त्याग के अतिचार हैं। श्रावकों को इनका त्याग अवश्य कर देना चाहिये। इस मद्य के सेवन करने से तथा भांग, धतूरा, खसखस आदि मद्य त्याग के अतिचार रूप नशीले पदार्थों के सेवन करने से पहले तो बुद्धि भ्रष्ट होजाती है फिर मिथ्याज्ञान होता है, माता बहिन आदि को भी स्त्री समझने लगता है। तथा इस प्रकार का मिथ्याज्ञान होने से फिर रागादिक उत्पन्न होते हैं, रागादिक उत्पन्न होने से फिर व्यभिचार सेवन, अभक्ष्य भक्षण वा अन्य अन्याय रूप क्रियाएं उत्पन्न होने लगती हैं तथा व्यभिचार सेवन वा अभक्ष्य भक्षण करने से इस संसार का जन्ममरण रूप परिभ्रमण बढ़ता है और जन्म मरण रूप परिभ्रमण बढ़ने से इस जीव को सदा संक्लेश वा दुःख उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये नशीली सब

चीजों का त्याग कर देना ही इस जीव के लिये कल्याणकारी और सुख देने वाला है।

वेश्या का त्याग——जो स्त्री केवल धन के लिये पुरुष का सेवन करती है उसको वेश्या कहते हैं ऐसी वेश्याएं संसार में प्रसिद्ध हैं। उन वेश्याओं को दारिका, दासी, वेश्या वा नगरनायिका आदि नामों से पुकारते हैं। जो मनुष्य अपने आत्म कल्याण के लिये प्रयत्न करना चाहते हैं और मद्य मांस आदि के समस्त दोषों को त्याग कर देना चाहते हैं उनको इस वेश्या सेवन का त्याग अवश्य कर देना चाहिए। ऐसे पुरुषों के लिये पूर्णरूप से वेश्या सेवन का त्याग कर देना ही कल्याणकारी है। वेश्या सेवन करने से न तो मद्य मांस के दोष दूर हो सकते हैं और न आत्मा का कल्याण हो सकता है। इस लिए इन दोनों की इच्छा करने वालों को वेश्या सेवन का त्याग अवश्य कर देना चाहिये। वेश्या सेवन करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं तथा मनुष्यों को नरकादिक दुर्गतियों में पड़ना पड़ता है यदि इन परलोक के दुःखों की उपेक्षा भी करें तो जिन का हृदय वेश्या सेवन में लीन हो रहा है उनको इस जन्म में ही निश्चय से नरक की अनेक यातनाएँ व अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। उनके लिये यह लोक ही यह जन्म हीं नरक बन जाता है। लिखा भी है—

या खादन्ति पलं पिवन्ति च सुरां जल्पन्ति मिथ्यावचः
स्निह्यन्ति द्रविणार्थमेव विदधत्यर्थप्रतिष्ठा क्षतिम्।
नीचानामपि दूरवक्रमनसः पापात्मिका कुर्वते,
लालापानमहर्निशं न नरकं वेश्यां विहायापरम् ॥ १ ॥

रजकशिलासदृशीभिः कुक्कुरकर्परसमानचरिताभिः ।
वेश्याभिर्यदि संगः कृतमिव परलोक वार्ताभिः ॥ २ ॥

यह पापिनी वेश्या मांस खाती है, शराब पीती है, झूठ बोलती है, केवल धन के लिए प्रेम करती है अपने धन और प्रतिष्ठा का नाश करती है और कुटिल मन से वा बिना मन के नीच लोगों की लार को भी रात दिन चाटती रहती है इसलिए कहना चाहिये कि वेश्या को छोड़ कर संसार में और कोई नरक नहीं है। वेश्या ही घोर नरक है। यह वेश्या धोबी की शिला के समान है अर्थात् जिस प्रकार धोबी की शिला पर ऊंच नीच अनेक घरों के बुरे से बुरे मैल जाकर बहते हैं उसी प्रकार वेश्या के शरीर पर भी ऊंच नीच अनेक पुरुषों के घृणित से घृणित और अत्यन्त निन्दनीय ऐसे वीर्य वा लार आदि मल आकर बहते हैं अथवा जिस प्रकार धोबी की शिला बुरे से बुरे मल-मूत्र आदि के संसर्ग से स्पर्श करने योग्य नहीं रहती उसी प्रकार निन्दनीय और अपवित्र मलों के संसर्ग से वेश्या भी स्पर्श करने योग्य नहीं होती। इस प्रकार से भी वह वेश्या धोबी की शिला के समान है। इसके सिवाय वह वेश्या कुत्ते के मुंह में लगे हुए हड्डी के खप्पर के समान आचरण करती रहती है अर्थात् जिस प्रकार उस खप्पर को चबाने वाला कुत्ता उस खप्पर को चबाता है और उसके चबाने से जो मुंह के भीतरी गलपटों से रुधिर की धारा बहती है उसको वह कुत्ता समझता है यह मीठी २ रुधिर की धारा इस खप्पर से ही निकली है उसी प्रकार वेश्या सेवन करने वाला अपने धन की हानि करता है अपने शरीर की हानि करता है और फिर भी वह वेश्या के सेवन करने से आनन्द मानता है। इस प्रकार जो कुत्ते के मुंह से लगा हुआ खप्पर काम करता है वही काम वेश्या करती है, इसलिए

वेश्या कुत्ते के मुंह से लगे हुए खप्पर के समान समझनी चाहिये। ऐसी वेश्या के साथ जो पुरुष समागम करते हैं वे साथ ही साथ परलोक की बातचीत भी अवश्य कर लेते हैं। ऐसी वेश्या का सेवन करने वाले पुरुष अवश्य ही नरक जाते हैं इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। जैसे अत्यन्त प्रसिद्ध सेठ चारुदत्त ने इस वेश्या सेवन से ही अनेक प्रकार के दुःख सहे थे। इस संसार में वेश्याएं अपनी वेश्यावृत्ति से जितने पाप उत्पन्न करती हैं उन सब को कवि भी नहीं कह सकते फिर भला वीरों की तो बात ही क्या है। वेश्या सेवन करने से मनुष्यों को इसी जन्म में गर्मी उपदंश आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं यदि उनको न भी गिना जाय तो भी यह मनुष्य उस वेश्या सेवन के महापाप से अनेक जन्मों तक नरकादिक दुर्गतियों के परिभ्रमण से उत्पन्न होने वाले अत्यन्त घोर दुःख सहता रहता है। वेश्या सेवन करने वाला जन्म जन्म तक नरकादि दुर्गतियों के दुःख सहता रहता है उसको यही एक दुःख भोगना पड़ता है यह बात नहीं कहनी चाहिये। क्योंकि ऐसा कहने से वेश्या सेवन में थोड़ा दोष सिद्ध होता है। परन्तु वेश्या सेवन करना सबसे बड़ा महादोष है। जूआ खेलने के व्यसन में लीन होने का कारण यह वेश्या सेवन ही है और धर्म का नाश करने वाला यह वेश्या सेवन ही है। वेश्या सेवन के दोषों को जान लेना अत्यन्त सुगम है इसीलिये ग्रन्थकार ने इसके दोष विस्तार के साथ वर्णन नहीं किये हैं। इसके सिवाय इस वेश्या सेवन के दोष बालगोपाल तक सब लोगों में प्रसिद्ध हैं इसीलिये व्यर्थ ही अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है। इस वेश्या सेवन के त्याग रूप चतुर्थ ब्रह्मचर्याणुव्रत को धारण करने वाले पुरुषों के

लिये इस वेश्या सेवन के त्याग में भी कितने ही अतिचार लगते हैं जिनको हम समयानुसार ब्रह्मचर्याणुव्रत का वर्णन करते समय वर्णन करेंगे। इस प्रकार इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले दोषों का वर्णन कर अत्यन्त संक्षेप से वेश्या सेवन के त्याग का वर्णन किया। अब आगे शिकार खेलने का त्याग करना भी अत्यन्त प्रशंसनीय है इसलिए उसका वर्णन करते हैं ॥१३८॥

शिकार--

मौज शौक व मांस भक्षण के उद्देश्य से बेचारे निरपराधी, भयभीत वनवासी मृगादि पशु व पक्षियों को मारना शिकार कहलाता है। संसार में जैसे मानवों को जीने का हक है वैसे ही पशु पक्षियों को भी जीने का हक है जैसा कष्ट या व्याकुलता मनुष्य को अपने मारने वाले से होती है, वैसी ही व्याकुलता पशु पक्षियों को भी होती है ऐसा समझते हुए भी शिकार खेलना अति निर्दयता है।

शिकार ऐसा बुरा व्यसन है कि इसका चसका पड़ जाने पर इसका छूटना कठिन हो जाता है। बहुत बार इसका व्यसनी स्वयं भी संकट में पड़ जाता है। इसलिये इस लोक निंद्य कार्य को छोड़ अहिंसामयी वृत्ति को अपना कर जीवन को सार्थक बनाना चाहिये।

चोरी--

रखी हुई, भूली हुई, गिरी हुई, पर वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा बिना ले लेना चोरी है। चोरी करने में आसक्त हो जाना चोरी व्यसन कहलाता है। जिनको इस व्यसन की लत

पड़ जाती है, वे राजदंड भोगते हुए भी अपनी आदत को छोड़ नहीं पाते। इसके व्यसनी के पास चाहे जितना धन हो, वह महान् आपदाओं को भोगता हुआ भी इसमें रत हुआ मानव इस व्यसन को छोड़ नहीं सकता है। इसके व्यसनी मनुष्य का समाज में कोई विश्वास नहीं करता, और उसकी इज्जत, आबरू, धर्म, कर्म, सब नष्ट हो जाते हैं। और परलोक में भी कुगति को प्राप्त होता है।

पर नारी सेवन

देव, गुरु, शास्त्र व पंचों की साक्षी पूर्वक ग्रहण की हुई स्त्री के सिवाय पर-स्त्री सेवन में आशक्त होना पर-स्त्री सेवन व्यसन कहलाता है। विलासिता के वश होकर ऐसा करने से धर्म-धन और कीर्ति का तो विनाश होता ही है वरन् इसका रहस्य खुल जाने पर उस व्यक्ति को सब घृणा की दृष्टि से देखने लग जाते हैं और उसका कोई विश्वास नहीं करता। यदि उसकी स्त्री को यह भेद मालूम हो जाता है तो उसका सुमधुर गृह जीवन अशान्ति व गृह कलह का घर बन जाता है। जब कोई पुरुष किसी की स्त्री या बहन बेटी की तरफ कुदृष्टि से देखता, हँसता तथा कुचेष्टा करता है तो उसके चित्त में इतना असह्य दुःख या क्रोध उत्पन्न होता है कि वह दोषी के मारने-मरने को तैयार हो जाता है। इस प्रकार के सैंकड़ों समाचार प्रायः पत्रों में आते रहते हैं। इसके अतिरिक्त सोजाक, उपदंश आदि रोग भी साथ में लग जाते हैं अतः अनेक आपदाओं के उत्पादक इस पर-स्त्री व्यसन को छोड़ देना चाहिये। इस लोक में ये सप्तव्यसन संसार परिभ्रमण के कारण, पाप के बीज, अवगुणों की खान, अन्याय की मूर्ति तथा लोक परलोक को बिगाड़ने वाले हैं। इसलिए इनको छोड़ देना चाहिये।

सेवाधर्म अहिंसा का अंग है

अहिंसा के दो भाग हैं—एक तो प्राणियों के प्राणों की हानि नहीं करना। दूसरे उनके प्राणों की रक्षा करना या उनके जीवन निर्वाह में व उनकी उन्नति में अपनी शक्तियों से सहायक होना। इस दूसरे काम के लिये सेवा बुद्धि की जरूरत है। धर्म उसे ही कहते हैं जिससे उत्तम आत्मीक भीतरी सुख मिले। जितना जितना मोह का त्याग होगा सच्चा सुख भीतर से झलकेगा। जब किसी बात की कामना नहीं करके सेवा की जाती है, कोई लोभ या मान नहीं पोषा जाता है, केवल विश्व प्रेम या करुणा-भाव से प्रेरित होकर दूसरों का कष्ट निवारण किया जाता है या उनके लिये अपने माने हुए धन-धान्यादि पदार्थ से मोह त्यागा जाता है तब यकायक भीतरी सुख झलक आता है, बिना चाहते हुए भी सुख - स्वाद आता है। इसलिये निःस्वार्थ या निष्काम सेवा को धर्म कहते हैं। मानव विवेकी होता है, सच्चे सुख का ग्राहक होता है, तब हर एक मानव को निःस्वार्थ सेवाधर्म पालना ही चाहिये। मानव सब प्रकार के प्राणियों में श्रेष्ठ है, बड़ा है। बड़े का कर्त्तव्य है कि वह सबकी सेवा करे। जो सेवा करता है वह बड़ा माना जाता है। सूर्य के आताप से जगत भर को लाभ पहुँचता है, वह बड़ा माना जाता है। जगत में उनकी पूजा व मान्यता होती है, जो परहित में कष्ट सहते हैं व दूसरों का उपकार करते हैं।

सेवाधर्म या परोपकार का पाठ किन्हीं वृक्षों से तथा नदी-सरोवरों से सीखना चाहिये। वृक्षों में अन्न फलादि फलते हैं वे स्वयं उपयोग नहीं करते हैं, वे दूसरों को ही दे देते हैं। वृक्ष में

एक ही फल बचेगा तो भी वह लेने वाले को रोकेगा नहीं। नदियाँ व सरोवरों का पानी बिना रोक टोक खेती के व पीने के काम में आता है। मानव, पशु, पत्ती, मच्छ सब काम में लेते हैं, किसी को रुकावट नहीं है। चुल्लू भर पानी भी यदि किसी तालाब में बाकी है तो भी किसी पत्ती को पीने से मना नहीं करता है। यही उदारता मानवों को सीखनी चाहिये। **'परोपकाराय सतां विभूतय:'** सज्जनों की सम्पदा परोपकार के लिये होती है। धनवानों को सीखना चाहिये कि धन गरीबों से ही जमा किया जाता है तब धन को गरीबों के उपकार में खर्च करना चाहिये, यही धन की शोभा है। हरएक मानव को अहिंसा धर्म पर विश्वास रखते हुए परोपकार करना चाहिये। जैनसिद्धान्त में चार दान बताए हैं—

(१) आहार दान—

भूखों की क्षुधा मेटने को योग्य अन्नादि प्रदान करना चाहिये।

(२) औषधि दान—

रोगों के दूर करने के लिये शुद्ध औषधियाँ बांटनी चाहियें।

(३) अभय दान—

प्राणियों के प्राणों की रक्षा करनी चाहिये। सब जीव भयवान् हैं कि कोई हमारे प्राण न लेवे, तब उनको निर्भय कर देना चाहिये।

(४) विद्यादान—

ज्ञान का प्रचार करना चाहिये।

चारों दानों के प्रचार के लिये अनाथालय, औषधालय, अस्पताल, धर्मशाला, विद्याशाला, कालेज, यूनीवर्सिटी, ब्रह्मचर्याश्रम, महिला विद्यालय, कन्याशाला आदि संस्थाओं को खोलना चाहिये। इन दानों से जगत् के प्राणियों की आवश्यकताएं पूरी होंगी।

मानवों के लिये सेवा के क्षेत्र बहुत हैं। कुछ यहाँ गिनाए जाते हैं—

(१) आत्मा की सेवा--

आत्मा में ज्ञान, आत्मबल व शान्ति बढ़ाकर इसे मजबूत व सहनशील बनाना चाहिये। जिनकी आत्मा बलवान् होती है, जो कष्टों को शान्ति से सहन कर सकते हैं वे ही परोपकार निर्भय होकर व खूब आपत्ति सहकर कर भी सकते हैं। आत्मा को उच्च बनाना जरूरी है। यही वह इंजन है जिससे परोपकार की गाड़ी चलाई जाती है। आत्मबल बढ़ाने के लिये हर एक मानव को जैसा हम पहले बता चुके हैं आत्मा का ध्यान करना चाहिये। यह आत्मा स्वभाव से परमात्मा है, ज्ञान स्वरूप है, परमशान्त है, परमानन्दमय है। आत्मीक व्यायाम से आत्मा बलवान् होता है। सवेरे शाम आत्मध्यान करे, परमात्मा की भक्ति, शास्त्र पढ़ना, सत्संगति भी आत्मा के बल को बढ़ाते हैं। हमारा वर्तन अहिंसा के तत्व पर न्याययुक्त होना चाहिये। दूसरे को ठगने का विचार न करना चाहिये। व्यवहार सत्य व ईमानदारी का होना चाहिये। हमें पांच इन्द्रियों का दास न होकर उनको वश में रखना चाहिये व उनको न्यायपथ पर चलाना चाहिये व क्रोध, मान, माया, लोभ को जीतना चाहिये। अपने सदाचार से भावों

को ऊँचा बनाना चाहिये। हमको सात व्यसनों से या बुरी आदतों से बचना चाहिये। वे सात ये हैं। (१) जूआ खेलना, (२) मांस खाना, (३) मदिरा पीना, (४) चोरी करना, (५) शिकार खेलना, (६) वेश्या भोग, (७) परस्त्री भोग।

न्याय से धन कमाना व आमदनी के भीतर खर्च रखना चाहिये। कर्जदार कभी न होना चाहिये। नामवरी के लिये अपने को लुटाना न चाहिये। अहिंसा व सत्य मित्रों के साथ वर्तना चाहिये, कष्ट पड़ने पर आत्मा को अजर अमर समझ कर साहसी व धैर्यवान रहना चाहिये। जो आत्मा के श्रद्धावान व चारित्रवान हैं वे ही सच्चे विश्वप्रेमी होते हैं। वे आत्मा के समान दूसरों की आत्माओं को भी समझते हैं। कोई दूसरों को कष्ट देना आप को ही कष्ट पहुँचाना समझते हैं। निरंतर आत्मध्यान व स्वाध्याय व पूजा भक्ति से आत्मा की सेवा करनी योग्य है।

शरीर की सेवा—

जिस शरीर के आश्रय आत्मा रहता है उस शरीर को तंदुरुस्त, काम करने में तैयार बनाए रखना जरूरी है। रोगी शरीर में रहने वाला सेवा धर्म नहीं बना सकता है। शरीर को स्वास्थ्ययुक्त बनाने के लिये तीन बातों की जरूरत है—

(१) शुद्ध खान-पान—

हवा—हमें ताजी हवा लेनी चाहिये। जहां हम बैठें व सोएं व सैर करें वहां हवा गंदी न होनी चाहिये। घर में व चारों तरफ सफाई की जरूरत है, मलमूत्र की दुर्गन्ध न आनी चाहिए। पानी छानकर देखकर पीना चाहिए। गंदगी का संदेह हो तो पानी औटा कर पीना चाहिए। भोजन ताजा शाक, अन्न फल घी दूध

का करना चाहिए। मात्रा से कम खाना चाहिए। तब भोजन पेट की जठराग्नि में भले प्रकार पक सकेगा।

हमें शराब, मांस व बासी भोजन न खाना चाहिए। भूख लगने पर खाना चाहिए। भूख न लगे तो एक दफे ही खाना चाहिए।

(२) व्यायाम—

व्यायाम का अभ्यास रोज करना चाहिए। कसरत करने से शरीर दृढ़ होता है। नाना प्रकार के दण्ड बैठक कुश्ती तलवारादि के खेल मानव के शरीर को उत्साहवान बनाते हैं। व्यायाम से शरीर का मल दूर होता है। ताज़ी हवा शरीर में प्रवेश करती है। काम पड़ने पर अपनी व पर की रक्षा कर सकता है।

(३) ब्रह्मचर्य—

वीर्य रक्षा करना, काम विकारों से बचना शरीर का परम रक्षक है। वीर्य शरीर का राजा है, भोजन का सार है, जो तीस दिन में तैयार होता है। वीर्य के आधार पर ही हाथ पग भुजा में शक्ति होती है। विद्यार्थियों को बीस वर्ष तक विवाह न कराकर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए, तब तक विवाह न करना चाहिए। स्त्रियों को १६ वर्ष तक कौमार्यव्रत पालन करना चाहिए। विवाहिता होने पर पुरुष व स्त्री को परस्पर संतोष रखना चाहिए। पर पुरुष व पर स्त्री की वांछा न करनी चाहिए। जैसे बीज को किसान अपने ही खेत में फसल पर बोता है, उसे न तो दूसरों के खेत में बोता है और न मोरियों में फेंकता है, इस तरह गृहस्थ को चाहिए कि अपने वीर्य को अपनी ही स्त्री में सन्तान के लिये काम में ले, उसका उपयोग पर स्त्रियों में व वेश्या आदि में न

करना चाहिये। ब्रह्मचर्य के बिना शरीर मजबूत फुरतीला नहीं बनेगा।

इन तीन बातों की सम्हाल करके शरीर को निरोगी, बलवान, निरालसी रखना शरीर की सेवा है।

(३) अपनी स्त्री की सेवा—

गृहस्थ पति की धर्मपत्नि परम मित्रा होती है। इसे मित्र के समान देखना चाहिए, दासी नहीं समझनी चाहिए। स्त्री यदि पढ़ी-लिखी न हो, धर्मशास्त्र, जीवन-चरित्र, समाचार पत्र न बांच सकती हो तथा उसके विचार केवल गहने कपड़ा में ही अटके रहें-वह धर्म सेवा, जाति सेवा, देश सेवा के योग्य न हो तब पति का परम कर्तव्य है कि इसे राज शिक्षा दे। पढ़ना लिखना सिखा कर उत्तम २ पुस्तक पढ़ने को दे, उसे सच्ची सेविका बना दे। वह बच्चे की माता है। यदि माता को योग्य बना देंगे-सुशिक्षिता, धर्मात्मा, परोपकारिणी बना देंगे तो उसे एक गुरानी तैयार कर देंगे, उसके गोद में पले बच्चे छोटी वय में बड़ी २ बातें सीख जायेंगे। जो शिक्षा का असर बालपन में हो जाता है वह जन्मभर रहता है। कहा है 'Mothers are builders of nation' माताएं कौम की बनाने वाली हैं। अपनी स्त्री को योग्य गृहिणी व माता बना देना स्त्री सेवा है।

(४) पुत्र पुत्री सेवा—

संतान को जन्म देना सुगम है परन्तु संतान को योग्य व शिक्षित बनाना दुर्लभ है। कन्याओं को व पुत्रों को दोनों को धार्मिक व लौकिक उपयोगी शिक्षाओं से विभूषित करना चाहिए। वे अबोध हैं, अपना हित अहित नहीं समझते हैं, उनको विद्या-

सम्पन्न, बलवान, मिष्ट हितमित सत्यभाषी, सुविचारशील मन वाले आत्मज्ञानी बनाना जरूरी है, उनको परोपकारी बनाना आवश्यक है। जब लड़की १४, १५, १६ वर्ष की हो जाय व पुत्र २० वर्ष का हो जावे तब उनके विवाह की चिन्ता करनी चाहिए। विवाह होने तक पुत्र पुत्री को अखंड ब्रह्मचर्य पालना चाहिए। पुत्री के विवाह में यह सम्हाल रखने की जरूरत है कि इसका जीवन कभी दुःखमय न हो जावे। योग्य वर तलाश करना चाहिए। वृद्ध व अनमेल पुरुष से न विवाहना चाहिए, कन्या से वर दुगने से अधिक बड़ा न होना चाहिए, रुपया लेकर अयोग्य पुरुष को विवाहना ठीक नहीं है, न पुरुष को कन्या वाले से दहेज का ठहराव करना चाहिये। कन्या का योग्य लाभ तब ही होगा जब वधू के शरीर व गुणों पर ध्यान दिया जायगा। विवाह भी साद गी से थोड़े खर्च में करना चाहिये, अधिक रुपया संतानों के पढ़ाने में लगाना चाहिए। पुत्र का विवाह करने से पहले यह भले प्रकार जान लेना चाहिए कि यह पुत्र अपने खर्च लायक आमदनी कर सकता है या नहीं। उसको कोई काम देना चाहिए। जैसे वैश्य पुत्र को कुछ माल विक्रय के लिये व माल खरीदने के लिये भेजना चाहिये, यदि वह लाभ करके आवे तो निश्चय करना चाहिये कि यह अपने कुटुम्ब को पाल सकेगा तब पुत्र का विवाह करना चाहिये। यदि कोई पुत्र विशेष विद्या पढ़ना चाहता हो व ब्रह्मचर्य पाल सके तो उसका विद्या पढ़ने तक विवाह न करना चाहिये। यही वर्ताव किसी विद्याप्रेमकारिणी कन्या से करना चाहिये। यदि कोई पुत्र व पुत्री वैराग्य व सेवा धर्म से प्रेरित होकर जन्म पर्यंत ब्रह्मचर्य पालना चाहें तो उनको इस आदर्श जीवन बिताने में बाधा न डालना चाहिये। प्रयोजन यह है कि माता पिता को

उनके बालकों से मोह न करके उनकी आत्मा से प्रेम करके उनकी सच्चा हित जिससे हो वैसा उपाय करना चाहिये। उनको स्त्री रत्न व पुरुष रत्न बना देना चाहिए। यही अपनी संतानों के साथ सच्ची सेवा है।

(५) कुटुम्ब या सम्बन्धी सेवा--

हर एक मानव के कुटुम्ब में भाई, बहन, भौजाई व उनकी सन्तानें होती हैं व दूसरे मामा, फूफा आदि सम्बन्धी रिश्तेदार होते हैं। माता व पिता के पक्ष से अनेक सम्बन्धी होते हैं इनकी भी सेवा करनी चाहिये। जिनकी आजीविका न चलती हो उनकी रोजी लगा देनी चाहिये, बीमार हो तो दवा दूध या घी का प्रबन्ध कर देना चाहिये। लड़के लड़कियों की शिक्षा में मदद देनी चाहिये। विधवा, वृद्ध, अनाथों को आवश्यक सामग्री पहुंचानी चाहिये। कोई यह न कहे कि इनके फलां रिश्तेदार हैं, यह महान् दुःखी है। बन्धुपना तब ही सफल है जब हम उनके कष्टों में काम आवें उनके लिये तन, मन, धन अर्पण करें।

(६) कौमी या जाति या समाज सेवा--

हर एक मानव किसी न किसी जाति से या समाज से या कौम से अपना सम्बन्ध रखता है। वह उसकी अपनी कौम, जाति या समाज हो जाती है। अपनी कौम को या समाज को उन्नति पर लाना और उसकी अवनति मिटाना समाज सेवा Social Service है। कौम के लिये हर कोई लड़का लड़की धार्मिक व लौकिक शिक्षा से विभूषित होजावे इसलिये स्त्रियों व पुरुषों के लिये अनेक संस्थाएं खोलनी चाहियें। इसके लिये धनवानों को धन देना चाहिये, विद्वानों को अवैतनिक या कम

वेतन लेकर पढ़ाने का काम करना चाहिये। व्यापारिक व औद्योगिक शिक्षा का प्रचार करना चाहिये। तन्दुरुस्ती के लिये व्यायामशालाएं या अखाड़े खोलने चाहियें। मासिक व पाक्षिक सभा करके उत्तम २ उपदेशों से समाज को जागृत करना चाहिये। रोग निवारणार्थ कौमी औषधालय खोलना चाहिये। स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करना चाहिये। जन्म से मरण तक के खर्चों को ऐसा कम कर देना चाहिये कि एक २५) मासिक कमाने वाला एक मास की आमदनी से निर्वाह कर सके। भाररूप सामाजिक खर्च हटा देना चाहिए। मरण के होने पर जाति जीमन की प्रथा मिटानी चाहिए। कन्या व वरविक्रय, बाल-विवाह, अनमेल विवाह रोकने चाहियें। समाज में एकता स्थापन करके संगठन बनाना चाहिये। अपनी २ कौम की तरक्की करना देश की तरक्की है। देश कौमों का समूह है।

शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, परिमित व्यय, कुरीति निवारण व व्यापार की वृद्धि से कौम चमक जाती है, कौम को गरीबी से दूर रखना चाहिये, परस्पर एक दूसरे की मदद करनी चाहिये, कौमी सेवा बड़ी सेवा है।

(७) ग्राम या नगर सेवा--

जिस ग्राम या नगर में जो रहता है वह उसका मातृग्राम या मातृनगर होजाता है। तब सर्व ग्राम वालों से या नागरिकों से प्रेम रखना चाहिये व ग्राम व नगर के निवासियों की उन्नति करनी चाहिये। स्वच्छता का प्रचार करना, स्वास्थ्य के नियमों का फैलाना बड़ा जरूरी है जिससे वहाँ रोग न फैले। ग्राम व नगर-निवासियों को सबको अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिये जिससे उनको लिखना पढ़ना आजावे। उक्त शिक्षा

के लिये स्थानीय साधन करना चाहिये या छात्रवृत्ति देकर बाहर पढ़ने भेजना चाहिये। सर्व ग्राम वाले स्वदेशी वस्तुएं व्यवहार करें ऐसा उपाय करना चाहिये। ग्रामोद्योगों का प्रचार करना चाहिये। जैसे--रूई कातना, कपड़ा बुनना, चटाई बनाना, कपड़ा सीना, बर्तन बनाना, गुड़ तैयार करना, आटा हाथ से पीसना, चावल हाथ से निकालना, कागज़ बनाना आदि आदि कारीगरी का प्रचार करना चाहिये। जिससे खेती करने वाले खाली समय में कोई न कोई उद्योग कर सकें। ग्राम पंचायत बनाले, पंचायत करके मुकदमों को उन पंचायतों से फैसला कराना चाहिये। सदाचार का प्रचार करना चाहिये। मादक पदार्थों का व तास का विक्रय हटवाना चाहिये। पशुबलि रुकवाना चाहिये। जुए का प्रचार बन्द कराना चाहिये। वेश्याओं के अड्डे हटवाना चाहिये। शुद्ध घी, दूध, मिठाई व सामान विक्रय का प्रबन्ध करना चाहिये। बेईमानों के लेन-देन को मिटाना चाहिये। बुराई में फंसाने वाले तमाशे न होने देना चाहिये। खोटे साहित्य व समाचार-पत्रों को रोकना चाहिये। एक अच्छा पुस्तकालय बनाना चाहिये जहाँ ग्राम के लोग सर्व प्रकार के उपयोगी समाचार-पत्र पढ़ें व पुस्तकें पढ़ें व पढ़ने को ले जावें व दे जावें। ग्राम व नगरवासियों को मिलकर नगर के निवासियों को हर तरह सुखी बनाना चाहिये। गरीबों व मजूरों को व सेवकों को ऐसी मजूरी देनी चाहिये जिससे वे कुटुम्ब को पेट भर खिला सकें व कपड़ा खरीद सकें। मैले-कुचैले न रहें। बहुधा छोटी कौमें कम मजूरी पाती हैं इससे भोजन भी पेटभर नहीं कर सकती हैं, कपड़ा खरीदना तो कठिन बात है। इस कठोर प्रथा को मिटाना चाहिये। ब्याज की दर परिमित करनी चाहिये। गरीबों से बहुत

अधिक ब्याज लिया जाता है सो इस अन्याय को हटाना चाहिये। किसानों को पवित्र समझकर उनके कष्ट मिटाना चाहिये। दया, न्याय, प्रेम का ग्राम में व नगर में व्यवहार हो ऐसा उपाय करना चाहिये।

यदि कई धर्म के मानने वाले हों तो उनमें नागरिक प्रेम अवश्य होना चाहिये। एक दूसरों के धर्म-साधन में व उत्सवों में विरोध न करना चाहिये। मेल से व स्नेह से ग्रामीण व नागरिक होने की शोभा है।

(८) देश सेवा—

हर एक मानव का किसी न किसी देश से सम्बन्ध होता है वह देश उसका देश कहलाता है। देश सेवा से प्रयोजन यह है कि देश के निवासी सुख-शान्ति से उन्नति करें व देश का प्रबन्ध देश के लोगों की सम्मति से ऐसा बढ़िया हो कि भूमि के द्वारा उपज न्याय से की जावे व उस आमदनी को जरूरी कामों में प्रजा की सम्मति से खर्च की जावे। देश में व्यापार व शिल्पी की उन्नति हो, कोई पराधीनता न हो जो प्रजा की उन्नति में बाधक हो। प्रजा स्वाधीनता से रहकर शिक्षा में व व्यापार में उन्नति करे। शासन के अधिकारी अपने को प्रजा के सेवक समझें। देश समृद्धिशाली हो। यदि अपना देश स्वाधीन न हो व अन्य देश के मुकाबले में अवनत हो तो देश को स्वाधीन करने में व ऐश्वर्यशाली बनाने में अपना तन मन धन आदि खर्च करना देश-सेवा है। देश के भीतर एकता स्थापन करके संगठन बनाना चाहिये व पराधीनता हटाने के लिये उचित उद्योग करना चाहिये। स्वदेश की बनी हुई वस्तुओं का नियम से व्यवहार करना चाहिये। देशी उद्योगों को व व्यापार को

बढ़ाना चाहिये। लक्ष्मी की वृद्धि से ही सब और बातें बढ़ जाती हैं। गरीबी से सर्व बातों में कमी रहती है। जैसे—उदयपुर मेवाड़ के स्वामी राणा प्रताप को एक जैन सेठ भामाशाह ने करोड़ों की सम्पत्ति दे दी कि वे अपने देश की रक्षा मुसलमानों के आक्रमण से करें। यह उसकी देश-सेवा थी। देश के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर देना देश-सेवा है।

(९) जगत सेवा--

जगत भर के मानवों की सेवा यह है कि जगत् के प्राणी न्याय व अहिंसा के तत्व को समझ कर न्यायवान् व अहिंसक बनें। इसके लिये जगत् भर में सच्चे विद्वान् उपदेशक भ्रमण कराने चाहियें व जगत् की भिन्न २ भाषाओं में अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करके फैलानी चाहियें। जगत् के प्राणी एकता व प्रेम से रहें, परस्पर युद्ध न करें तो जगत भर में शांति रहे व जगत् भर की उन्नति हो। सब सुखी रहें व अपने उचित कर्तव्य का पालन करें।

(१०) पशु सेवा--

मानवों की सेवा के साथ पशु समाज की भी सेवा करनी योग्य है। पशु गूंगे होते हैं, अपना कष्ट मानवों के समान कह नहीं सकते हैं। उनके साथ निर्दयता का व्यवहार न करना चाहिये। वृथा सताना न चाहिये। उनके साथ प्रेम रखके उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों को मिटाना चाहिये। गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट, हाथी, बैल आदि पशुओं से काम लेना चाहिये, परन्तु अधिक बोझा लादकर व अन्न-पान चारा न देकर अथवा कम देकर सताना न चाहिये। भूखे जानवरों को खिलाना चाहिये।

कुत्ते, बिल्ली, कबूतर, काकादि घरों में घूमते रहते हैं। उनको यह आशा होती है कि कुछ खाने को मिल जायगा। दयावानों को उनकी आशा पूरी करनी चाहिये। चींटियों को भी आटा व शक्कर खिलाना चाहिये। दयाभाव रखके उनकी भी यथाशक्ति सेवा करना मानव का धर्म है।

(११) वृक्षादि की सेवा--

वृक्षादि भी जीना चाहते हैं। उनको भी पानी पहुँचाना चाहिये, उनकी भी रक्षा करनी चाहिये, वृथा तोड़ना व काटना न चाहिये। उनसे पैदा होने वाले फल-फूलों को काम में लेना चाहिये। जरूरत से अधिक वनस्पति का छेदन-भेदन न करना चाहिये। पानी नहीं घोलना चाहिये, आग नहीं जलाना चाहिये, पवन नहीं लेना चाहिये, जमीन नहीं खोदनी चाहिये। एकेन्द्रिय स्थावर प्राणियों पर भी दयाभाव रखके उनको वृथा कष्ट न देना चाहिये। इस तरह सेवा-धर्म हमको यह सिखलाता है कि हम प्राणीमात्र की सेवा करें, सर्व विश्व का हित करें, सर्व से मैत्री रखें। हमारी दृष्टि में यह रहे कि हम जगत्-मात्र का उपकार करें। जो परोपकारी सेवा-धर्म पालते हैं वे सदा सुखी रहते हैं।

अहिंसा का मूल प्रारंभ

अजैन दृष्टि से जैन के अष्ट मूल गुण--

यह मूल गुण शुभ विचार, प्रेम व्यवहार, शुद्ध और निरोगता के उपयोगी मार्ग हैं। यह संसार के प्रत्येक प्राणियों के साथ हमेशा

प्रेम व्यवहार करने वाले हैं और शुद्ध आचरण को बढ़ाने वाले हैं इस लिये जैन धर्म सब से पहले अहिंसा की मूल-जड़ क्या है ? और जड़ कहाँ से उत्पन्न होती है ? इसको बतलाने के लिये सब से पहले महावीर के शासन में अष्टमूल गुण को धारण करने का उपदेश दिया गया है। इन आठ मूल गुण को धारण किये बिना मानव प्राणी अहिंसा आराधक अर्थात् अहिंसामय धर्म का उपासक हो नहीं सकता है।

इन आठों मूलगुणों का पृथक् २ उल्लेख

१. मांस का त्याग—International Commission के अनुसार मनुष्य का भोजन मांस नहीं है। जिन पशुओं का भोजन मांस है वे जन्म से ही अपने बच्चों को मांस से पालते हैं, यदि मनुष्य अपने बच्चों को जन्म से ही मांस खिलाये तो वे जिन्दा नहीं रह सकते। मनुष्य के दाँत, आँख, पञ्जा, नाखून नसें, हाजमा और शरीर की बनावट, मांस खाने वाले पशुओं से बिलकुल विपरीत है। मनुष्य का कुदरती भोजन निश्चित रूप से मांस नहीं है।

Royal Commission के अनुसार मांस के लिये मारे जाने वाले पशुओं में आधे तपेदिक के रोगी होते हैं इसलिये उनके मांस भक्षण से मनुष्य को तपेदिकका रोग लग जाता है Science के अनुसार मांस को हज्म करने के लिये सहकारी भोजन से चार गुणा हाज्मे की शक्ति की आवश्यकता है इस लिये संसार के प्रसिद्ध डाक्टरों के शब्दों में बदहज्मी, दर्द गुर्दा, अन्तड़ियों की बीमारी, जिगर की खराबी आदि अनेक भयानक रोग हो जाते हैं। Dr. Josiah Old field के अनुसार ९९% मृत्यु मांस-

भक्षण से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के कारण होती है; इस लिये महात्मा गांधी जी के शब्दों में मांस भक्षण अनेक भयानक बीमारियों की जड़ है।

मांस से शक्ति नहीं बढ़ती। घोड़ा इतना शक्तिशाली जानवर है कि संसार के इंजनों की शक्ति को इसकी Horse Power से अनुभव किया जाता है। वह भूखा मर जायेगा, परन्तु मांस भक्षण नहीं करेगा। वैज्ञानिक खोज से यह सिद्ध है—'सब्जी में मांस से पाँच गुणी अधिक शक्ति है।" Sir william Cooper C.I.E. के कथनानुसार घी, गेहूं, चावल, फल आदि मांससे अधिक शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं। यह भी एक भ्रम ही है कि मांस-भक्षी वीरता से युद्ध लड़ सकता है। प्रो० राममूर्ति, महाराणा प्रताप, भीष्म पितामह, अर्जुन आदि योद्धा क्या मांस भक्षी थे ?

मांस—भक्षण के लिये न मारा गया हो. स्वयं मर गया हो, ऐसे प्राणियों का मांस खाने में भी पाप है, क्योंकि मुर्दा मांस में उसी जाति के जीवों की हर समय उत्पत्ति होती रहती है। बनस्पति भी तो एक इन्द्रिय जीव हैं फिर अनेक प्रकार की सब्जियाँ खाकर अनेक जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा तो एक बड़े पशु का बध करना उचित है, ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है क्योंकि चल फिर न सकने वाले एक इन्द्रिय स्थावर जीवों की अपेक्षा चलते फिरते दो इन्द्रिय त्रस जीवों के बध में असंख्य गुणा पाप है और बकरी, गाय, भैंस, बैल आदि पंच इन्द्रिय जीवों का बध करना तो अनन्तानन्त असंख्य गुणा दोष है। अन्न जल के बिना तो जीवन का निर्वाह असम्भव है, परन्तु जीवन की स्थिरता के लिये मांस की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।

विष्णुपुराण के अनुसार "जो मनुष्य मांस खाते हैं वे थोड़ी आयु वाले, दरिद्री होते हैं। महाभारत के अनुसार "जो दूसरों के मांस से अपने शरीर को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, वे मर कर नीच कुल में जन्म लेते और महा दुःखी होते हैं। पार्वती जी शिव जी से कहती हैं—"जो हमारे नाम पर पशुओं को मार कर उनके मांस और खून से हमारी पूजा करते हैं, उनको करोड़ों कल्प तक नरक के महादुःख सहन करने पड़ेंगे। महर्षि व्यासजी के कथनानुसार—"जीव—हत्या के बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती, इस लिये मांस भक्षी जीव हत्या का दोषी है। महर्षि मनुजी के शब्दों में, "जो अपने हाथ से जीव-हत्या करता है, मांस खाता है, बेचता है, पकाता है, खरीदता है या ऐसा करने की राय देता है वह सब जीव हिंसा के महापापी हैं। भीष्म पितामह के शब्दों में, "मांस खाने वालों को नरक में गरम तेल के कढ़ाओं में वर्षों तक पकाया जाता है"। श्रीकृष्णजी के शब्दों में, "यह बड़े दुःख की बात है कि फल, मिठाई आदि स्वादिष्ट भोजन छोड़ कर कुछ लोग मांस के पीछे पड़े हुए हैं"। महर्षि दयानन्द जी ने भी मांस भक्षण में अत्यन्त दोष बताये हैं। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार, "हजारों खजाने दान देने, खुदा की याद में हजारों रात जगने और हजार सजदे करने और एक-एक सजदे में हजार बार नमाज पढ़ने को भी खुदा स्वीकार नहीं करता, यदि तुमने किसी तिर्यंच का भी हृदय दुखाया। शेख सादी के अनुसार, "जब मुंह का एक दाँत निकालने से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है तो विचार करो कि उस जीव को कितना कष्ट होता है जिसके शरीर से उसकी प्यारी जान निकाली जावे। फिर-

दौसी के अनुसार "कीड़ों को भी अपनी जान इतनी ही प्यारी है जितनी हमें, इसलिये छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट देना उचित नहीं है"। हाफिज अलयाउलरहीम साहिब के अनुसार— "शराब पी, कुरान शरीफ को जला, काबा को आग लगा, बुतखाने में रह, लेकिन किसी भी जीव का दिल न दुखा। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई तथा पारसी आदि सब ही धर्म मांस-भक्षण का निषेध करते हैं, इस लिये महाभारत के कथनानुसार सुख शान्ति तथा Supreme Peace के अभिलाषियों को मांस का त्यागी होना उचित है।

२. शराब का त्याग——शराब अनेक जीवों की योनि है जिसके पीने से वह मर जाते हैं, इसलिये इसका पीना निश्चित रूप से हिंसा है। Dr. A. C. Selman के अनुसार यह गलत है कि शराब से थकावट दूर होती है या शक्ति बढ़ती है। फ्रांस के Experts की खोज के अनुसार, "शराब पीने से बीवी बच्चों तक से प्रेम भाव नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है। चोरी, डकैती आदि की आदत पड़ जाती है। देश का कानून भङ्ग करने से भी नहीं डरता, यही नहीं बल्कि पेट, जिगर, तपेदिक आदि अनेक भयानक बीमारियाँ लग जाती हैं। इंगलैंड के भूत पूर्व प्रधान मन्त्री Gladstone के शब्दों में युद्ध, काल और प्लेग की तीनों इकट्ठी महा-आपत्तियाँ भी इतनी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं जितनी अकेली शराब पहुँचाती है।

३. मधु का त्याग——शहद मक्खियों का उगाल है। यह बिना मक्खियों के छत्ते को उजाड़े प्राप्त नहीं होता, इसीलिये महाभारत में कहा है, "सात गावों को जलाने से जो पाप होता है,

वह शहद की एक बूंद खाने में है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो लोग सदा शहद खाते हैं, वे अवश्य नरक में जावेंगे"। मनुस्मृति में भी इसके सर्वथा त्याग का कथन है, जिसके आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने भी सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास ३ में शहद के त्याग की शिक्षा दी है। चाणक्य नीति में भी शहद को अपवित्र वस्तु कहा है इसलिये मधुसेवन उचित नहीं है।

४. अभक्ष्य का त्याग——जिस वृक्ष से दूध निकलता है उसे क्षीर वृक्ष या उदुम्बर कहते हैं। उदुम्बर फल त्रस जीवों की उत्पत्ति का स्थान है इसलिये अमरकोष में उदुम्बर का एक नाम 'जन्तु फल' भी कहा है और एक नाम हेमदुग्धक है, इस लिये पीपल, गूलर, पिलखन, बड़, और काक ५ उदुम्बर के फलों को खाना त्रस अर्थात चलते फिरते जन्तुओं की संकल्पी हिंसा है। गाजर, मूली, शलजम आदि कन्द मूल में भी त्रस जीव होते हैं। शिवपुराण के अनुसार "जिस घर में गाजर, मूली, शलजम आदि कन्दमूल पकाये जाते हैं वह घर मरघट के समान है। पितर भी उस घर में नहीं आते और जो कन्दमूल के साथ अन्न खाता है उसकी शुद्धि और प्रायश्चित सौ चान्द्रायण व्रतों से भी नहीं होती। जिसने अभक्ष्य का भक्षण किया उसने ऐसे तेज जहर का सेवन किया जिसके छूने से ही मनुष्य मर जाता है। बैङ्गन आदि अनन्तानन्त बीजों के पिण्ड के खाने से रौरव नाम के महा दुःख-दायी नरक में दुःख भोगने पड़ते हैं"।

१. यस्मिन् ग्रहे सदा नित्यं मूलकं पच्यते जनैः।
स्मशान तुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम्॥

मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुंक्ते नराधमः ।
तस्य शुचिर्न विद्येत चान्द्रायण शतैरपि ॥
भुक्तं हलाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणात् ।
वृत्तांकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवम् ॥

शिवपुराण

२. चत्वारो नरकं द्वारं प्रथमं रात्रिभोजनम् ।
परस्त्री गमनं चैव संधानानन्तकाय ते ॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयन्ति समेधसः ।
तेषां यज्ञोपवासस्य मासमेकेन जायते ॥
नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिरः ।
तपस्विनो विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम् ॥

महाभारत

अर्थात्—श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठिर जी को नरक के जो (१) रात्रि भोजन (२) पर स्त्री सेवन, (३) अचार, मुरब्बा आदि का भक्षण, (४) आलू, शकरकंदी आदि कन्द अथवा गाजर, मूली, गंठा, आदि मूल का खाना । यह चार द्वार बताये, और कहा कि रात्रि भोजन के त्याग से १ महीने में १५ दिन के उपवास का फल स्वयं प्राप्त हो जाता है।

(५) बिना छने जल का त्याग—

जैन धर्म अनादि काल से कहता चला आया है कि वनस्पति, जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी एक इन्द्रिय स्थावर जीव हैं परन्तु संसार न मानता था। डा० जगदीश चन्द्र बोस ने वनस्पति को

वैज्ञानिक रूप से जीव सिद्ध कर दिया तो संसार को जैनधर्म की सचाई का पता चला। इसी प्रकार जल को जीव मानने से इन्कार किया जाता रहा तो कैप्टीन सववोर्सवी ने वैज्ञानिक खोज से पता लगाया कि पानी की एक छोटी सी बूँद में ३६४५० सूक्ष्म जन्तु होते हैं। यदि छान कर पानी न पीया जावे तो यह जन्तु शरीर में पहुँच जावेंगे, जिससे हिंसा के अलावा अनेक बीमारियों के होने का भी भय है। मनुस्मृति में जल को वस्त्र से छान कर पीने की शिक्षा दी गई है, जिस के आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में जल को छान कर पीने के लिये कहा है।

३६ अंगुल चौड़े, ४८ अंगुल लम्बे, मजबूत, मल रहित, गाढ़े, दोहरे, शुद्ध खद्दर के वस्त्र से जो कहीं से फटा न हो, पानी छानना उचित है। यदि बर्तन का मुँह अधिक चौड़ा है तो उस बर्तन के मुँह से तीन गुना दोहरा खद्दर का प्रयोग करना चाहिए और छने हुए पानी से उस छलने को धोकर उस धोवन को उसी बावड़ी या कूएं में गिरा देना चाहिए जहाँ से पानी लिया गया हो। यह कहना कि पम्प का पानी जाली से छनकर आता है उचित नहीं। क्योंकि जाली के छेद सीधे होने के कारण छोटे सूक्ष्म जीव उन छेदों में से आसानी से पार हो जाते हैं। यह समझना भी ठीक नही है—म्युनिसिपिलैटी फिलटरकर के शुद्ध पानी भरती है अतः टंकी के पानी को छानने से क्या लाभ ? (एक बार के छने हुए पानी में ४८ मिनट के बाद फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं अतः जीव हिंसा से बचने तथा अपने स्वास्थ्य के लिए छने हुए पानी को भी यदि वह ४८ मिनट से अधिक काल का है) ऊपर लिखी विधिअनुसार दोबारा छानना उचित है।

(६) रात्रि भोजन का त्याग--

अन्धेरे में जीवों की अधिक उत्पत्ति होने के कारण रात्रि में भोजन करना, कराना, कराने की प्रेरणा देना घोर हिंसा है। यह कहना कि बिजली की तेज रोशनी से दिन के समान उजाला कर लेने पर रात्रि भोजन में क्या दोष है, उचित नहीं। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि OXYZEN स्वास्थ्य को लाभ और CARBONIC हानि पहुंचाने वाली है। वृक्ष दिन में कारबोनिक चूसते हैं तथा ओक्सीजन छोड़ते हैं जिस के कारण दिन में वायु मंडल शुद्ध रहता है तथा शुद्ध वायु मंडल में किया हुआ भोजन स्वास्थ्य बढ़ाता है। रात्रि के समय वृक्ष भी कारबोनिक गैस छोड़ते हैं जिस के कारण वायु मंडल दूषित होता है। ऐसे वातावरण में भोजन करना शरीर को हानिकारक है। सूर्य की रोशनी का प्रभाव सूक्ष्म जन्तुओं को नष्ट करने और दिखाई न पड़ने वाले जीवों की उत्पत्ति को रोकता है। दीपक, हंडे तथा बिजली की तेज रोश-नी में भी यह शक्ति नहीं, बल्कि इसके विरुद्ध बिजली आदि का स्वभाव मच्छर आदि जन्तुओं को अपनी तरफ खींचने का है, अतः तेज से तेज बनावटी रोशनी में भोजन करना वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

उदाहरण के लिये देहली से निकलने वाले अखबार में ता० २-३-५६ को नव भारत टाइम्स में छपा हुआ लेख देखिये—

कि एक परिवार जो कि रात्रि भोजन करता था उसके तीन सदस्यों की मृत्यु बिजली की रोशनी चली जाने पर बन्द फूल गोभी में बैठे हुए १ सांप के बच्चे के शाक में बन जाने के कारण हुई।

सूर्य की रोशनी में किया हुआ भोजन जलदी हजम हो जाता

है अतः आयुर्वेद के अनुसार भी भोजन का समय रात्रि नहीं बल्कि सुबह व शाम है। रात्रि को तो कबूतर व चिड़िया आदि तिर्यंच भी भोजन नहीं करते। महात्मा बुद्ध ने रात्रि भोजन की मनाही की है। श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठिर जी को नरक जाने के जो चार कारण बताये हैं, रात्रि भोजन उन सब में प्रथम कारण है। उन्होंने यह भी बताया कि रात्रि भोजन का त्याग करने से १ महीने में १५ दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है। महर्षि मार्कण्डेय के शब्दों में रात्रि भोजन करना, मांस खाना, और पानी पीना लहू पीने के समान महापाप है। महाभारत के अनुसार, रात्रि भोजन करने वाले का जप, तप, एकादशी व्रत, रात्रि जागरण, पुष्कर यात्रा, तथा चन्द्रायण व्रत आदि निष्फल हैं, अतः वैज्ञानिक, आयुर्वेदिक, धार्मिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन करना, कराना, व करने की प्रेरणा करना उचित नहीं है।

हिंसा का त्याग

मांस, शराब, शहद. अभक्षण, बिन छाना जल तथा रात्रि भोजन के ग्रहण करने में तो साक्षात् हिंसा है ही, परन्तु महर्षि पातंजलि के अनुसार, यदि हमारी वजह से हिंसा हो तो स्वयं हिंसा न करने पर भी हम हिंसा के दोषी हैं। अतः ऐसी हिंसा का भी त्याग किया जावे, जिस को हम हिंसा ही नहीं समझते—

(१) फैशन के नाम पर हिंसा—सूत के मजबूत कपड़े, टीन के सुन्दर सूट केश, प्लास्टिक की पेटी, घड़ी के तस्मे, बटवे आदि के स्थान पर रेशमी वस्त्र और चमड़े की बनी वस्तुएं खरीदना।

(२) उपकारिता के नाम पर हिंसा—सांप, बिच्छू, भिरड़ आदि को देखते ही डंडा उठाना, चाहे वे शांति से जा रहे हों, या

तुम्हारे भय से भाग रहे हों। महात्मा देव आत्मा जी के शब्दों में जहरीले जानवरों को भी कभी २ पृथ्वी पर चलने का अधिकार है इसी लिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए उनको शांति से जाने देना।

(३) व्यापार के नाम पर हिंसा—महाभारत के अनुसार मांस तथा चमड़े की वस्तुएं खरीदना, बेचना और ऐसा करने का मत देना।

(४) अहिंसा के नाम पर हिंसा—कुत्ता आदि पशु के गहरा जखम हो रहा है, कीड़े पड़ गये, मवाद हो गया, दुःख से चिल्लाता है तो उसका इलाज करने के स्थान पर पीड़ा से छुड़ाने के बहाने से जान से मार देना, यदि यह ही दया है तो अपने कुटुम्बियों को जो शारीरिक पीड़ा के कारण उन से भी अधिक दुखी हों, क्यों नहीं जान से मार देते ?

(५) सुधार के नाम पर हिंसा—बड़ों का कहना है कि "नीयत के साथ बरकत होती है जब से हमने अनाज की बचत के लिये चूहे, कुत्ते, बन्दर, टिड्डी आदि जीवों का मारना आरम्भ किया है तब से अनाज की अधिक पैदावार तथा अच्छी झड़त होना ही बन्द हो गई।

(६) धर्म के नाम पर हिंसा—देवी देवताओं के नाम पर तथा यज्ञों में जीव बलि करना और उनके स्वर्ग की प्राप्ति समझना।

(७) भोजन के नाम पर हिंसा—मांस का त्याग करने के स्थान पर मछलियों की काश्त करके मांस भक्षण का प्रचार करना और कराना।

(८) विज्ञान के नाम पर हिंसा—शरीर की रचना और नसें

हड्डी आदि के चित्र आदि से समझाने की बजाय असंख्य खरगोश तथा मैंडक आदि को चीरना, फाड़ना।

(९) दिल बहलाव के नाम पर हिंसा—दूसरों की निन्दा करके गाली देकर, हंसी उड़ाकर, चूहे को पकड़ बिल्ली के निकट छोड़ कर, शिकार खेल कर, तीतर, बटेर लड़वा कर और दूसरों को सता कर आनन्द मानना।

८—अर्हन्त भक्ति—

श्री भर्तृहरि कृत शतक त्रय के अनुसार 'अर्हन्त' समस्त त्यागियों में मुख्य हैं। स्कन्ध पुराण के अनुसार. 'वही जिह्वा है जिससे जिनेन्द्रदेव का स्तोत्र पढ़ा जाये। वही हाथ हैं जिनसे जिनेन्द्र की पूजा की जावे। वही दृष्टि है जो जिनेन्द्र के दर्शनों में तल्लीन हो, और वही मन है जो जिनेन्द्र में रत हो।' विष्णुपुराण के अनुसार, "अर्हन्तमत (जैनधर्म) से बढ़कर स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला और कोई दूसरा धम नहीं है। मुद्राराक्षस नाटक में अर्हन्तों के शासन को स्वीकार करने की शिक्षा है। महाभारत में जिनेश्वर की प्रशंसा का कथन है। मुहूर्त चिन्तामणि नाम के ज्योतिष ग्रन्थ में "जिनदेव" की स्थापना का उल्लेख है। ऋग्वेद में लिखा है कि "हे अर्हन्तदेव ! आप विधाता हैं। अपनी बुद्धि से बड़े भारी रथ की तरह संसार चक्र को चलाते हैं। आपकी बुद्धि हमारे कल्याण के लिये हो। हम आपका मित्र के समान सदा संसर्ग चाहते हैं'। अर्हन्त देव से ज्ञान का अंश प्राप्त करके देवता पवित्र होते हैं। हे अग्निदेव ! इस वेदी पर सब मनुष्यों से पहले अर्हन्तदेव का मन से पूजन और फिर उनका आह्वानन करो। पवनदेव, अच्युतदेव, इन्द्रदेव और भी देवताओं की

भांति अर्हन्त का पूजन करो, ये सर्वज्ञ हैं। जो मनुष्य अर्हन्तों की पूजा करता है, स्वर्ग के देव उस मनुष्य की पूजा करते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि अर्हन्त=अर्हन्=जिनेन्द्र=जिनदेव=जिनेश्वर अथवा तीर्थंकर की पूजा का कथन वेदों और पुराणों में भी है। अब केवल प्रश्न इतना रह जाता है कि यह जैनियों के पूज्य देव हैं या कोई अन्य महापुरुष ? हिन्दी शब्दार्थ तथा शब्द कोषों के अनुसार इनका अर्थ जैनियों के पूज्यदेव हैं। यही नहीं बल्कि उनके जो गुण और लक्षण जैनधर्म बताता है वही ऋग्वेद स्वीकार करता है। "अर्हन्तदेव ! आप धर्मरूपी बाणों, सदुपदेश (हितोपदेश) रूपी धनुष तथा अनन्तज्ञान आदि आभूषणों के धारी, केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) और काम, क्रोधादि कषायों से पवित्र (वीतरागी) हो। आप के समान कोई अन्य बलवान नहीं, आप अनन्तानन्त शक्ति के धारी हो। फिर भी वहीं किसी दूसरे महापुरुष का भ्रम न हो जाये, स्वयं ऋग्वेद ने ही स्पष्ट कर दिया है। "अर्हन्तदेव आप नग्न स्वरूप हो, हम आपको सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए यज्ञ की वेदी पर बुलाते हैं (ऋ० २।४।३३)

कहा जाता है—मूर्ति जड़ है इसके अनुराग से क्या लाभ ? सिनेमा जड़ है लेकिन इसकी बेजान मूर्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, पुस्तक के अक्षर भी जड़ हैं, परन्तु ज्ञान की प्राप्ति करा देते हैं। चित्र भी जड़ है परन्तु बलवान योधा का चित्र देखकर क्या कमजोर भी एक बार मूछों पर ताव नहीं देने लगते ? क्या वेश्या का चित्र हृदय में विकार उत्पन्न नहीं करता ? जिस प्रकार नक्शा सामने हो तो विद्यार्थी भूगोल को जल्दी समझ लेता है उसी प्रकार अर्हन्तदेव की मूर्ति को देखकर अर्हन्तों

के गुण जल्दी समझ में आ जाते हैं, मूर्ति तो केवल निमित्त कारण है।

कुछ लोगों की शंका है कि जब अर्हन्तदेव इच्छा तथा राग-द्वेष रहित हैं, पूजा से हर्ष और निन्दा से खेद नहीं करते। कर्मानुसार स्वयं फल मिलने के कारण अपने भक्तों की मनोकामना भी पूरी नहीं करते तो उनकी भक्ति व पूजा से क्या लाभ ! इस शंका का उत्तर स्वामी समन्तभद्राचार्यजी ने स्वयम्भू स्तोत्र में बताया है।

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दयानाथ ! विवान्तवैरे
तथाऽपि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः

अर्थात्—हे श्री अर्हन्तदेव ! राग द्वेष रहित होने के कारण पूजा-वन्दना से प्रसन्न और निन्दा से आप दुखी नहीं होते और न हमारी पूजा अथवा निन्दा से आपको कोई प्रयोजन है। फिर भी आपके पुण्य गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पाप मल से पवित्र करता है। श्री मानतुङ्गाचार्य ने भी भक्तामर स्तोत्र में इस प्रकार की शंका का समाधान करते हुए कहा है:—

आस्तां तव स्तवनमस्त समस्त दोषं ।
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ॥
दूरे सहस्र किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास भाञ्जि ॥

अर्थात—हे भगवन् ! सम्पूर्ण दोषों से रहित आपकी स्तुति की तो बात दूर है, आपकी कथा तक प्राणियों के पापों का नाश करती है। सूर्य की तो बात जाने दो, उसकी प्रभा मात्र से सरो-

वरों के कमलों का विकास हो जाता है। श्री आचार्य कुमुदचन्द्र ने बताया है:—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली भवन्ति,
जन्तोः क्षणेननिविडा अपि कर्मबन्धा।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्थ ॥

अर्थात्:—हे जिनेन्द्र ! हमारे लोभी हृदय में आपके प्रवेश करते ही अत्यन्त जटिल कर्मों का बन्धन उसी प्रकार ढीला पड़ जाता है जिस प्रकार बन-मयूर के आते ही सुगन्ध की लालसा में चन्दन के वृक्ष से लिपटे हुए लोभी सर्पों के बन्धन ढीले हो जाते हैं।

कुछ लोगों को भ्रम है कि जब माली की अव्रती कन्या अर्हत भगवान् के मन्दिर के द्वार पर पुष्प चढ़ाने से सौधर्म नामक प्रथम स्वर्ग की महाविभूतियों वाली इन्द्राणी हो गई। धनदत्त नाम के ग्वाले को अर्हत देव के सन्मुख कमल का पुष्प चढ़ाने से राजा का पद मिल गया। मेंडक पशु तक बिना भक्ति करे केवल अर्हन्त भक्ति की भावना करने से ही स्वर्ग में देव हो गया, तो फिर घन्टों अर्हन्त वन्दना करने पर भी हम दुःखी क्यों हैं ? इस प्रश्न का उत्तर श्री कुमुदचन्द्राचार्य ने कल्याणमन्दिर स्तोत्र में इस प्रकार दिया है:—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।

जातोऽस्मि तेन जन बान्धव दुःख पात्रं
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥

अर्थात्:—हे भगवन ! मैंने आपकी स्तुतियों को सुना, आपकी पूजा भी की, आपके दर्शन भी किये, परन्तु भक्ति-पूर्वक हृदय में धारण नहीं किया। हे जन बान्धव ! इस कारण ही हम दुःख का पात्र बन गये, क्योंकि जिस प्रकार प्राण रहित प्रिय से प्रिय स्त्री, पुत्र आदि भी अच्छे नहीं लगते, उसी प्रकार बिना भाव के दर्शन, पूजा आदि सच्ची अर्हंत भक्ति नहीं, बल्कि निरी मूर्ति पूजा है जिसके लिए वैरिस्टर चम्पतराय के शब्दों में जैन धर्म में कोई स्थान नहीं। भाव पूर्वक अर्हन्त भक्ति के पुण्य फल से आज पंचम काल में भी मनवांछित फल स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। मानतुङ्गाचार्य की श्री ऋषभदेव की स्तुति से जेल के २४ लोह—कपाट स्वयं खुल गये।

समन्तभद्राचार्य की तीर्थंकर वन्दना से चन्द्रप्रभु तीर्थंकर का प्रतिबिंब प्रगट हुआ। चालुक्य नरेश जयसिंह के समय वादिराज मुनि का कुष्ट रोग जिनेन्द्र—भक्ति से जाता रहा। जिनेन्द्र भगवान पर विश्वास करने से गङ्गवंशी सम्राट् विनयादित्य ने अथाह जल से भरे दरिया को हाथों से तैरकर पार कर लिया। जैनधर्म को त्यागकर भी होयसलवंशी सम्राट् विष्णुवर्धन को भी श्री पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाने से पुत्र, सोलंकी सम्राट् कुमारपाल को श्री अजितनाथ की भक्ति से युद्धों में विजय और भरतपुर के दीवान को वीरभक्ति से जीवन प्राप्त हुआ। कदम्बवंशी सम्राट् रविवर्मा ने सच कहा है, जनता को श्री

जिनेन्द्र-भगवान की निरन्तर पूजा करनी चाहिए। क्योंकि जहाँ सदैव जिनेन्द्र-पूजा विश्वास पूर्वक की जाती है वहाँ अभिवृद्धि होती है, देश आपत्तियां और बीमारियों के भय से मुक्त रहता है और वहाँ के शासन करने वालों का यश और शक्ति बढ़ती है।

भाव हिंसा के मिटाने का उपाय:—

पहले बताया जा चुका है कि राग-द्वेषादि या क्रोधादि भावों से आत्मा के गुणों का घात होता है वह भाव हिंसा है तथा भावहिंसा ही द्रव्यहिंसा का कारण है।

अहिंसामय जीवन विताने के लिये हमें अपने भावों से हिंसा का विष निकालकर फेंक देना चाहिए।

रागद्वेषादि व क्रोधादि भाव होने में बाहरी निमित्त भी होते हैं व अन्तरंग निमित्त क्रोधादि कषाय-कर्मों का उदय है, जिन कर्मों को हम पहले बांध चुके हैं। बाहरी निमित्त कषायों के उपजने के न हों इसलिए हमको अपना वर्ताव प्रेम, नम्रता व न्याय से करना चाहिए। जगत् की माया सब नाशवन्त है। इसलिए संपत्ति मिलाने का तीव्रलोभ न रखना चाहिये। तीव्र लोभ से ही दूसरों को कष्ट देकर, झूठ बोलकर, चोरी व अन्याय करके धन एकत्र किया जाता है। तीव्र लोभ ही के कारण कष्ट व मायाचार करना पड़ता है। हमें सन्तोषपूर्वक रहकर न्याय से धन कमाना चाहिए। यदि पुण्योदय से अधिक धन का लाभ हो तो अपना खर्च सादगी से चलाकर शेष धन परोपकार में खर्च करना चाहिए। धनादि सामग्री होने पर तीव्र मान हो जाता है। तब यह दूसरों का अपमान करके प्रसन्न होता है, गरीबों को सताता है।

क्षण भंगुर जगत् के पदार्थों का मनन नहीं करना चाहिए। जैसे वृक्ष में फल अधिक लगते हैं तब वह फल के भार से नम्र व नीचा हो जाता है वैसे ही धनादि सम्पत्ति बढ़ने पर मानव को नम्र व विनयमान होना चाहिए। जब हम न्याय से, विनय से, प्रेम से वर्ताव करेंगे तब हमारा कोई शत्रु न होगा। हमारा कोई काम बिगड़ेगा नहीं, तब हमें क्रोध होने का कोई कारण नहीं होगा। जब अपना कोई नुकसान होता है तब उस पर क्रोध होना संभव है जिससे नुकसान पहुंचा है। जब हमारा बर्ताव उचित होगा तब कोई दुष्टता से या बदला लेने के भाव से हमारा काम नहीं बिगाड़ेगा। अज्ञान से, नासमझी से या भोलेपन से हमारा नौकर, हमारी स्त्री, हमारा पुत्र आदि कोई काम बिगाड़ दे, व नुकसान कर डाले तो बुद्धिमान् को क्षमा ही करनी चाहिए और उनको समझा देना चाहिए जिससे अपनी भूल को समझ जावे व फिर ठीक काम करे। उनका इरादा हमें हानि पहुंचाने का नहीं है, तब अपनी बुद्धि की कमी से व प्रमाद से उनसे काम बिगड़ गया है, तब उन पर क्रोध करना उचित नहीं है। इस तरह ज्ञान के बल से क्रोध को जीतना चाहिए।

कितने ही दुष्ट यदि दुष्टता से हमारा नुकसान करें तो उनको पहले तो प्रेम भाव से समझाना चाहिए। यदि वे नहीं मानें व रोकने का कोई अहिंसामय उपाय न हो तो गृहस्थी उस दुष्ट की दुष्टता से प्रेम रखता हुआ उसको हिंसामय उपाय से भी शिक्षा देता है जिससे वह दुष्टता छोड़ दे। ऐसी आरंभी हिंसा का गृहस्थी त्यागी नहीं होता है। यह वर्णन विस्तार से आगे किया जायगा। एक हिंसा के पुजारी का कर्तव्य है कि वह अपना मन

चन, काय का व्यवहार ऐसा सम्हाल कर करे जिससे क्रोधादि षायों के होने का अवसर नहीं आवे। अपना पुरुषार्थ ऐसा बरा-र करते रहना चाहिये।

क्रोधादि औपाधिक या मलिन भाव हैं, जिस के प्रगट होने अन्तरंग क्रोधादि कषाय रूप कर्मों का उदय आवश्यक है। यदि तिर कषाय रूपी कर्म का संबंध न हो तो कभी भी आत्मा के धादि से मलिन भाव न हों। जैसे मिट्टी के मेल बिना पानी कभी गदला नहीं हो सकता। आत्मा स्वभाव से शुद्ध ज्ञान, शांति व नंद का अनन्त सागर है। यह बात हम पहले बता चुके व यह भी बता चुके हैं कि इसके साथ आठ कर्मों का रचा आ सूक्ष्म शरीर है। इन आठों में मोहनीय कर्म प्रधान है।

र्मों का शमन कैसे हो ?

एक दफै बांधे हुए कर्म तो फल देने के समय के पहले बदले ा सकते हैं। जब कोई कर्म बंधता है तब उसमें चार बातें होती (१) प्रकृति—या स्वभाव पड़ता है कि यह ज्ञानावरण है या हनीय है इत्यादि। (२) प्रदेश—हर एक कर्म के स्कंधों की णना होती है कि अमुक प्रकृति का कर्म इतनी संख्या वाली र्गणाओं (स्कंधों) में बंधा। (३) स्थिति—कर्म के स्कंध जो किसी मय में बंधे वे कब तक बिल्कुल दूर न होंगे—काल की मर्यादा ड़ना। उस काल के भीतर २ ही वे खिर जायेंगे। (४) अनुभाग—ल देने की तीव्र या मन्द शक्ति पड़ना। जब वह एक बार उदय येंगे तब फल मन्द होगा या तीव्र। बांध कर संचित होने वाले र्मों की तीन अवस्थाएं पीछे से हमारे भाव कर सकते हैं। (१)

संक्रमण—पाप प्रकृति को पुण्य में या पुण्य को पाप में प[लट]
देना। (२) उत्कर्षण—कर्मों की स्थिति की अनुभाग शक्ति ब[ढ़ा]
देना। (३) अपकर्षण—कर्मों की स्थिति या अनुभाग शक्ति [कम]
कर देना।

आयुकर्म के सिवाय सात कर्मों की स्थिति तीव्र कषाय [से]
अधिक व मन्द कषाय से कम होती है। पाप कर्मों का अनुभा[ग]
तीव्र कषाय से अधिक व मन्द कषाय से कम पड़ता है। पु[ण्य]
कर्मों का अनुभाग मंद कषाय से अधिक व तीव्र कषाय से क[म]
पड़ता है। आठ कर्मों के ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अं[त]
राय, अशुभ आयु, अशुभनाम, नीच गोत्र, असातावेदनीय पा[प]
कर्म हैं। जबकि शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र, सातावेदनी[य]
नीच गोत्र, असातावेदनीय पापकर्म हैं। जब कि शुभ आयु, शु[भ]
नाम, उच्च गोत्र, सातावेदनीय पुण्यकर्म हैं। अशुभ आयु नर्क [की]
होती है उसमें तीव्र कषाय के कारण स्थिति व अनुभाग अधि[क]
मंद कषाय से कम पड़ता है। शुभ आयु तिर्यंच, मनुष्य, देव आ[यु]
हैं। इनमें मंद कषाय से स्थिति, अनुभाग अधिक व तीव्र कषा[य]
से कम पड़ता है। बांधे हुए कर्मों की स्थिति घटाकर हम उनक[ो]
ऐसा कर सकते हैं कि वे बिना फल दिये शीघ्र ही खिर जावें[।]
आठों कर्म बन्धन में स्थिति व अनुभाग डालने वाले कषाय भा[व]
हैं, तब इनकी दशा पलटने के लिये या इनको क्षय करने के लि[ये]
वीतराग भाव की जरूरत है।

शांत भाव होने का उपाय—

राग, द्वेष, मोह भावों से कर्म बंधते हैं तब वीतराग या शां[त]
भाव से कर्म बदलने पड़ते हैं, शरदी से ज्वर पीड़ित के लि[ये]

औषधि व गर्मी से ज्वर पीड़ित के लिये शीत औषधि की रत है। इसी तरह अशांत भावों से बंधे हुए कर्म शांत भाव दूर हो जाते हैं। शांत भाव होने का उपाय यह है कि हम उस भक्ति, पूजा व सेवा व उसका ध्यान करें जहां शांतभाव परि-भरा है। जैसे गर्मी के ताप से तप्त मानव शीत जल से भरे वर के पास जाता है, स्नान करता है, शीतल जल पीता है, ताप को शमन कर देता है, इसी तरह शांतिमय तत्त्व के र मग्न होना चाहिए। तब अशांति मिटेगी व अशांति से हुए कर्म निर्बल पड़ेंगे या दूर हो जावेंगे।

परम शांतिमय स्वभाव हरएक आत्मा का है। संसारी माएं स्वभाव से शांत व शुद्ध हैं। कर्म मैल के कारण अशांत अशुद्ध हैं। शुद्ध आत्मा या परमात्मा प्रकट शांत व शुद्ध है, में कोई कर्म मैल नहीं है। इसलिये हमें अपने ही आत्मा के स्वभाव का या परमात्मा के शुद्ध स्वभाव का ध्यान करना हिये। हमारे कर्मों के रोग के मिटाने की दवा एक आत्मध्यान सम्यक् समाधि है।

ध्यान के लिये सवेरे, दोपहर व सांझ का समय उत्तम है। सके सिवाय ध्यान कभी भी किया जा सकता है। स्थान एकांत निराकुल होना चाहिए। जहां मानवों के शब्द न आवें। ध्यान समय मन को सर्व चिन्ताओं से खाली कर ले, वचनों को रोक किसी से बात न करे, शरीर सम हो, बहुत भरा हुआ व ली न हो व शुद्ध हो, पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन या कायोत्सर्ग अन्य किसी आसन से ध्यान करे जिससे शरीर निश्चल रहे। टाई पाटा आदि आसन बिछाले या भूमि पर ही ध्यान किया

जा सकता है।

ध्यान के अनेक मार्ग हैं जिनको श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थ से जानना जरूरी है। यहां कुछ उपाय बताए जाते हैं—

(१) अपने भीतर निर्मल जल भरा हुआ देखे, इसी को आत्मा स्थापन करे। मन को इस जल में डुबोवे। जब मन भागने लगे तब कोई मन्त्र पढ़े—ॐ, सोहं, अर्हं, सिद्ध, ॐ ह्रीं, णमो अरहंताणं, आदि में से एक मन्त्र ले ले। कभी भी यह विचार करे कि जिस जल के समान आत्मा में मैं मन को डुबा रहा हूं वह परम शुद्ध, परम शांत व परमानन्दमय है। इस तरह बार-बार तीन बातों को पलटते हुए ध्यान का अभ्यास करे।

(२) अपने भीतर शरीर प्रमाण स्फटिक पाषाण की चमकती हुई मूर्ति देखे कि यही आत्मा है। बार-बार ध्यान करे, कभी २ ऊपर लिखित मंत्र पढ़े।

(३) ॐ मन्त्र को नाक की नोक पर व भोहों के मध्य में विराजमान करके उसको चमकता हुआ देखे, कभी २ आत्मा के गुणों का मनन करे।

ध्यान में जब मन न लगे तब आध्यात्मिक ग्रन्थों का पठन करे। तत्त्वज्ञानियों के साथ धर्म की चर्चा करे। संसार की अवस्था नाशवन्त है ऐसा विचारे। शरीर अपवित्र है व नाशवन्त है ऐसा सोचे। इन्द्रियों के भोग अतृप्तकारी व तृष्णावर्द्धक हैं ऐसा मनन करे। जितना जितना वीतराग भाव बढ़ेगा वह मोहनी कर्मों की शक्ति घटायेगा।

———

गृहस्थी अहिंसा के पथ पर—

अहिंसा का सिद्धांत बहुत ऊंचा है। बुद्धिपूर्वक पूरी अहिंसा का साधन साधु पद में हो सकता है। गृहस्थी संकल्पी हिंसा का त्याग कर सकता है, आरम्भी नहीं छोड़ सकता है, तो भी वह धीरे २ अहिंसा के मार्ग पर बढ़ता जाता है। इस तरह हिंसा से बचता हुआ अहिंसा के पूर्ण साधन पर पहुँचता है, इसके लिये जैनाचार्यों ने गृहस्थों की ग्यारह श्रेणियां या प्रतिमाएं बताई हैं, उनका संक्षेप कथन नीचे प्रकार है—

(१) दर्शन प्रतिमा—अहिंसा धर्म का या भाव अहिंसा व द्रव्य अहिंसा का पूरा २ श्रद्धान रक्खे व आठ मूलगुणों को पाले। मदिरा, मांस, मधु का सेवन नहीं करे व पांच अणुव्रतों का अभ्यास करे, संकल्पी हिंसा न करे, स्थूल असत्य न बोले, चोरी न करे, स्वस्त्री में सन्तोष रक्खे व परिग्रह का प्रमाण कर ले। पानी छान कर व शुद्ध करके पीवे, रात्रि को भोजन न करने का अभ्यास करे, चार गुणों को धारण करे। (१) प्रशम-शांतिभाव, (२) संवेग-धर्म से अनुराग, संसार शरीर भोगों से वैराग्य, (३) अनुकम्पा-प्राणीमात्र पर दयाभाव, (४) आस्तिक्य-आत्मा व अनात्मा की व परलोक की श्रद्धा। वृथा आरम्भी हिंसा से बचने की कोशिश करे।

(२) व्रत प्रतिमा—

बारह व्रतों को पाले। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, ये बारह व्रत हैं।

पांच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण। इन पांच अणुव्रतों के पाँच २ अतिचार या दोष बचाने चाहिएं।

अहिंसा अणुव्रत के पांच अतिचार–

क्रोधादि कषाय के वश हो अन्याय से—(१) बांधना या रोकना, (२) लाठी आदि से मारना। (३) अंगोपांग छेदना। (४) अधिक बोझा लादना, (५) अन्नपान रोक देना।

सत्य अणुव्रत के पाँच अतिचार–

(१) मिथ्या कहने का उपदेश देना, (२) स्त्री पुरुष की बातें प्रकट करना, (३) झूठा लेख लिखना, (४) झूठ बोलकर जमानत ले लेना, (५) शरीर के आकार से जान कर किन्हीं का मन्त्र प्रकट कर देना।

अचौर्य अणुव्रत के पांच अतिचार–

(१) चोरी का उपाय बताना। (२) चोरी का माल लेना, (३) राज्य विरुद्ध होने पर न्याय का उल्लंघन करना, (४) कम व अधिक तोलना मापना, (५) झूठा सिक्का चलाना, खरी में खोटी मिलाकर खरी कहना।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के पांच अतिचार।

(१) अपने कुटुम्बी के सिवाय दूसरों के विवाह मिलाना, (२) व्याही हुई व्यभिचारिणी स्त्री के पास जाना, (३) वेश्यादि के पास आना जाना, (४) काम के अंग छोड़ अन्य अंग से काम की चेष्टा करना, (५) काम भोग की तीव्र लालसा रखना।

परिग्रह परिमाण व्रत के पांच अतिचार-

दश प्रकार के परिग्रह का प्रमाण करना योग्य है—(१) खेत व जमीन कितनी, (२) मकान कितने (३) चांदी कितनी, (४) सोना जवाहरात कितना, (५) गौ बैल आदि कितने, (६) अनाज कितना व कहाँ तक (७) दासी, (८) दास, (९) कपड़े, (१०) बर्तन दो-दो के पांच जोड़ करने जैसे—भूमि मकान, चाँदी सोना, धन धान्य, दासी दास, कपड़े बर्तन। हर एक जोड़ में एक को घटा कर दूसरे को बढ़ा लेना दोष है।

इस प्रतिमा वाले को पांच अणुव्रतों को दोष रहित पालना चाहिए।

सात शील—

अर्थात् तीन गुणव्रत चार शिक्षा व्रत हैं। इनके भी पांच-पांच अतीचार हैं। व्रत प्रतिमा में इनके बचाने की कोशिश करनी चाहिए। आगे की श्रेणियों में ये पूर्ण बच सकेंगे।

तीन गुणव्रत-

इनको गुणव्रत इसलिए कहते हैं कि इनसे अणुव्रतों की कीमत बढ़ जाती है। ऐसे ४ को ४ से गुणने पर, १६ हो जाते हैं।

(१) दिग्विरति गुणव्रत—लौकिक काम के लिये दश दिशाओं में जाने व लेन-देन करने की मर्यादा बांधना। इसके बाहर वह हिंसादि पांच पाप बिल्कुल न करेगा।

पांच अतीचार-

१—ऊपर की तरफ मर्यादा उल्लंघ जाना, २—नीचे की तरफ

मर्यादा से बाहर जाना, ३—आठों दिशाओं में मर्यादा से बाहर चले जाना, ४—किसी तरफ जाने का क्षेत्र बढ़ा लेना कहीं घटा लेना, ५—मर्यादा को भूल जाना।

(२) देशव्रत गुणव्रत—दिग्विरति में जो मर्यादा जन्म तक की हो, उसमें से घटा कर जितनी दूर काम हो उतनी दूर तक की मर्यादा कुछ नियम से एक दिन आदि के लिये कर लेना। इससे लाभ यह होगा कि नित्य प्रति थोड़ी हद में ही पांच पाप करेगा। व्रतों का मूल्य बढ़ जायगा।

(३) अनर्थदंडविरति गुणव्रत—की हुई क्षेत्र की मर्यादा के भीतर व्यर्थ के पाप नहीं करना जैसे—१—पाप करने का दूसरे को बिना प्रयोजन उपदेश देना, २—किसी की बुराई मन में विचारते रहना, ३—खोटी कहानी किस्से सुनना, ४—हिंसाकारी खड्ग आदि मांगे देना, ५—प्रमाद से या आलस्य से बेमतलब कार्य करना जैसे पानी फेंकना, वृक्ष छेदनादि।

पाँच अतीचार-

१—भंड वचन बोलना, २—भंड वचनों के साथ काय की कुचेष्टा करना, ३—बहुत बकवाद करना, ४—बिना विचारे काम करना, ५—भोगोपभोग सामग्री बेमतलब जमा करना।

चार शिक्षाव्रत-

इससे साधु के चारित्र की शिक्षा मिलती है।

(१) सामायिक—सवेरे, दोपहर, शाम तीन या दो या एक दफे एकांत में बैठकर अरहंत सिद्ध का स्मरण करके संसार शरीर भोग को असार विचार कर शुद्धात्मा का मनन करे।

पाँच अतिचार-

१—मन के भीतर खोटा विचार करना, २—किसी से बातें कर लेना, ३—काय को आलस्यरूप रखना, ४—निरादर से सामायिक करना, ५—सामायिक में पाठ जाप भूल जाना।

(२) प्रोषधोपवास-

दो अष्टमी व दो चौदस माह में चार दिन गृहस्थ का कामादि को बन्द रखकर उपवास करना, धर्मध्यान में चित्त लगाना।

पांच अतिचार-

१—बिना देखे व बिना झाड़े मलमूत्र करना व कुछ रखना, २—बिना देखे व बिना झाड़े उठाना, ३—बिना देखे व बिना झाड़े चटाई आदि आसन बिछाना, ४—उपवास में भक्ति न रखना, ५—उपवास के दिन धर्म कार्य को भूल जाना।

(३) भोगोपभोग शिक्षाव्रत-

पांच इन्द्रियों के भोगने योग्य पदार्थों की संख्या कर लेना। रोज सवेरे २४ घण्टे के लिये विचार कर लेना कि इतने पदार्थ काम में लूंगा। उनसे अधिक न वर्तूगा। जैसे इतने कपड़े, इतने गहने इतने भोजन, इतने दफे, आज ब्रह्मचर्य है कि नहीं, इत्यादि मर्यादा करने से हिंसा से बचा जाता है। जितने पदार्थों का प्रमाण किया उतने पदार्थों के सम्बन्ध में हिंसा होगी। सचित्त वस्तु का त्याग करना अर्थात् हरे पत्ते वनस्पति के खाने का त्याग करना। इस व्रत में मानव यह भी नियम कर स कता है कि आज पांच, चार, छः, दो वस्तुएं खाऊंगा। भाव हिंसा व द्रव्य हिंसा से बचने का यह उपाय है।

पांच अतिचार–

१—मूल से छेदे हुए सचित्त को खा लेना, २—हरे पत्ते तोड़े हुए पत्ते पर रक्खी वस्तु खा लेना, ३—छोड़ी हुई सचित्त को अचित्त में मिलाकर खाना, ४—कामोद्दीपक रस खाना, ५—कच्चा व पक्का पदार्थ व पचनेलायक पदार्थ खाना।

(४) अतिथि संविभाग–

साधुओं को या श्रावकों को दान देकर फिर भोजन करना।

पांच अतिचार–

१—सचित्त पर रखे हुए पदार्थ का देना, २—सचित्त से रुके हुए पदार्थ का देना, ३—दान आप न देना दूसरे को कहना तुम दे दो, ४—दूसरे दातार से ईर्षा करके देना, ५—समय पर न देना देरी लगाना।

व्रत प्रतिमा वाला पहले की प्रतिमा के भी नियम पालता है। जैसी २ श्रेणी बढ़ती जाती है, पहले के नियमों में आगे के नियम जुड़ते जाते हैं। व्रत प्रतिमा वाला मौन से शुद्ध भोजन करता है।

(३) सामायिक प्रतिमा–

सवेरे, दोपहर, शाम के दो दो घड़ी सामायिक करना। दो घड़ी ४८ मिनट की होती हैं। विशेष कारण से कुछ कम भी कर सकता है। इसके पाँच अतिचार टाल कर सतभाव से ध्यान करे।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा–

अष्टमी, चौदस को अवश्य उपवास करना, धर्म साधन करना, पाँच अतीचार बचाना।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा—

इच्छा व राग घटाने को सचित्त भोजन नहीं करना। प्रासुक या पक्का पानी पीना। सूखे व पक्के फल खाना, बीज न खाना।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—

रात्रि को चार प्रकार का आहार न आप करना, न दूसरे को कराना, खाद्य (जिसमें पेटभरे), स्वाद्य (इलायची पानादि), लेह्य (चाटने की चटनी आदि), पेय (पीने की)। यद्यपि इस श्रेणी के पहले भी यथाशक्ति रात को नहीं खाता था परन्तु वहां अभ्यास था। यहां पक्का नियम हो जाता है। न तो आप करता है न कराता है।

रात्रि को बेगिनती कीट पतंगे जो दिन में विश्राम करते हैं। रात को भोजन की खोज में निकल पड़ते हैं, खुशबू पाकर भोजन में गिर कर प्राण गंवाते हैं। भोजन भी मांस मिश्रित हो जाता है। बहुत प्राणी वध होते हैं। दीपक जलाने में और अधिक आते हैं। स्वास्थ्य के लिये भी तब ही भोजन करना चाहिए जब तक सूर्य का उदय हो। सूर्य की किरणों का असर भोजन को पकाने में मदद देता है। वास्तव में १२ घन्टे का दिन खाने के लिए बस है। रात्रि को विश्राम लेना चाहिए। दिन में भोजन करने से व रात्रि को न करने से कोई निर्बलता नहीं आ सकती है। भोजन रात्रि को खूब पकेगा, यदि दिवस में भोजन किया जावे। गृहस्थी का कर्तव्य ही यह है कि संध्या के बहुत पहले सब घर वाले खा पीकर निश्चिन्त हो जावें। रात्रि को आराम करे व धर्म साधन करे।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा--

अपनी स्त्री का सहवास भी त्याग कर ब्रह्मचारी हो जाना, चाहे देशाटन करना, चाहे घर में रहना, वैराग्य मय वस्त्र पहनना, सादगी से रहना, सादा भोजन करना।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा--

सातवीं तक आरम्भी हिंसा करता था। यहां आरम्भी हिंसा का भी त्याग करता है। अब यह व्यापार से धन कमाता नहीं। खेती आदि करता नहीं, घर में कोई आरम्भ करता कराता नहीं। जो बुलावे जीम आता है। सन्तोष से रहता है, सवारी पर चढ़ता नहीं, देखकर पैदल चलता है, दूर २ यात्रा का कष्ट नहीं सहता है, आत्मध्यान की शक्ति बढ़ाता है।

(९) अनुमति त्याग प्रतिमा--

इस श्रेणी में श्रावक लौकिक कार्यों में सम्मति देने का भी त्याग कर देता है। नौमी तक पूछने पर हानि लाभ बता देता था। अब धर्म कार्यों में ही सम्मति देता है। भोजन के समय बुलाने पर जाकर सन्तोष से भोजन कर लेता है।

(१०) परिग्रह त्याग--

इस श्रेणी में सर्व सम्पत्ति को त्याग देता है या धर्मकार्यों में लगा देता है। यहां अवश्य घर को छोड़ता है। किसी धर्मशाला या नशियां में रहता है। अपने पास मामूली वस्तु व एक दो बर्तन पानी के लिए रख लेता है। बुलाने से जाकर शुद्ध भोजन कर लेता है, अहिंसा का विशेष साधन करता है।

(११) उद्दिष्ट त्याग—

यहां वही भोजन करता है जो उसके निमित्त बनाया गया हो, किन्तु गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिये बनाया हो उसमें से भिक्षा से जाने पर लेता है। बुलाने से नहीं लेता है। यह श्रावक क्षुल्लक कहलाता है। एक लंगोट व एक खंड चादर रखता है, जिस से पग ढके तो मस्तक खुला रहे। कम कपड़ा रखने का मतलब यह है कि शरदी सहने की आदत हो जाये। एक मोर के पंख की पीछी रखते हैं, उससे भूमि साफ कर बैठते हैं। मोर के पंखसे छोटे से छोटा प्राणी भी नहीं मरता है। एक कमण्डल रखते हैं उसमें औटा पानी शौच के लिये रखते हैं जो २४ घन्टे नहीं बिगड़ता है। ऐसे क्षुल्लक भिक्षा से जाकर एक घर में बैठ कर शांति से एक बार भोजनपान करते हैं। धर्म ध्यान व अहिंसा को विशेष पालते हैं, देख कर चलते हैं। कोई क्षुल्लक एक भोजन करपात्र भी रखते हैं। वे पांच सात घरों से भोजन एकत्र कर अंतिम घर में भोजन कर बर्तन स्वयं साफ कर लेते हैं।

इसके आगे जो साधु होना चाहते हैं वे चादर भी छोड़ देते हैं। केवल एक लंगोट रखते हैं। कमण्डल लकड़ी का रखते हैं। भिक्षा से बैठकर हाथ में ही ग्रास दिये जाने पर भोजन करते हैं। यह ऐलक कहलाते हैं। यह हाथों से केशों का लौंच करते हैं। सिर के, डाढ़ी के बाल तोड़ डालते हैं। साधु के चारित्र का अभ्यास करते हैं। जब अभ्यास बढ़ जाता है व लज्जा को जीत लेते हैं तब ब्रह्मचर्य के पूर्ण अधिकारी हो जाते हैं तब लंगोट त्याग कर निर्ग्रन्थ साधु हो जाते हैं और पूर्ण भाव अहिंसा व द्रव्य अहिंसा पालते हैं।

इस तरह एक गृहस्थी अहिंसा के पथ पर चलता हुआ पूर्ण अहिंसा का साधन करता हुआ ब्रह्मस्वरूप अहिंसामय हो जाता है।

पूर्ण हिंसा के त्यागी मुनि होते हैं

जैसे श्रावक को आठ मूलगुण धारण करने की आवश्यकता बतलाई है उसी तरह मुनि के भी २८ मूल गुण होते हैं।

यह श्रावक धर्म से बिल्कुल ही भिन्न हैं। इनको धारण करने वाला मुनि संपूर्ण भाव हिंसा तथा द्रव्य हिंसा का पूर्ण रूप से त्यागी होता है और पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करने वाला होता है। इस अहिंसा धर्म को पूर्णतया पाले बिना सच्चे आत्म स्वरूप या परमात्म पद की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिये अट्ठाईस मूल गुण पाले जाते हैं।

अट्ठाईस मूल गुणः—

पाँच महाव्रत, पांच समिति, पाँच ही इन्द्रियों के निरोध छह आवश्यक, लोंच, अचेलक्य अर्थात् वस्त्र रहित, अस्नान, भूमि या पाटा चटाई पर सोना, दातुन नहीं करना, खड़े होकर एक बार आहार करना, दिन में एक बार भोजन करना यह साधु अर्थात् मुनि के अट्ठाईस मूल गुण हैं।

पांच महाव्रतः—

हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग, चोरी का त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना, और संपूर्ण परिग्रह का त्याग करना इसे पांच महाव्रत कहते हैं।

हिंसाविरतिः—(अहिंसा महाव्रत)

शरीर, इन्द्रिय, चौदह गुणस्थान, कुल, आयु, योनि इनमें

सब जीवों को जानकर मन, वचन, काय के द्वारा संपूर्ण हिंसा की क्रियाओं का त्याग करना इसको अहिंसा महाव्रत कहते हैं।

सत्य महाव्रतः—

राग द्वेष मोहादि को उत्पन्न करने वाले असत्य वचन को तथा दूसरे को संताप या दुःख उत्पन्न करने वाले ऐसे असत्य वचन को मन, वचन, काय के द्वारा पूर्णतया त्याग करना इसको सत्य महाव्रत कहते हैं।

अचौर्य महाव्रत—

कहीं मार्ग में पड़ा, भूला हुआ, रक्खा हुआ या दूसरे के द्वारा इकट्ठा किया गया हो तथा बिना दी हुई ऐसी वस्तु पर मानकर इसको मन, वचन, काय के द्वारा पूर्ण रूप से त्याग करना इसको अचौर्य महाव्रत कहते हैं। साधु किसी खेत की उसके स्वामी की आज्ञा के बिना मिट्टी तक भी उठाकर नहीं लेते हैं।

ब्रह्मचर्य महाव्रत—

वृद्ध, बाला, युवा स्त्रियों को माता, बहन, पुत्रीवत् समझकर कभी स्पर्श होने पर मन में किसी प्रकार का विकार या काम-वासना नहीं होना तथा रूप का देखना इत्यादि देखकर या उनके बीच रहने पर भी बालक के समान निर्विकार निष्पाप भावना हमेशा रखना इसको ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं। इस ब्रह्मचर्य महाव्रती को देव भी पूजते हैं।

परिग्रह महाव्रत—

जीव के आश्रित अन्तरंग परिग्रह तथा चेतन, दासी, दास, रुपये, कपड़े, जमीन, घर, स्त्री, पुत्र, माता इत्यादि तथा भांड या संसारी भोगोपभोग सामग्री इत्यादि परिग्रह का अन्तरंग व

बाह्यरूप से पूर्णतया त्याग करना तथा ग्रहण करने की मन में कभी लालसा नहीं रखना इसको परिग्रह महाव्रत कहते हैं।

पांच समिति—

ईर्या समिति, भाषा-समिति, आदाननिक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापना समिति, एषणा समिति, ऐसे समितियाँ पांच हैं।

ईर्या समिति—

निर्जन्तु मार्ग से चलते समय आगे चार हाथ भूमि को देखकर चलना तथा अपने काम के लिये किसी प्राणी को पीड़ा नहीं देना तथा पांव के नीचे कोई चींटी आदि सूक्ष्म जीव-जन्तु न मर जायें इस तरह सावधानता पूर्वक देख भालकर चलना इसको ईर्या समिति कहते हैं।

भाषा समिति—

झूठा दोषादि लगने योग्य हास्य कार्य करना, हंसना या दूसरे जीव के मन को दुखाने योग्य कठोर वचन बोलना, दूसरे के दोष प्रगट करना, दूसरे की निंदा अपनी प्रशंसा करना। स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा इत्यादि वचनों को छोड़कर अपने और पर के हित करने वाले वचन बोलना, उसे भाषा समिति कहते हैं।

एषणा समिति—

उद्गमादि छयालीस दोषों से रहित भूख आदि मिटाने के निमित्त तथा धर्म साधनादि निमित्त शुद्ध प्रासुक तथा संयम वृद्धिकारक मन से, वचन से, काय से, अनुमोदन रहित शुद्ध प्रासुक आहार को श्रावक के घर में जो वो गहस्थ हाथ में रक्खे

उसे मौन पूर्वक शान्ति से ग्रहण करना, राग द्वेष रहित विशुद्ध समभाव से भोजन करने वाले संयमी के निर्मल एषणा समिति होती है।

आदाननिक्षेपण समिति—

ज्ञान के निमित्त पुस्तक आदि उपकरणरूप ज्ञानोपाधि, पाप-क्रिया की निवृत्ति व संयम के लिये अर्थात् सूक्ष्म जीव तथा चींटी इत्यादि जीवों की रक्षा के निमित्त पीछी आदिक संयमोपकरण, कमण्डलु आदि शौचोपकरण और अन्य भी निमित्त कारण रूप चीजों को यत्नाचार पूर्वक देख भालकर उठाना रखना इसको आदान निक्षेपण समिति कहते हैं।

प्रतिष्ठापन समिति—

असंयमीजनों से गमन रहित निर्जन्तु एकान्त स्थान, हरित काय-हरे घास या कोमल घास इत्यादि हरित काय रहित स्थान, छिपा हुआ, छेद रहित चौड़ा और लोक जिसकी निन्दा न करें विरोध न करें ऐसे स्थान में मूत्र विष्टा आदि देह के मलका त्याग करना अर्थात् ऐसे स्थान में टट्टी पेशाब करना यह प्रतिष्ठापन समिति कहलाती है।

इन्द्रिय निरोध व्रत—

चक्षु, कान, नाक, जीभ और स्पर्शन ऐसे पांच इन्द्रिय हैं। इन पांचों को अपने २ रूप शब्द, गंध, रस, ठंडा गर्मादि स्पर्शरूप विषयों से सदाकाल (हमेशा) साधुओं को रोकना चाहिये। ऐसा मान कर साधु इन पांचों इन्द्रियों का हमेशा निरोध करते और संयम की वृद्धि करके अपने आत्मस्वरूप की पुष्टि करते हैं।

चक्षु इन्द्रियों के निरोध--

सजीव अजीव पदार्थों के गीत-नृत्यादि क्रिया भेद, समचतुरस्रादि संस्थानभेद, गोरा काला आदि रूपभेद—इस प्रकार सुन्दर असुन्दर इन भेदों में रागद्वेषादि का तथा आसक्त (लीन) होने का त्याग वह मुनि के चक्षुनिरोधव्रत कहते हैं।

कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत--

षड्ज, ऋषभ, गांधार आदि सात स्वररूप जीव शब्द और वीणा आदि से उत्पन्न अजीव शब्द—ये दोनों तरह के शब्द रागादि के निमित्त कारण हैं इसलिए इन का नहीं सुनना वह श्रोत्रनिरोध है।

घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत--

स्वभाव से गंधरूप तथा अन्य गंधरूप द्रव्य के संस्कार से सुगंधि आदि रूप ऐसे सुख दुःख के कारण भूत जीव अजीवरूप पुष्प चन्दनादि द्रव्यों में रागद्वेष नहीं करना वह घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत है।

रसनेन्द्रिय निरोध व्रत--

रस वर्द्धक पदार्थों में गृद्ध नहीं होने देना और तथा संयम के घात करने वाली या इन्द्रियों के बलवान बनाने वाली वस्तुओं से जिह्वा इन्द्रिय को रोकना तथा दाताओं के द्वारा दिया हुआ निर्दोष आहार लेना वह जिह्वा विजय नाम व्रत है।

स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत--

चेतन स्त्री इत्यादि जीव में और शैय्या आदि अचेतन में उत्पन्न हुआ कठोर नरम आदि आठ प्रकार का सुखरूप अथवा

दुःखरूप जो स्पर्श उसमें मूर्छित न होना, विषाद हर्ष नहीं करना वह स्पर्शनेन्द्रिय व्रत है।

साधुओं के छह आवश्यक कर्मों के नाम--

सामायिक, भगवान की स्तुति, बंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। ऐसे नित्य प्रति क्रिया साधु को करनी चाहिए।

सामायिक--

देह धारण करने रूप जीवन, प्राणवियोगरूप मरण—इन दोनों में तथा वांछित वस्तु की प्राप्ति रूप लाभ, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति रूप अलाभ, इस प्रकार आहार उपकरणादि की प्राप्ति अप्राप्ति रूप लाभ अलाभ में, इष्ट अनिष्ट के संयोग वियोग में, स्वजनमित्रादिकबंधु, शत्रु दुष्टादिक अरि—इन दोनों में, सुख दुःख में वा भूख प्यास, शीत उष्ण आदि बाधाओं में जो रागद्वेष रहित समान परिणाम होना उसे सामायिक कहते हैं।

स्तवन—

जो पहले प्रकरण में बतलाये गये ऋषभ, अजित आदि चौबीस तीर्थंकरों के नाम की स्तुति और नाम के अनुसार अर्थ करना उनके असाधारण गुणों को प्रकट करना, उनके चरणकमलों की पूजा करना, मन, वचन, काय की शुद्धि से उनकी स्तुति करना उसे चतुर्विंशति स्तुति कहते हैं।

बंदना—

अरहन्त प्रतिमा, सिद्धप्रतिमा, अनशन अर्थात् उपवासादि बारह प्रकार के तपसे अधिक तपगुरू, अंगपूर्वादि संपूर्ण आगम ज्ञान से अधिक ज्ञानगुरू, व्याकरण न्याय आदि ज्ञान से विशेष अधिक ज्ञानीगुरू, अपने को दीक्षा को देने वाले दीक्षागुरू और

बहुत काल के दीक्षित वृद्धगुरू, इनको श्रुत भक्ति के द्वारा तथा मन में उनका स्मरण कर मन से बैठे २ बंदना नमस्कार करना इसे बंदना कहते हैं।

प्रतिक्रमण–

आहार शरीरादि द्रव्य में, वस्तिका शयन आसनादि क्षेत्र में, प्रातःकाल आदि काल में, चित्त के व्यापार रूप भाव में, किया गया जो व्रत में दोष उसका शुभ मन, वचन, काय से शोधना अपने किये हुए दोष को अपने आप प्रगट करना, आचार्यादिकों के समीप आलोचना पूर्वक अपने दोषों को प्रगट करना। वह साधुजनों के प्रतिक्रमण गुण होता है।

प्रत्याख्यान–

नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव। इन छहों में शुभ मन वचन काय से आगामी काल के लिये अयोग्य का त्याग करना अर्थात् अयोग्य नाम नहीं करूंगा, न कहूँगा और न चिंतवन करूंगा इत्यादि त्याग को प्रत्याख्यान कहते हैं।

कायोत्सर्ग–

दिन में होने वाली दैवसिक आदि निश्चय क्रियाओं में अरहंत भाषित पच्चीस, सत्ताईस व एकसौ आठ उच्छ्वास इत्यादि परिमाण से कहे हुए अपने २ काल में दया, क्षमा, सम्यग्दर्शन अनन्तज्ञानादिचतुष्टय इत्यादि जिन गुणों की भावना सहित देह मे ममत्व का छोड़ना वह कायोत्सर्ग है।

केशलोंच–

दो महीने, तीन महीने, चार महीने बाद उत्कृष्ट, मध्यम जघन्यरूप व प्रतिक्रमणसहित दिन में उपवास सहित जो

अपने हाथ से मस्तक, डाढी, मूंछ के केशों का उखाड़ना । वह लोंच नामा मूलगुण है ।

अचेलकपन व्रत–

कपास, रेशम, रोम, तीन प्रकार के बने हुए वस्त्र, मृगछाला आदि चर्म, वृक्षादि की छाल से उत्पन्न सन आदि के टाट, अथवा पत्ता तृण आदि- इनसे शरीर का आच्छादन नहीं करना, कड़े हार आदि आभूषणों से भूषित न होना, संयम के विनाशक द्रव्यों करि रहित होना- ऐसे तीन जगतकरि पूज्य वस्त्रादि बाह्य-परिग्रह रहित होना अचेलकव्रत मूलगुण है। इससे हिंसा का उपार्जनरूप दोष, प्रक्षालनदोष, याचनादिदोष नहीं होते।

अस्नानव्रत–

जल से न्हानारूप स्नान, आदि शब्द से उबटना, अंजन लगाना, पान खाना, चंदनादिलेपन- इस तरह स्नानादि क्रियाओं के छोड़ देने से जल्लमल्लस्वेदरूप देह के मैल कर लिप्त हो गया है सब अंग जिसमें, ऐसा अस्नान नामा महान गुण मुनि के होता है । उससे कषायनिग्रह रूप प्राणसंयम तथा इन्द्रियनिग्रहरूप इन्द्रियसंयम इन दोनों की रक्षा होती है । यहां कोई प्रश्न करे कि स्नानादि न करने से अशुचिपना होता है ? उसका समाधान यह है कि मुनिराज व्रतोंकरि सदा पवित्र हैं, यदि व्रतरहित हो के जलस्नान से शुद्धता हो तो मच्छी, मगर, दुराचारी, असंयमी, सभी जीव स्नान करने से शुद्ध माने जायंगे सो ऐसा नहीं है । प्रत्युत जलादिक बहुत दोषों सहित हैं । अनेक तरह के सूक्ष्मजीवों से भरे हुए हैं । पाप के मूल हैं । इसलिये संयमी जनों को अस्नानव्रत ही पालना योग्य है ।

क्षिति शयन व्रत–

जीव बाधा रहित, अल्पसंस्तर रहित, असंयमी के गमनरहित-गुप्त भूमि के प्रदेश में दंड के समान अथवा धनुष के समान एक पसवाड़े से सोना वह क्षितिशयन मूलगुण है।

अदन्तवनव्रत–

अंगुली, नख, दांतौन (तृणविशेष) पैनी कंकणी, वृक्ष की छाल (बक्कल) आदि कर दांतमल को नहीं शुद्ध करना अर्थात् दांतौन नहीं करना वह इन्द्रिय संयम की रक्षा करने वाला अदंतवन मूलगुण व्रत है।

स्थितभोजनव्रत–

अपने हाथरूप भाजन पर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुल के अंतर से समपाद खड़े रहकर अपने चरण की भूमि, झूठन पड़ने की भूमि, जिमानेवाले के प्रदेश की भूमि-ऐसी तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना, वह स्थित भोजन नामा मूलगुण है।

एक भुक्त का स्वरूप—

सूर्य के उदय और अस्त काल की तीन घड़ी छोड़ कर, वा मध्यकाल में एक मुहूर्त, दो मुहूर्त, तीन मुहूर्त काल में एक बार भोजन करना, वह एकमुक्त मूलगुण है।

मूलगुणों का फल—

इस प्रकार पूर्व कहे गये विधान से युक्त मूलगुणों को मन वचन काय से जो पालता है, वह तीन लोक में पूज्य होकर अविनाशी सुख वाले कर्मरहित जीव की अवस्थारूप मोक्ष को पाता है।

इस प्रकार जैन साधु ऊपर कहे हुए अठाईस मूलगुण पालते हैं। जैन साधु के अन्दर इन अठाईस में से एक भी गुण कम हो तो उसे जैन शास्त्र के अनुसार पूर्ण साधु पद के योग्य नहीं माना गया है। इन अठाईस मूलगुणों के पालने से ही पूर्ण अहिंसा धर्म तथा आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का अधिकारी बन पाता है। और पूर्ण अहिंसा धर्म के आराधक होने के कारण ये साधु सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर दया अर्थात् एक वृक्ष से लेकर चीटी, पशु-पक्षी इत्यादि जो भी शरीरधारी प्राणी पृथ्वी पर विचरते हैं, उनकी रक्षा करने में हमेशा दत्तचित्त रहते हैं। तथा शत्रु मित्र में समभाव और अपने शरीर से भी आशा नहीं रखते हैं। और सम्पूर्ण प्राणी मात्र के कल्याण तथा अपनी आत्मोन्नति में रत रहते हैं। जैसे कहा भी है—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यान तपो रक्त तपस्वी स प्रशस्यते ॥

हमेशा यह साधु संपूर्ण सांसारिक वासनाओं से विरक्त, सांसारिक आरम्भों से रहित, संपूर्ण परिग्रहों से रहित होकर केवल स्वपर कल्याण की भावनायें लेकर यह साधु ध्यान और अध्ययन में रत रहते हैं और आत्मसाधन की रक्षा के निमित्त शरीर रक्षा के लिये एक दिन में एक बार गृहस्थी द्वारा अपने लिये बनाये हुए शुद्ध भोजन में से विनय पूर्वक उनके द्वारा दिया गया शुद्ध भोजन खड़े होकर अपने हस्तपुट से लेते हैं। केवल आहार के निमित्त श्रावक के घर जाते हैं जिस समय भोजन करते हैं पानी दूध जो भी खाने की चीज है उसी समय लेते हैं, और उसमें रुचि नहीं रखते हैं। शरीर आत्म साधन का मुख्य साधन है वह

आहार बिना नहीं चलता है ऐसा समझ कर आहार ग्रहण करते हैं। शरीर की पुष्टि या शक्ति बढ़ाने के लिये आहार नहीं लेते हैं। इन चीजों से भी वासनाओं को घटाने की कोशिश करते हैं।

इस प्रकार वासना तथा संसार वासनाओं को कम करने की तथा ध्यान अध्ययन सब की वृद्धि और शरीर मोह इत्यादि की आशा इसलिए करते हैं कि पूर्ण रीति से संसारी वासना तथा इन्द्रिय वासनाओं से रुचि घटने से आत्मस्वरूप के प्रति अच्छी तरह रुचि बढ़ जाने से अंत में निर्विकल्प समाधि सिद्धि प्राप्त करने में कष्ट न हो। जो भी जैन शास्त्र में साधु की त्याग अवस्था का साधन बतलाया गया है, वह त्याग निर्विकल्प समाधि की अंतिम साधना के लिये बतलाया गया है।

यह साधु बनने के पहले से ही ग्रहस्थ अवस्था में रहते हुए भी त्याग की भावनाओं को बढ़ाने के निमित्त रागादि वासनाओं को घटाने के लिये परिग्रहादि में भी लालसा कम रखते हैं। और भोगादि विषय वासनाओं में अरुचि रखते हुए विषय वासना रूपी रस को सुखा देते हैं। जैसे राग रस घटता जाता है उतनी उतनी आत्मोन्नति की झलक अनुभव में प्रकट होती है। जितनी जितनी प्रकट होती है उतनी ही वैराग्य भावना भी बढ़ती जाती है। जब संपूर्ण भोगादि संसार वासना परिपक्व होकर कर्म की निर्जरा होती है तब शरीर मात्र परिग्रह रखकर अंत में निर्ग्रन्थ अवस्था प्राप्त कर आत्मध्यान व तप के द्वारा शरीरस्थ आत्म-स्वरूप को पहचान कर अपने स्वानुभव के द्वारा शरीर और आत्मा के भिन्न २ रूप में देखकर उसी के अनुसार आचरण करते हुए जब शरीर पूर्ण परिपक्व हो जाता है तब अपने

आप बिना प्रयत्न से गिरने लगता है। तब उस साधु को कष्ट मालूम होता है और भीतर की ज्योति की झलक पहले से ही पुष्टि को प्राप्त होने के कारण शरीर बल कम होकर गिर जाता है। केवल निर्विकल्प आत्मा ही नजर में आता है और भूख प्यास पूर्णतया पहले से नष्ट होजाती है, इसी को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। यह आत्म-हत्या नहीं है। इसका खुलासा यह है जैसे कच्चे नारियल का झाड़ में जब तक डंठल के साथ मजबूत सम्बन्ध बना हुआ है अगर जबरदस्ती उस कच्चे नारियल को गिराया जावे तो वह कच्चा नारियल खाने योग्य कभी नहीं हो सकता। न ही उसके अन्दर खोपरा अर्थात् गिरी जमा होगी, नाहीं उसका पानी मीठा होगा, न पुनः झाड़ में लग सकता है, सो हर प्रकार से वह कच्चा नारियल खराब होता है। अगर नारियल क्रम क्रम से बढ़ता जायेगा और उसके अन्दर का कच्चा खोपरा जिसका छिलके के साथ मजबूत सम्बन्ध है वह सम्बन्ध जैसे २ कच्चा पड़ जायेगा वैसे वैसे नारियल पक्का होगा और उसमें लगा डठल भी सूख जायेगा जैसे क्रम क्रम से सूखते सूखते नारियल का भीतरी खोपरा पक्का होकर छिलके से सम्बन्ध छोड़कर गोले के रूप में पृथक् होता है तब उसके ऊपर जितनी भी चोट मारी जायेगी तो भी वह छिलके से पृथक् होगा, परन्तु भीतरी गोले को चोट नहीं आती है। जब उसका डंठल पक कर सूख जाता है तब बिना मेहनत के आप ही आप गिर जाता है। उसे तोड़ने की जरूरत नहीं होती। तब वह नारियल जहाँ भी उसे ले जाया जाय वहाँ पूजनीय तथा लोगों का प्रिय तथा खाने योग्य होता है। दुनियाँ में उसका मूल्य बढ़ जाता है। अगर कच्चे को तोड़कर रख दिया जावे

तो तुरन्त ही सड़ जाता है। और लोक निंद्य माना जाता है। अर्थात परिपक्व अवस्था के बिना टूट जाना ही आत्म-हत्या के समान है।

इसी तरह यह जीवात्मा जब तक गृहस्थावस्था में राग से इन्द्रिय वासनाओं में संसार में आत्मा के साथ रंगा हुआ है और जब तक मोहरूपी चिकनेपन का आत्मा के साथ सम्बन्ध है और यह जीवात्मा जब तक उसको अपना मान कर उसके साथ चिपका हुआ है तब तक आत्मीक तत्व की परिपक्वता नहीं हो सकती। कदाचित् रोग से या कोई बीमारी से या शस्त्रघात से या आत्म हत्या से शरीर छूट जावे तो उसे आत्महत्या या अकाल मृत्यु कहते हैं। परन्तु शरीर छोड़कर निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त हुआ, ऐसा नहीं कह सकते। जब गृहस्थ संसार भोगादि विषय वासना रूपी संसारी रागरस को क्रम २ से सुखाने के लिए जन्म लेकर त्याग का अभ्यास कर राग रूपी विकल्प परिपक्व करके अन्त में भोगादि शूल सूखकर अखंड आत्म ज्योति शरीर से गोले की तरह भिन्न स्वरूप हो जाता है और शरीरादि पर वस्तु रूप में दिखने लगता है। तब आप ही आप गिर जाता है और बिल्कुल संसार वासना नष्ट हो जाती है अर्थात् संसार भोगादि शूल बिल्कुल नष्ट होकर शरीर छूट जाता है तो इसको सल्लेखना या समाधि-मरण या निर्विकल्प दशा कहते हैं। इसी का नाम पूर्ण साधु अवस्था है। यही साधु परमानन्द परमपद या शिवपद वीतराग-रूप अवस्था को प्राप्त होता है अर्थात् सच्चे परमपद व आत्म-स्वभावरूपी सच्चे स्वराज्य को प्राप्त हो जाता है। इसी से नर से नारायन पद प्राप्त हुआ कहलाते हैं। यही साधु का सच्चा मार्ग है।

इसी पद की प्राप्ति के लिये महान् राजा महाराजाओं ने राज्यपद में रहते हुए भी ग्रहस्थ अवस्था में एक देश अहिंसा को पालन करते हुए आत्मोन्नति का साधन करते हुए अन्त में राज्य-पद को छोड़ दिया।

संसार में तब तक रहे कि जब तक आत्मोन्नति का साधन पूर्णतया साधन न हो या अभ्यास या शक्ति प्राप्त न हो। जब आत्मपद प्राप्त कर लेने की शक्ति उनके अन्दर प्रकट होजावे तभी इस संसार को त्याग कर मुनि पद धारण कर तप और ध्यान के द्वारा कर्म की निर्जरा कर अखंड सुख प्राप्त कर लेवे।

श्री ऋषभदेव जी का काम–

ऋषभदेव पहले तीर्थंकर तब हुये थे जब आर्यखण्ड में भोग-भूमि के पीछे कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने प्रजाको असि आदि छः कर्मों से आजीविका करना सिखाया था। प्रजा का विभाग उनकी योग्यतानुसार तीन वर्णों में कर दिया था। जो शस्त्र रखकर रक्षा करने की योग्यता रखते थे उनको क्षत्रिय वर्ण में। जो कृषि, वाणिज्य, मसिकर्म के योग्य थे उनको वैश्य वर्ण में, जो शिल्प व विद्या कर्म से आजीविका करने योग्य थे व सेवा कर्म के योग्य थे उनको शूद्र वर्ण में स्थापित किया था। राज्य दंड बिधान जारी किया था।

भरत बाहुबलि युद्ध–

उन ही के पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए थे। इन्होंने सेना लेकर दिग्विजय करके भरत क्षेत्र के छः खण्डों को वश में किया था। बड़े प्रभावशाली थे। इनके भाई बाहुबलिजी थे। यह वश में न हुए तब चक्रवर्ती ने युद्ध करके वश करना चाहा। भरत की ओर

बाहुबलि की बहुत बड़ी सेना थी। युद्ध की तैयारी हो गई थी। तब दोनों के मन्त्रियों ने विचार किया कि इस युद्ध में लाखों मानव व पशुओं का संहार होगा। कोई ऐसा उपाय निकाला जावे जो युद्ध न हो और दोनों भाई आपस में निबट लें। दोनों मन्त्रियों ने तीन प्रकार के युद्ध निश्चित किये—व्यायामयुद्ध, दृष्टियुद्ध, जल-युद्ध। दोनों भाई इस पर राजी होगये। दोनों भाई स्वयं व्यायाम करने लगे, दृष्टि मिलाने लगे, जल से कलोल करने लगे। तीनों में भरतजी हार गए, बाहुबलिजी जीत गये। यह उदाहरण इसलिए दिया गया कि एक जैनी राजा का धर्म है कि विरोधी हिंसा को जहां तक हो, बचावे। केवल लाचारी से और कोई उपाय न होने पर ही करे।

श्री रामचन्द्र और जैनधर्म—

जैन पुराणों में श्री रामचन्द्र को आठवाँ बलभद्र व लक्ष्मण को आठवां नारायण लिखा है वह जन्म से जैनधर्म को पालने वाले थे, ऐसा बताया है। श्री रामचन्द्रजी श्रावक धर्म के पालने वाले थे, न्याय मार्गी थे, जैनधर्म के अहिंसा तत्व को मान्य करते थे। संकल्पी हिंसा के त्यागी थे। आरम्भी के त्यागी नहीं थे। जब रावण श्री रामचन्द्रजी की स्त्री पतिव्रता सीता को छल से हरण कर ले गया तब रामचन्द्रजी ने बहुत से अहिंसात्मक उपाय किये जब रावण ने सीता को नहीं लौटाया और अहंकार के पर्वत से नहीं उतरा तब न्याय व धर्म की रक्षार्थ रामचन्द्र को हिंसात्मक प्रयोग करना पड़ा। विरोधी हिंसा करनी पड़ी। युद्ध की तैयारी करने पर भी राम ने हनुमान को भेजा कि रावण हठ को छोड़ देवे। जब उसने हठ को नहीं छोड़ा, तब रामचन्द्र ने सेना लेकर

लंका पर चढ़ाई की, रावण का वध करना पड़ा, सीता की रक्षा करनी पड़ी। यह कार्य गृहस्थ धर्म के अनुकूल ही किया। विरोधी हिंसा का गृही त्यागी नहीं होता है।

वीर वैश्य जम्बू स्वामी–

जैन पुराणानुसार श्री महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद ६२ वर्ष में तीन केवलज्ञानी हुए हैं। अन्तिम केवलज्ञानी श्री जम्बूस्वामीजी हुए हैं। अब वीर निर्वाण सम्वत् २४८२ (सन् १९५६) है। यह जम्बूकुमार कुल में वैश्य श्री अरहन्तदास के पुत्र थे। यह युद्ध कला में बहुत निपुण थे। राजगृही में जब श्रेणिक या बिम्बसार का राज्य था तब राज्यसभा में जाया करते थे एक दफै उस राज्य पर चढ़ाई की और युद्ध किया। ८००० योद्धाओं का संहार किया। विजयलक्ष्मी हस्तगत की। फिर जब त्यागी हो गए, तो उसी शरीर से मोक्ष का लाभ किया। महावीर स्वामी के पीछे का इतिहास भी जैन वीरों के वर्णन से भरा पड़ा है।

चन्द्रगुप्त मौर्य---

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् भारतवर्ष में हुए हैं। सन ई० से ३२० वर्ष पहले उन्होंने ग्रीक लोगों का आक्रमण भारत पर रोका, वीरता से लड़कर सेल्युकस से संधि की। उसने अपनी पुत्री इनको विवाही। इसकी आज्ञा सारे भारत में चलती थी। यह अन्त में श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली का शिष्य मुनि होगया व श्रवणबेलगोला में गुरु भद्रबाहु का समाधिमरण कराया।

राजा खारवेल---

राजा खारवेल मेघवाहन कलिंग देश का अधिपति बड़ा

प्रतापशाली जैन राजा सन् ई० १५० वर्ष पहले हुआ है, इसने कई युद्ध किये। जैनधर्म का बड़ा भारी भक्त था। खंडगिरि, उदयगिरि पर्वतों पर सैंकड़ों गुफायें जैन साधुओं के ध्यान के लिए ठीक कीं। ये कटक के पास भुवनेश्वर स्टेशन से ५-६ मील है। उनका चरित्र वहाँ की हाथी गुफा के भीतर अंकित है।

चामुण्डराय वीर मार्तण्ड—

दक्षिण में गंगावंशी राजाओं ने मैसूर प्रान्त में व आसपास में दूसरी शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी तक राज्य किया है। वे सब राजा जैनधर्मी थे। वहाँ पर एक सेनापति चामुण्डराय था, जिसने कई युद्ध विजय करके वीर मार्तण्ड, समर परायण आदि की पदवी प्राप्त की थी। धर्मात्मा इतना था कि उसने श्रवणबेलगोला में ५६ फुट ऊँचो श्री बाहुबलि स्वामी की मूर्ति स्थापित की। दशवीं शताब्दी में प्रतिष्ठा कराई। इनके लिए श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने श्री गोमठसार ग्रन्थ रचा था। इन ने स्वयं चारित्रसार लिखा है। व कनड़ी में स्वयं गोमटसार की टीका लिखी थी व अन्य ग्रन्थ बनाए थे।

महाराजा अमोघवर्ष—

दक्षिण हैदराबाद मान्यखेट राज्य में कई राजा जैनी हुए हैं। प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुआ है। ६० वर्ष तक न्याय पूर्वक राज्य किया। अन्त में यह स्वयं श्री जिनसेनाचार्य का शिष्य मुनि होगया था। भारतवर्ष के इतिहास में जैन वीरों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उदयपुर के राजा भामाशाह जैन थे जिसने करोड़ों का धन दिया व स्वयं सेना में शामिल हो गया।

जैन ग्रन्थों से प्रगट है कि श्री महावीर स्वामी के समय में

तीन प्रकार जैन राजा भारत के भिन्न भिन्न स्थानों पर राज्य करते थे।

सत्य अहिंसामय युद्ध है--

कभी कभी गृहस्थों को भी मुनियों की तरह किसी अन्याय के मिटाने के लिये व अपनी सत्य प्रतिज्ञा को पालने के लिए स्वयं कष्ट सहकर तप करना पड़ता है। प्राणों के त्याग को सत्य प्रतिज्ञा के पालन की अपेक्षा तुच्छ समझा जाता है। इसको सत्याग्रह का अहिंसामय युद्ध कहते हैं। इस युद्ध में बहुधा उसके तप के प्रभाव से विजय होती है। परन्तु यह तप तभी करना चाहिये जब अपना प्रयोजन बिल्कुल सत्य ठीक व न्याययुक्त हो तथा जो कोई इस सत्य व न्याय में बाधक हो वह हमारे तप से प्रभावित हो सके। इस बात का निर्णय अपनी तीव्र बुद्धि से गृहस्थ को करना चाहिए। दुष्ट व बदमाश व गाढ़ अन्यायी के सामने यह अहिंसामय हमारा तप कार्यकारी नहीं होगा। जैन सिद्धान्त में पुराणों के भीतर ऐसे कई उदाहरण हैं। उनमें से दो तीन यहाँ दिये जाते हैं।

अहिंसा युद्ध में यमपाल चांडाल का सत्याग्रह--

यमपाल चांडाल एक राजा के यहाँ फांसी देने के काम पर नियत था। एक दफै वह एक साधु महात्मा के उपदेश को, सुनने चला गया। वहाँ अहिंसा धर्म का उपदेश था, हिंसा करना पापबंध का कारक है। अहिंसा परम प्रिय वस्तु है। प्राणीमात्र की रक्षा करना धर्म है। यह भी उपदेश में निकला कि यदि रोज आरम्भी हिंसा न छूटे तो महीने में दो अष्टमी व दो चौदश के दिनों में गृहस्थी को उपवास करके धर्म ध्यान करना चाहिये व

उस दिन आरम्भी हिंसा भी न करनी चाहिये। इस कथन को सुनकर उपस्थित लोगों ने इन चार पर्वों में आरम्भी हिंसा का त्याग किया। यमपाल चांडाल ने भी महीने में दो दिन चौदस को आरम्भी हिंसा का त्याग किया और उस दिन फांसी न देने की प्रतिज्ञा करली। वह चौदस के दिन राज्यकार्य में नहीं जाता था। व घर ही पर रहकर धर्म का चिंतवन करता था। वहाँ के राजा ने एक दफै अष्टाह्निका व्रत के आठ दिवस में यह नगर में ढिंढोरा पिटा दिया था कि कोई मानव पशु का घात न करे न करावे. जो करेगा उसे भारी दण्ड मिलेगा। उस राजा के एक पुत्र ने ही मांस की लोलुपतावश प्राणघात कराया। राजा को मालूम पड़ गया। उसने उस पुत्र से रुष्ट होकर उसको फांसी पर चढ़ाने की आज्ञा दे दी। वह दिन चौदस का था। कोतवाल ने यमपाल चांडाल को घर से बुलवाया कि वह राजपुत्र को फांसी पर लटकावे। सिपाही लोग यमपाल के घर पर आये। आवाज़ लगाई, किवाड़ बन्द थे। यमपाल समझ गया कि किसी हिंसा के काम को कराने के लिये राजा ने बुलवाया होगा। उसने अपनी स्त्री से कह दिया कि कहदे कि वह घर पर नहीं है। तब सिपाही बोला कि वह बहुत कमनसीब है। आज राजा के पुत्र को फांसी पर लटकाना है। यदि वह होता व चलता व फांसी देता तो उसको राजपुत्र के हजारों रुपये के गहने कपड़े मिल जाते।

स्त्री को इन वचनों के सुनने से लोभ आगया। उसने किवाड़ खोल दिये और मुँह से कहती हुई कि पतिदेव नहीं हैं, उंगली के इशारे से बताने लगी कि वे वहां पर बैठे हैं। सिपाही ने यमपाल को पकड़ लिया। कोतवाल के पास ले आया। कोतवाल

ने आज्ञा की कि राजकुमार को फांसी पर लटकाओ। तब यमपाल ने प्रार्थना की कि आज चतुर्दशी है। आज मैंने हिंसा करने का त्याग किया है। मैं इस काम को आज नहीं कर सकता हूँ, क्षमा करें। कोतवाल ने राजा को खबर की। राजा ने शान्ति से विचार किये बिना क्रोध युक्त हो यमपाल को बुलाकर कहा कि आज्ञा का पालन करो। उसने बड़ी विनय से प्रार्थना की कि आज मुझ पर कृपा करें। मैंने मुनिराज के पास आज के दिन हिंसा करने का त्याग किया है। मैं लाचार हूँ, मैं अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ नहीं सकता। राजा ने धमकी दी कि यदि तुम आज्ञा न मानोगे तो तुमको भी प्राणदण्ड मिलेगा। तब यमपाल चांडाल ने विचार किया कि मुझे अपने सत्य को निभाना चाहिये। प्राण भले ही चले जावें परन्तु सत्य आग्रह या सत्य प्रतिज्ञा को कभी न तोड़ना चाहिए। धर्म के नाश से मेरी आत्मा का बुरा होगा। प्राण तो एक दिन छूटने ही हैं, आत्मा का नाश तो नहीं होता।

उसने प्राण त्याग का निश्चय करके कह दिया—महाराज! मैं धर्म को छोड़ नहीं सकता हूं। यदि प्राण भी जावें तो परवाह नहीं है। इस समय यमपाल के मन में अहिंसामय तप की भावना हो गई कि धर्म त्याग न करूंगा, चाहे प्राण चले जावें व राजा की आज्ञा मेरे धर्म को भ्रष्ट करने वाली मेरे लिये न्यायपूर्ण नहीं है। राजा एक दिन ठहर सकता है व दूसरे को आज्ञा दे सकता है। राजा विचार नहीं करता है तो मुझे तो सत्य व्रत न छोड़ना चाहिए। यही सत्याग्रह का तप है जो न्याय व धर्म के पीछे प्राणों की बाजी लगा देना।

राजा आज्ञा देता है कि इस यमपाल को व राजपुत्र को, दोनों को गहरे तालाब में डुबा दिया जावे। सेवक गण दोनों को ले जाते हैं। यमपाल आत्मा के अमरत्व का व अहिंसा व्रत के पालने से दृढ़ता रखने का विचार करता हुआ हर्षित मन से चला जाता है व मन में कहता है कि आज मेरे प्राणों की परीक्षा है। मुझे परीक्षा में सफल होना चाहिए। उसके मन की दृढ़ भावना का व तप का यह फल होता है कि उसको एक देव तालाब से निकाल कर एक ऊंचे सिंहासन पर विराजमान कर देता है व उसके साथी और देव भी आते हैं। सब देव मिल कर उसके धर्म में स्थिर रहने की स्तुति करते हैं।

यह खबर राजा को पहुँचती है। राजा भी आता है वह उसकी महिमा देखकर अपने मूर्खता पूर्ण व क्रोधपूर्ण व्यवहार पर पश्चाताप करता है व इस यमपाल को धर्मात्मा समझ कर उसका स्वर्ण कलशों से स्नान कराता है, नए वस्त्राभूषण पहनाता है, कुछ ग्राम देता है। वह तब से एक धर्माङ्ग नित्य अहिंसा धर्म पालने वाला गृहस्थ श्रावक हो जाता है। चांडाल कर्म का त्याग कर देता है। इस तरह यमपाल चांडाल ने सत्याग्रह के अहिंसामय तप से विजय पाई।

श्री सुदर्शन सेठ की कथा–

ंपापुर में सेठ वृषभदास राज्यमान्य थे। उनका पुत्र सुदर्शन कामदेव के समान रूपवान्, विद्वान्, धर्मात्मा था, जो जैनधर्म के श्रावक पद के बाहर व्रत पालता था। अष्टमी चौदस को उपवास करके स्मशान के निकट ध्यान करने को जाता था। एक दिन सेठ सुदर्शनकुमार युवावय में राजा के साथ वन की सैर करने को

गया था। राजा की रानी सुदर्शन को देखकर मोहित हो गई उसने एक प्रवीण सखी से कहा कि रात्रिको उसे महल के भीतर लाओ। सखी ने एक कुम्हार से सेठ सुदर्शन के आकार का मट्टी का पुतला बनवाया और रानी के महल में लेकर चली तब दरबान ने रोका। उस सखी ने मट्टी के पुतले को पटक दिया और क्रोध में बोली—रानी ने यह खिलौना मंगाया था सो तुम्हारे डर से यह फूट गया। रानी बहुत क्रोधित होगी।

तब सब सिपाहियों ने बिनती की कि दूसरा पुतला लेआ अब तुझे नहीं रोकेंगे। इस तरह द्वारपालों को वश करके वह लौटी। अष्टमी का ही दिन था। सेठ सुदर्शन उपवास करके रात्रि को वन में आसन लगाए ध्यान कर रहे थे। उसने सेठ को कंधे पर चढ़ा लिया और रानी के महल में लाकर धर दिया। रानी कामभाव से पीड़ित थी। अनेक हावभाव विलास किये, परन्तु सेठ सुदर्शन का मनमेरू नहीं डगमगाया। सेठजी उसे उपसर्ग समझ कर पत्थर के समान ध्यानी व मौनी रहे। मन में प्रतिज्ञा कर ली कि जो इस उपसर्ग से बचे तो मुनि दीक्षा धारण करेंगे। रानी ने रात भर चेष्टा की। जब देखा कि यह तो टस से मस न हुए, इतने में सवेरा हो गया।

अपना दोष छिपाने को इसने अपना अंग मर्दन किया व नखों से विदार लिया और गुल मचा दिया कि एक सेठ कुमार मेरी लज्जा लेने को आया है, मेरे घर बैठा है। राजा को खबर हुई, राजा क्रोध से भर गया, बिना विचारे यह आज्ञा कर दी कि उस सेठ का सिर फौरन अलग कर दो। चाकर लोग तुरन्त सेठ को वध करने को ले गए। सेठ मौन में, ध्यान में, सत्य प्रतिज्ञा

आरूढ़ थे। उस समय यदि अपना बचाव करते तो कोई ठीक नहीं मानते इससे शान्ति से प्राण देना ही ठीक समझा। सत्याग्रह से अहिंसामई तप किया। वहां के रक्षक देव ने अवधिज्ञान से यह सब चरित्र जान लिया व सेठ को निर्दोष व धर्मात्मा जान कर उसकी रक्षा करना धर्म समझा। जैसे ही सेठ के ऊपर तलवार चलाई गई वह गले के पास आते ही फूल की माला हो गई। देवों ने प्रकट होकर बहुत स्तुति की। राजा भी आया। देवों ने रानी का दोष प्रकट किया व सेठ को निर्दोष व धर्मात्मा सिद्ध किया। राजा ने रानी को उचित दण्ड दिया। सेठ सुदर्शन सत्याग्रह के अहिंसामय तप में विजय पाकर परम संतोषित हुए और तब सब को धर्म का माहात्म्य बताकर व समझा कर संतोषित किया। अपने पुत्र सुकांत को बुलाकर कर्त्तव्य पालन की शिक्षा दी। फिर आप वन में विमलवाहन मुनि के पास गए। सर्व परिग्रह त्याग कर मुनि हो गए। पूर्ण अहिंसा धर्म पालने लगे। प्रभु ध्यान की अग्नि से कर्मों का नाश कर अरहंत होकर सिद्ध व मुक्त हो गए। सेठ सुदर्शन का निर्वाण स्थान पटना गुलजारबाग स्टेशन के पास ही निर्मापित है। इस निर्वाण भूमि की सर्व दिगम्बर व श्वेतांबर जैन पूजन करते हैं।

अहिंसा सत्याग्रहिणी सीता जी—

श्री रामचन्द्रजी की स्त्री सीता को जब रावण विद्याधर दण्डकवन में से छल करके हर ले गया तब एकाकी सीता ने अपने धर्म की व शीलव्रत की रक्षा सत्याग्रह के अहिंसामय तप से की। उसने रावण के यहां जाकर अन्नपान त्याग दिया व नियम ले लिया कि जब तक मुझे श्री रामचन्द्रजी के कुशल-क्षेम के समा-

चार नहीं मिलेंगे तब तक मैं उपवास करके आत्मचिंतन करूंगी व रावण जो उपसर्ग देगा सहन करूंगी। रावण ने अनेक लालच दिये परन्तु सीता जी का मन कुछ भी विकारयुक्त नहीं हुआ। कुछ दिनों के बाद हनुमानजी पहुँचे व सीताजी से मिले। रामचन्द्र की कुशल क्षेम विदित हो गई तब उसने आहार पान किया। निरन्तर शीलधर्म की रक्षा करती हुई रहती थी। उसकी सत्य प्रतिज्ञा के प्रताप से रावण का वध किया गया। लंका को विजय किया गया। सीता सानन्द शील धर्म की रक्षा करती हुई अयोध्या में आ गई। सत्य व शील की विजय अहिंसामय सत्य प्रतिज्ञा से हो गई।

नीली सती की कथा--

प्राचीन लाड़ देश वर्तमान गुजरात देश में भृगुकच्छ नगर—वर्तमान भड़ोंच नगर में एक जिनदत्त सेठ बड़े धर्मात्मा जैनी थे। उनके एक पुत्री नीली थी। वह विदुषी, धर्मात्मा व श्रावक धर्म के पालन में निपुण थी। यह रोज श्री जिनमन्दिर में पूजन करने जाती थी। एक दूसरे सेठ के कुमार सागरदत्त ने देखा तो मोहित हो गया व विवाह की कामना करने लगा। यह सागरदत्त बौद्ध धर्मी था। जिनदत्त के यह नियम था कि मैं अपनी पुत्री जैन को ही विवाहूँगा। सागरदत्त ने व उसके कुटुम्ब ने नीली के विवाह के लिये कपट से जिनधर्म धारण कर लिया। वे श्रावक के नियम कपट से पालने लगे। कुछ दिन पीछे जिनदत्त से सागर-दत्त के पिता ने कन्या नीली के विवाहने की इच्छा प्रगट की। जिनदत्त ने सागरदत्त को जैनी जान कर नीली का विवाह कर दिया। विवाह के पीछे सागरदत्त व कुटुम्ब जैन धर्म को छोड़ कर बौद्ध धर्म साधन करने लगे। तब जिनदत्त व नीली को बहुत ही

में क्लेश हुआ। परन्तु संतोष धारकर नीली घर में सर्व कर्तव्य करती थी। धर्म में जिनधर्म का साधन करती थी, पूजन जिन-मन्दिर में करती थी। मुनिदान देकर भोजन करती थी। सागर-दत्त के कुटम्ब ने बहुत चेष्टा की कि नीली बौद्धधर्मी हो जावे। जब नीली ने किसी भी तरह जैनधर्म को नहीं छोड़ा तो एक दिन उसकी सास ने कलंक लगा दिया कि वह कुशील सेवन करती है।

जब नीली ने अपना दोष सुना तब वह दुःखित हुई और यह सत्य प्रतिज्ञा की या सत्याग्रह किया कि जब तक यह झूठा दोष दूर न होगा और मैं कुशीली नहीं हूँ, शीलवती हूँ, ऐसी सिद्धि न होगी तब तक मैं अन्नपान ग्रहण नहीं करूँगी। ऐसी प्रतिज्ञा लेकर वह जिनमन्दिर जी में जाकर बड़े शांत भाव से श्री जिनप्रतिमा के सामने खड़े होकर आत्मध्यान करने लगी। उस शीलवती नारी के शील माहात्म्य से नगर रक्षक देव रात को नीली के पास आया और कहने लगा—हे सती! नगर के द्वार सब बंद कर देता हूँ व राजा को स्वप्न देता हूँ कि वे द्वार उसी स्त्री के पग के अंगूठे लगने से खुलेंगे जो मन, वचन, काय से पूर्ण शीलवती होगी। तेरे बायें पग के लगने से द्वार खुलेंगे, तेरे शील की महिमा प्रगट होगी। देव ने ऐसा ही किया।

राजा ने स्वप्न को याद कर के आज्ञा दी कि नगर की स्त्रियां पग से द्वारों को खोलें अनेक स्त्रियों ने उद्यम किये। कपाट नहीं खुले। इतने में नीली को बुलाया गया। इसने बड़ी शांति से णमो-कार मंत्र पढ़कर जैसे ही अपना बायां पग लगाया, द्वार खुल पड़े। राजा प्रजा ने शील की महिमा देखकर नीली की बहुत स्तुति की।

नीली के बौद्ध धर्मी कुटुम्ब ने और नगर के लोगों ने जैन धर्म धारण कर लिया। सत्याग्रह से नीली की विजय हुई। जहां कोई बलवान व अधिकारी निर्बल के साथ अन्याय व जुल्म करता हो यह सत्याग्रह का अहिंसामय तप बलवान का मद चूर्ण करने को वज्र समान है।

महात्मा गांधी—

महात्मा गांधी ने अफ्रिका में व भारत में इस सत्याग्रह के तप से राज्यशासन द्वारा होता हुआ अनुचित बर्ताव रोका है व गरीबों का कष्ट मिटवाया है। गुजरात में बारडोली के किसानों की विजय इसी से हुई। कांग्रेस को गांधी जी ने यही मंत्र सिखलाया जिससे लाखों भारतीयों ने हर्ष पूर्वक जेलयात्राएं की व लाठियों की मार सही।

स्त्रियों ने भी सत्याग्रह सेना बनाई व कष्ट सहे। स्वयं बदला लेने की शक्ति होने पर भी कष्ट देने वाले सिपाहियों पर शांत व क्षमा भाव रखा जिस से कांग्रेस ने बृटिश राज्य नीतिज्ञों पर व सारी दुनियां पर अपना प्रभाव जमाया। अब तो सारे देश में ही कांग्रेस का जनता राज्य है।

वास्तव में यह एक प्रकार का तप है। इस से विरोधी की आत्मा पिघल जाती है। जिन के भीतर कुछ भी विद्या व मनुष्यता है उन पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। इस सत्याग्रह के युद्ध से कुछ लोगों की हानि होती है, बहुत की रक्षा होती है। एक तरफ कष्ट होता है, दोनों तरफ नहीं होता है। शस्त्र युद्ध में दोनों तरफ हथियार चलते हैं। यदि विजय भी हो जावे तो भी हारने वाला द्वेष नहीं छोड़ता है। फिर अवसर पाकर द्वेष भाव से युद्ध ठान लेता है। परस्पर शत्रुता की धारा चलती रहती है परन्तु इस अहिंसामय सत्याग्रह के युद्ध में जब अन्यायी का आत्मबल झुक जाता

है तब वह अन्याय निवारण कर देता है और स्वयं पछताता है कि मैंने वृथा ही अन्याय करके लोगों को कष्ट दिया। फिर वह सामने वालों का मित्र हो जाता है। परस्पर क्षमा व शांति का स्थापन हो जाता है। परस्पर द्वेष नहीं चलता है। इस लिये वहां पर किसी पर अन्याय होता हो व कष्ट पाने वालों का पक्ष सच्चा हो तो वहां बुद्धिमानों को विचारना चाहिए। यदि समझाने से काम सिद्ध न हो और अपना बल भी कम हो और अहिंसामय तप रूपी सत्याग्रह युद्ध से काम सिद्ध होता समझ में आता हो तो इस शस्त्र प्रयोग से विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। इस से एक तरफ की थोड़ी हानि है व सफलता होने पर विशेष लाभ है।

वीर निर्वाण और दीपावली–

सन ई० से ५२७ साल, विक्रमी स० से ४७० वर्ष, राजा शक से ६०५ साल ५ महीने पहिले कार्तिक बदी १४, सोमवार और अमावास्या मंगलवार के बीच में प्रातःकाल जब चौथे काल के समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रह गये थे केवल ज्ञान के प्राप्त होने के २६ साल ५ महीने २० दिन बाद, ७१ वर्ष ३ महीने २५ दिन की आयु में भगवान् महावीर ने मल्लों की पावापुर नगरी में निर्वाण प्राप्त किया। स्वर्ग के देवताओं ने उस अंधेरी रात्रि में रत्न वर्षा कर रोशनी की। जनता ने दीपक जला कर उत्साह मनाया। राजाओं ने वीर निर्वाण की यादगार में कार्तिक बदी १४ और अमावस दोनों रात्रियों को हरसाल दीपावली पर्व की स्थापना की उस समय भ० महावीर की मान्यता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण वाले करते थे, इसलिये दीपावली के त्योहार को आज तक चारों वर्णों वाले बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं।

आर्य समाजी महर्षि स्वामी दयानन्द जी, सिक्ख छठे गुरु श्री हरगोविन्द जी, हिन्दू श्री रामचन्द्र जी, जैनी वीर निर्वाण और महाराजा अशोक की दिग्विजय को दीपावली का कारण बताते हैं। कुछ का विश्वास है कि राजा बलि की दान वीरता से प्रसन्न होकर विष्णु जी ने धनतेरस से तीन दिन का उत्सव मनाने के लिये दीपावली का त्यौहार आरंभ किया था और कुछ का कथन है कि यमराज ने वर मांगा था कि कार्तिक बदी १३ से दोज तक ५ दिन जो उत्सव मनायेंगे उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। इसलिये दीपावली मनाई जाती है, परन्तु दीपावली एक प्राचीन त्यौहार है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी और छठे गुरु श्री हरगोविन्द जी से बहुत पहले से मनाया जाता है। श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या में लौटने की खुशी में दीपावली के आरम्भ होने का उल्लेख रामायण या किसी और प्राचीन हिन्दू ग्रंथ में नहीं मिलता। विष्णु जी तथा अशोक दिग्विजय के कारण दीपावली का होना किसी ऐतिहासिक प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। प्राचीन जैन ग्रंथों में अवश्य कथन है कि—जब चौथे काल के समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने रह गये थे तो कार्तिक की अमावस्या के प्रातःकाल पावापुर नगरी में भ० महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया जिसके उपलक्ष में चारों प्रकार के देवताओं ने बड़ा उत्सव मनाया और जहां तहाँ दीपक जलाये। जिनकी रोशनी से सारा आकाश जगमगा उठा था। उसी दिन से आज तक श्री जिनेन्द्र महावीर के निर्वाण-कल्याण की भक्ति से प्रेरित होकर लोग हर साल भरत क्षेत्र में दिवाली का उत्सव मनाते हैं।

कार्तिक बदी चौदस और अमावस्या की रात्रि में भ० महावीर समस्त कर्मरूपी मल को दूर करके सिद्ध हुए, कर्म मल से शुद्धि के स्थान पर हम उस रात्रि को कूड़ा निकाल कर घरों की शुद्धि करते हैं। उसी दिन भ० महावीर के प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम जी ने केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त की थी, जिसकी पूजा देवों तक ने की थी, उसके स्थान पर चंचल लक्ष्मी तथा गणेश जी की पूजा होती है। गणेश नाम गणधर का है।

वीर समवशरण में मुनीश्वरों, कल्पवासी इन्द्राणियों, आर्यिकाओं व श्राविकाओं, ज्योतिषी देवों, कल्प निवासी देवों, विद्याधरों व मनुष्यों, सिंह हरिण आदि पशु, पक्षियों व तिर्यञ्चों के बैठ कर धर्म उपदेश सुनने के लिये १२ सभाएं होती हैं, उसके स्थान पर लीप-पोत कर लकीरें खींच कर कोठे बनाना और यहां मनुष्य और पशुओं आदि के खिलौने रखना, वीर समवशरण का चित्र खींचने की चेष्टा करना है। भ० महावीर वहां गन्धकुटी पर विराजमान होते हैं, उसके स्थान पर हम घरूण्डी (हटडी) रखते हैं। वीर निर्वाण के उत्सव में देवों ने रत्न बरसाये थे, उसके स्थान पर हम खील बताशे बांटते हैं। उस समय के राजा महाराजाओं ने वीर निर्वाण के उपलक्ष में दीपक जलाकर उत्सव मनाया था, उसके स्थान पर हम दीपावली मनाते हैं। यह हो सकता है कि अमावस्या की शुभ रात्रि में महर्षि स्वामी दयानन्द जी स्वर्ग पधारे,. श्री रामचन्द्र जी अयोध्या लौटे या औरों के विश्वास के अनुसार और भी शुभ कार्य हुए हों, परन्तु इस पवित्र त्यौहार पर होने वाली क्रियाओं और विचार पूर्वक खोज करने से यही सिद्ध होता है कि दीपावली वीर-निर्वाण से ही उनकी यादगार में होने वाला पर्व है जैसे कि लोकमान्य पं० बालगंगाधरतिलक डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि अनेक ऐतिहासिक विद्वान् स्वीकार करते हैं।

केवल दीपावली का त्यौहार ही नहीं, बल्कि भ० महावीर की स्मृति में सिक्के ढाले गये। वर्द्धमान नाम पर वर्धमान और वीर नाम पर वीरभूमि नाम के नगर आज तक बंगाल में प्रसिद्ध हैं। विदेह देश में भ० महावीर का अधिक विहार होने के कारण उस प्रान्त का नाम ही विहार प्रान्त पड़ गया। भारत के ऐतिहासिक युग में सब से पहला सम्वत्, जो वीर-निर्वाण से अगले दिन ही कार्तिक सुदी १ से चालू करते हैं, अवश्य भ० महावीर के सन्मुख भारत निवासियों की श्रद्धा और भक्ति प्रकट करने वाला वीर-सम्वत् है। इस प्रकार से न केवल जैनों पर ही किन्तु अजैनों पर भी श्री वर्द्धमान महावीर का गहरा प्रभाव पड़ा।

।। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ।।

दो शब्द

विवाह शादियों उत्सवों व पारितोषकों में जहां आप हृदय खोलकर दान करते हैं वहाँ कुछ मंडल द्वारा प्रकाशित शिक्षाप्रद धार्मिक और एतिहासिक ट्रैक्ट भी वितरण कीजिये। इससे कई लाभ होंगे। पुस्तक के सुरक्षित रहने तक आपके शुभ कार्य की स्मृति बनी रहेगी। दूसरों को सम्यक ज्ञान प्राप्त होगा और आपके अमूल्य धर्म का प्रचार भी हो जायेगा। मंडल अब तक १३१ ट्रैक्ट प्रकाशित कर चुका है ट्रैक्टों का मूल्य लागत मात्र रखा जाता है। यदि हमारे भाई जैन तथा अजैनों में बांटने के लिये ट्रैक्ट बराबर मँगाते रहें तो मंडल और भी शीघ्रता से अच्छे २लोकोपयोगी बहुमूल्य ट्रैक्टों का प्रकाशन कर सकता है। भारत की यही वह संस्था है जिसने सर्व प्रथम भगवान महावीर जयन्ती मनाने का आयोजन आरम्भ किया और आज इसी संस्था के प्रयत्न स्वरूप भारत के कोने-कोने में महावीर जयन्ती मनाई जाती है।

आप जैन मित्र मंडल देहली के निम्न लिखित कार्यों में सहायता दे सकते हैं।

१. स्थाई सदस्य शुल्क ५१) देकर।
२. साधारण सदस्य ३) वार्षिक शुल्क देकर।
३. प्रतिवर्ष अपने नगर तथा ग्राम में महावीर जयन्ती महोत्सव अधिक से अधिक विराट रूप में मना कर।
४. उपयोगी ट्रैक्ट लिखकर, लिखवा कर, प्रकाशित कर, खरीद कर तथा जैन तथा अजैन जनता में बँटवा कर।
५. मंडल द्वारा स्थापित वर्धमान सार्वजनिक पुस्तकालय के ३) वार्षिक शुल्क के सदस्य बनकर।
६. मंडल द्वारा आयोजित महावीर जयन्ती उत्सव पर तन मन तथा धन से सहयोग देकर।

मंडल को दान दीजिये तथा मान दीजिये।

हम हैं आपके सहयोग के सदैव इच्छुक—

समस्त सदस्य जैन मित्र मंडल

धर्मपुरा, देहली।

भगवान महावीर स्वामी का संदेश

जिओ और जीने दो

श्री महात्मा गाँधी का अहिंसा प्रचार

मेरा विश्वास है कि बिना धर्म का जीवन बिना सिद्धान्त का जीवन है। जहाँ धर्म नहीं, वहाँ विद्या नहीं, लक्ष्मी नहीं और नीरोगता भी नहीं सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और अहिंसा परमोधर्म से बढ़ कर कोई आचार नहीं है। भगवान महावीर अहिंसा के अवतार थे उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्त के लिये पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वह महावीर स्वामी थे।

श्री गुरु नानक देव का अहिंसा प्रचार

जब तक मांस भक्षण का त्याग न करोगे जीवन का कल्याण न हो सकेगा। जब कपड़े पर खून की छीट लग जाने से नापाक हो जाते हैं तो जो मनुष्य खून से लिप्त मांस खाते हैं उनका हृदय कैसे शुद्ध और पवित्र रह सकता है ६८ तीर्थों की यात्रा से भी इतना फल प्राप्त नहीं होता जितना अहिंसा और दया से होता है जिसके हृदय में अहिंसा और दया नहीं वह महा विद्वान होने पर भी मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है जहाँ मांस भक्षण होता है वहाँ दया धर्म नहीं रह सकता है।

जैन मित्र मंडल, धर्मपुरा, देहली।